



शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

दूरशिक्षा और ऑनलाईन शिक्षा केंद्र

बी. ए. भाग 3 हिंदी

सत्र 5 Major Mandatory

प्रश्नपत्र VIII - हिंदी साहित्य का इतिहास

सत्र 6 Major Mandatory

प्रश्नपत्र XI - हिंदी साहित्य का इतिहास

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के नुसार सुधारित पाठ्यक्रम
(शैक्षिक वर्ष 2026-27 से)

© कुलसचिव, शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर (महाराष्ट्र)

प्रथम संस्करण : 2026

सभी अधिकार विश्वविद्यालय के अधीन। शिवाजी विश्वविद्यालय की अनुमति के बिना किसी भी सामग्री की नकल न करें।

प्रतियाँ : 50



प्रकाशक :

डॉ. व्ही. एन. शिंदे

कुलसचिव,

शिवाजी विश्वविद्यालय,

कोल्हापुर - 416 004.



मुद्रक :

श्री. बी. पी. पाटील

अधीक्षक,

शिवाजी विश्वविद्यालय मुद्रणालय,

कोल्हापुर-416 004.



ISBN - 978-81-68244-09-02

★ दूरशिक्षा और ऑनलाईन शिक्षा केंद्र और शिवाजी विश्वविद्यालय की जानकारी निम्नांकित पते पर मिलेगी-
शिवाजी विश्वविद्यालय, विद्यानगर, कोल्हापुर-416 004 (महाराष्ट्र)

दूरशिक्षा और ऑनलाईन शिक्षा केंद्र, शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

सल्लागार समिती

प्रो. (डॉ.) आर. के. कामत

कुलगुरु,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

प्रो. (डॉ.) ज्योती जाधव

प्र-कुलगुरु,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

प्रो. (डॉ.) प्रकाश पवार

राज्यशास्त्र अधिविभाग,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

प्रो. (डॉ.) एस. विद्याशंकर

कुलगुरु, केएसओयू,
मुक्तगंगोत्री, म्हैसूर, कर्नाटक-५७० ००६

डॉ. राजेंद्र कांकरिया

जी-२/१२१, इंदिरा पार्क,
चिंचवडगांव, पुणे-४११ ०३३

प्रो. (डॉ.) सीमा येवले

गीत-गोविंद, फ्लॅट नं. २, ११३९ साईक्स एक्स्टेंशन,
कोल्हापुर-४१६००१

डॉ. संजय रत्नपारखी

डी-१६, शिक्षक वसाहत, विद्यानगरी, मुंबई विश्वविद्यालय,
सांताक्रुझ (पु.) मुंबई-४०० ०९८

प्रो. (डॉ.) कविता ओझा

संगणकशास्त्र अधिविभाग,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

प्रो. (डॉ.) चेतन आवटी

तंत्रज्ञान अधिविभाग,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

प्रो. (डॉ.) एम. एस. देशमुख

अधिष्ठाता, मानवविज्ञान विद्याशाखा,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

प्रो. (डॉ.) श्रीमती व्ही. व्ही. मैदरगी

प्र. अधिष्ठाता, वाणिज्य व व्यवस्थापन विद्याशाखा,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

प्रो. (डॉ.) आर. व्ही. गुरव

प्र. अधिष्ठाता, विज्ञान व तंत्रज्ञान विद्याशाखा,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

प्रा. (डॉ.) ए. बी. साळी

प्र. अधिष्ठाता, आंतर-विद्याशाखीय अभ्यास विद्याशाखा
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

डॉ. व्ही. एन. शिंदे

कुलसचिव,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

डॉ. ए. एन. जाधव

संचालक, परीक्षा व मूल्यमापन मंडळ,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

श्रीमती सुहासिनी सरदार पाटील

वित्त व लेखा अधिकारी,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

प्रा. (डॉ.) पी. एस. पाटणकर (सदस्य सचिव)

संचालक, दूरशिक्षण व ऑनलाईन शिक्षण केंद्र,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

अध्यक्ष

प्रो. डॉ. साताप्पा शामराव सावंत
विलिंग्डन कॉलेज, सांगली.

सदस्य

- डॉ. संग्राम यशवंत शिंदे
आमदार शशिकांत शिंदे महाविद्यालय, मेढा,
ता. जावळी, जि. सातारा.
- डॉ. भास्कर उमराव भवर
कर्मवीर हिरे आर्ट्स, सायन्स, कॉमर्स अँड एज्युकेशन
कॉलेज, गारगोटी, ता. भुदरगड, जि. कोल्हापुर.
- प्रो. (डॉ.) अशोक विठोबा बाचुळकर
आजरा महाविद्यालय, आजरा, जि. कोल्हापुर.
- प्रो. (डॉ.) अनिल मारुती साळुंखे
यशवंतराव चव्हाण महाविद्यालय, करमाळा,
जि. सोलापुर - ४१३२०३
- डॉ. गजानन सुखदेव चव्हाण
श्रीमती जी. के. जी. कन्या महाविद्यालय,
जयसिंगपुर, ता. शिरोळ, जि. कोल्हापुर.
- प्रो. (डॉ.) नितीन चंद्रकांत धावडे
मुधोजी कॉलेज, फलटण, जि. सातारा.
- डॉ. मनिषा बाळासाहेब जाधव
आर्ट्स अँड कॉमर्स कॉलेज, ११७, शुक्रवार पेठ,
सातारा-४१५ ००२.
- प्रो. (डॉ.) वर्षारणी निवृत्ती सहदेव
श्री विजयसिंह यादव कॉलेज, पेठ वडगाव,
जि. कोल्हापुर.
- प्रो. (डॉ.) हणमंत महादेव सोहनी
सदाशिवराव मंडलीक महाविद्यालय, मुरगुड, ता. कागल,
जि. कोल्हापुर.
- प्रो. (डॉ.) सिद्राम कृष्णा खोत
प्रा. डॉ. एन. डी. पाटील महाविद्यालय, मलकापुर,
जि. कोल्हापुर.
- प्रो. (डॉ.) उत्तम लक्ष्मण थोरात
आदर्श कॉलेज, विटा, जि. सांगली.
- प्रो. (डॉ.) परसराम रामजी रगडे
शंकरराव जगताप आर्ट्स अँड कॉमर्स कॉलेज, वाघोली,
ता. कोरेगाव, जि. सातारा.

अपनी बात

शिवाजी विश्वविद्यालय कोल्हापुर की दूर शिक्षा योजना के अंतर्गत बी. ए. भाग 3 (ऐच्छिक) हिंदी विषय के छात्रों के लिए निर्मित स्वयं अध्ययन सामग्री नियमित रूप से प्रवेश न ले पानेवाले छात्रों की असुविधा को दूर करने के संकल्प का सुफल है। इसमें एक ओर विश्वविद्यालय की सामाजिक संवेदनशीलता दिखाई देती है तो, दूसरी ओर शिक्षा से वंचितों छात्रों को अध्ययन सामग्री सुविधा प्रदान करने की प्रतिबद्धता। बी. ए. भाग 3 तक के छात्र स्वयं अध्ययन सामग्री से लाभान्वित होंगे यह विश्वास है।

दूर शिक्षा के छात्रों का महाविद्यालयों तथा अध्यापकों से प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से कोई संबंध नहीं आता। उनकी इस स्थिति को ध्यान में रखते हुए अध्ययन सामग्री को सरल और सुबोध भाषा में प्रस्तुत किया गया है। हमें आशा ही नहीं बल्कि विश्वास भी है कि प्रस्तुत अध्ययन सामग्री बी. ए. भाग 3 के छात्रों को उपोद्घ सिद्ध होगी।

प्रस्तुत सामग्री सामूहिक प्रयास का फल है। इकाई लेखकों ने अपनी अपनी इकाइयों का लेखन समय पर पूरा कर इसमें महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। शिवाजी विश्वविद्यालय के मा. कुलगुरु, प्र. कुलगुरु, कुलसचिव, दूरशिक्षा विभाग के संचालक तथा हिंदी अध्ययन मंडल के अध्यक्ष एवं उनके सभी सहयोगी सदस्यों ने समय-समय पर आवश्यक सहयोग दिया। अतः इन सभी के प्रति आभार प्रकट करना हमारा कर्तव्य है।

धन्यवाद!

— संपादक

ईकाई लेखक	घटक क्रमांक	
	सत्र-5	सत्र-6
★ प्रो. (डॉ.) पी. आर. रगडे शंकरराव जगताप आर्ट्स अँड कॉमर्स कॉलेज, वाघोली, ता. कोरेगाव, जि. सातारा	1	2
★ प्रो. (डॉ.) एस. एस. सावंत विलिंग्डन कॉलेज, सांगली, जि. सांगली	2	1
★ डॉ. गजानन चव्हाण श्रीमती गंगाबाई खिवराज घोडावत कन्या महाविद्यालय, जयसिंगपूर, ता. शिरोळ, जि. कोल्हापुर	3,4	-
★ डॉ. एम. आर. मुडंकर नाईट कॉलेज ऑफ आर्ट्स अँड कॉमर्स, इचलकरंजी, ता. हातकणंगले, जि. कोल्हापुर	-	3, 4

■ संपादक ■

प्रो. (डॉ.) पी. आर. रगडे
शंकरराव जगताप आर्ट्स अँड कॉमर्स कॉलेज,
वाघोली, ता. कोरेगाव, जि. सातारा

प्रो. (डॉ.) एस. एस. सावंत
विलिंग्डन कॉलेज, सांगली,
जि. सांगली

अनुक्रम

इकाई	पृष्ठ
सत्र-5	
1. आदिकाल	1
2. भक्तिकाल	28
3. निर्गुण भक्तिधारा और प्रातिनिधिक कवि	44
4. सगुण भक्तिधारा और प्रातिनिधिक कवि	75
सत्र-6	
1. रीतिकाल	96
2. आधुनिक काल की काव्यधारा	124
3. आधुनिक गद्य विधाओं का विकास	173
४. आधुनिक साहित्य के अधुनातन आयाम	208

हर इकाई की शुरूआत उद्देश्य से होगी, जिससे दिशा और आगे के विषय सूचित होंगे-

- (1) इकाई में क्या दिया गया है।
- (2) आपसे क्या अपेक्षित है।
- (3) विशेष इकाई के अध्ययन के उपरांत आपको किन बातों से अवगत होना अपेक्षित है।

स्वयं-अध्ययन के लिए कुछ प्रश्न दिए गए हैं, जिनके अपेक्षित उत्तरों को भी दर्ज किया है। इससे इकाई का अध्ययन सही दिशा से होगा। आपके उत्तर लिखने के पश्चात् ही स्वयं-अध्ययन के अंतर्गत दिए हुए उत्तरों को देखें। आपके द्वारा लिखे गए उत्तर (स्वाध्याय) मूल्यांकन के लिए हमारे पास भेजने की आवश्यकता नहीं है। आपका अध्ययन सही दिशा से हो, इसलिए यह अध्ययन सामग्री (Study Tool) उपयुक्त सिद्ध होगी।

घटक 1

आदिकाल

अनुक्रम

- 1.1 उद्देश्य
- 1.2 प्रस्तावना
- 1.3 विषय विवेचन
 - 1.3.1 हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन की परंपरा
 - 1.3.2 आदिकालीन परिस्थितियाँ : राजनीतिक एवं सामाजिक
 - 1.3.3 आदिकालीन काव्यधारा की विशेषताएँ
 - 1.3.4 आदिकालीन प्रातिनिधिक रचनाकारों का सामान्य परिचय – अमीर खुसरो, विद्यापति
- 1.4 स्वयंअध्ययन के लिए प्रश्न
- 1.5 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ
- 1.6 स्वयंअध्ययन प्रश्नों के उत्तर
- 1.7 सारांश
- 1.8 स्वाध्याय
- 1.9 क्षेत्रीय कार्य
- 1.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए

1.1 उद्देश्य :

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप,

- ◆ हिंदी साहित्य के लेखन की सुदीर्घ परंपरा से परिचित होंगे।
- ◆ हिंदी साहित्य लेखन के लिए किए गए प्रयासों की ऐतिहासिक जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- ◆ हिंदी साहित्य के प्रारंभिक चरण आदिकाल की राजनीतिक एवं सामाजिक स्थितियों को जानेंगे।
- ◆ आदिकालीन साहित्य की युगीन प्रवृत्तियों से परिचित होंगे।
- ◆ आदिकाल के उल्लेखनीय प्रारंभिक रचनाकार अमीर खुसरो और विद्यापति के व्यक्तित्व एवं कृतित्व से परिचित होंगे।

1.2 प्रस्तावना :

हिंदी साहित्य के ऐतिहासिक अध्ययन के लिए हिंदी साहित्य के इतिहास का ज्ञान होना जरूरी है। हिंदी साहित्य का इतिहास बृहत और उज्ज्वल रहा है। हिंदी साहित्य लेखन की एक लंबी परंपरा रही है। हिंदी साहित्य के विभिन्न देशी और विदेशी विद्वानों ने निरंतर अध्ययनशीलता और बड़े परिश्रम के साथ हिंदी साहित्य का इतिहास लिखा है। हिंदी साहित्य इतिहास लेखन में गार्सा-द-तासी, शिवसिंह सेंगर, सर जॉर्ज ग्रियर्सन, मिश्र बंधु, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, डॉ. रामकुमार वर्मा, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी आदि का नाम विशेष उल्लेखनीय है। हिंदी साहित्य के इतिहास का प्रारंभिक चरण 'आदिकाल' के नाम से परिचित है। मूलतः सातवीं शती से लेकर 14 शती तक का कालखंड आदिकाल का रहा है। इस काल में चारण कवियों द्वारा 'रासो ग्रंथों', सिद्ध-नाथों द्वारा 'धार्मिक ग्रंथों', लौकिक साहित्य का सृजन हो रहा था। आदिकाल में भाषा विकास की प्रारंभिक चरण पर थी, जिससे साहित्य में डिंगल और पिंगल भाषा का प्रयोग हो रहा था। यह कालखंड राजनीतिक दृष्टि से विदेशी आक्रमणकारियों के आक्रमण और देशी राजाओं के संकुचित राष्ट्रीय भावना का रहा। भारतीय इतिहास में यह काल राजनीतिक पतन का काल माना जाता है। राजाओं के विलासी जीवन के प्रति आसक्ति, अखंड राष्ट्रनिष्ठा का अभाव, धार्मिक आडंबरों का बढ़ता प्रभाव, स्त्री को भोग वस्तु मानने की मानसिकता के कारण यह कालखंड सामाजिक दृष्टि से भी उदासीन था। इस कालखंड के साहित्य पर सामाजिक, धार्मिक एवं राजनीतिक स्थितियों का गहरा प्रभाव देखने मिलता है। इसकारण आदिकालीन साहित्य में रासो ग्रंथों की निर्मिति, ऐतिहासिक प्रामाणिकता का अभाव, युद्धों के अतिशयोक्ति पूर्ण वर्ण, वीर और शृंगार रस की प्रधानता, राष्ट्रनिष्ठा की संकुचित भावना, प्रकृति का चित्रण, प्रबंध और मुक्त काव्य रूप, छंदों का अत्याधिक प्रयोग, साहित्य में डिंगल-पिंगल भाषा का प्रयोग, सामाजिकता का अभाव आदि विशेषता दृष्टिगत होती है। आदिकाल में कई रचनाकार दृष्टिगत होते हैं लेकिन साहित्यिक महत्त्व की दृष्टि से अमीर खुसरो और विद्यापति का नाम विशेष उल्लेखनीय है।

1.3 विषय विवेचन :

1.3.1 हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन की परंपरा :

हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन की परंपरा बहुत ही लंबी और उज्ज्वल रही है। हिंदी साहित्य के विद्वानों ने अंतः साक्ष्य और बाह्य साक्ष्य के आधार पर हिंदी साहित्य की विपुल सामग्री को जुटाकर हिंदी साहित्य का इतिहास लिखने का प्रयास किया है। हिंदी साहित्य से संबंधित भारत के विभिन्न ग्रंथालयों से प्राप्त पांडुलिपियों, तत्कालीन समय के हिंदी कवि, उनकी रचनाओं में अभिव्यक्ति कालखंड, प्राचीन कवि एवं साहित्य पर अध्ययन करने वाले हिंदी साहित्य के इतिहासकार लेखकों एवं उनकी समीक्षाओं को आधार बनाकर हिंदी साहित्य का इतिहास लिखने का प्रयास गया है। हिंदी साहित्य लेखन करते समय विद्वानों ने वर्णानुक्रम पद्धति, कालानुक्रम पद्धति, वैज्ञानिक पद्धति, विधेयवादी पद्धति का अवलंब किया है। प्राचीन वार्ता साहित्य (चौरासी वैष्णवन की वार्ता, दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता, भक्तमाल आदि।) में अनेक कवियों का सामान्य परिचय जरूरी मिलता है लेकिन यह इतिहास लेखन के नियमों के अनुसार नहीं हुआ है। इतिहास लेखन में जिस कालानुक्रम और कालखंड की विश्वसनीयता जरूरी होती है, उसका नितांत अभाव इन वार्ता साहित्य में है। सही मायनों में हिंदी साहित्य का इतिहास लेखन की शुरुआत 19 वीं शताब्दी में हुई। हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन की इस परंपरा में जिन विद्वानों के इतिहास लेखन को सर्वाधिक मान्यता मिली है, उनका सामान्य परिचय इसप्रकार है-

1.3.1.1 गार्सा-द तासी ('इस्त्वार द ला लितरेत्यूर ऐन्दुई ऐन्दुस्तानी'-1839 ई और 1847 ई.) :

हिंदी साहित्य का इतिहास लेखन का सर्वप्रथम प्रयास फ्रेंच विद्वान 'गार्सा-द-तासी' ने किया। इनका पूरा नाम जोसेफ हेलीओडोर गार्सा द तासी था। यह एक फ्रांसीसी विद्वान थे जिन्होंने हिंदी और उर्दू भाषा के साहित्य को यूरोप में पहचान दिलाई। वे पेरिस में हिंदुस्तानी भाषा के प्रोफेसर थे। उन्होंने 'इस्त्वार द ला लितरेत्यूर ऐन्दुई ऐन्दुस्तानी' (हिंदुई और हिंदुस्तानी साहित्य का इतिहास) नामक ग्रंथ दो भागों में लिखा। इस इतिहास ग्रंथ के पहले भाग का प्रकाशन सन् 1839 को हुआ जबकि दूसरा भाग सन् 1847 को प्रकाशित हुआ। गार्सा-द-तासी ने यह ग्रंथ फ्रेंच भाषा में लिखा है और वर्णानुक्रम पद्धति से हिंदी साहित्य का इतिहास लिखने का प्रयास किया है। इसमें तासी ने हिंदी और उर्दू भाषा के कवियों के जीवन एवं रचनाओं को वर्णक्रम से देने की कोशिश की है। इसे हिंदी-उर्दू साहित्य का पहला इतिहास माना जाता है, जिसमें भक्ति, सूफी और रीति काव्य का वर्णन मिलता है। यह हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन का पहला प्रयास होने के कारण इसमें बहुत-सी कमियाँ रही हैं। विद्वानों के अनुसार इसमें हिंदी साहित्य के इतिहास के काल विभाजन की ओर अनदेखी की गई है। कवियों का वर्गीकरण उनके कालखंड के अनुसार नहीं किया गया है। इसमें तत्कालीन स्थितियों के परिप्रेक्ष्य में अध्ययन का अभाव दिखाई देता है। फिर भी यह हिंदी कविता का पहला इतिहास है जिसमें कवियों के रचनाकाल का उल्लेख मिलता है। अनेक कमियों के बावजूद भी विद्वानों ने इस ग्रंथ को हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन की परंपरा में पहला स्थान दिया है।

1.3.1.2 शिवसिंह सेंगर ('शिवसिंह सरोज' – सन् 1883 ई.) :

हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन की परंपरा में स्वदेशी विद्वानों में सर्वप्रथम नाम शिवसिंह सेंगर जी का आता है। उन्होंने सन् 1883 ई. में 'शिवसिंह सरोज' नामक रचना के माध्यम से हिंदी साहित्य का इतिहास लिखने का उल्लेखनीय प्रयास किया। इस ग्रंथ में तकरीबन एक हजार कवियों के जीवन और उनकी रचनाओं का सोदाहरण वर्णन देखने मिलता है। इस ग्रंथ को 'कवि-कोश' नाम से भी जाना जाता है, जिसमें उन्होंने वर्णानुक्रम पद्धति का अवलंब किया है। उन्होंने इन सभी कवियों का रचनाकाल देने की कोशिश जरूर की है लेकिन इनमें ऐतिहासिकता का अभाव है। इतिहास लेखन के लिए जिस समीक्षात्मक दृष्टि, निष्पक्षता और तटस्थता की जरूरत होती है, उसका इस ग्रंथ में अभाव है। फिर भी शिवसिंह सेंगर जी ने तत्कालीन हिंदी कवि और उनकी रचनाओं पर एक जगह संकलित करने का महत्वपूर्ण कार्य किया जिससे भविष्य के इतिहासकारों को प्रेरणा एवं सहायता मिली। हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन को दिशा देने का कार्य शिवसिंह सेंगर जी ने किया।

1.3.1.3 सर जॉर्ज ग्रियर्सन ('द माडर्न वर्नेक्यूलर लिटरेचर ऑफ हिंदुस्तान' – सन् 1888 ई.) :

हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन की परंपरा में सर जॉर्ज ग्रियर्सन दूसरे विदेशी विद्वान रहे हैं। इनका पूरा नाम जॉर्ज अब्राहम ग्रियर्सन था जो ब्रिटेन के एक प्रसिद्ध भाषाशास्त्र और भारतीय भाषाओं के विद्वान थे। उन्होंने सन् 1888 ई. में 'द माडर्न वर्नेक्यूलर लिटरेचर ऑफ हिंदुस्तान' (हिंदुस्तान की आधुनिक जनभाषाओं का साहित्य) नामक ग्रंथ की रचना की। यह ग्रंथ अंग्रेजी भाषा में और 11 अध्यायों में लिखा गया है। उन्होंने 'लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इंडिया' नाम से एक सर्वेक्षण करके भारत की सैंकड़ों भाषाओं और बोलियों का शास्त्रीय अध्ययन किया। इस सर्वेक्षण को आधार मानकर ही उन्होंने उपरोक्त ग्रंथ का लेखन करके हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन की परंपरा में अपना नाम जोड़ दिया। यह ग्रंथ एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल की पत्रिका के विशेषांक के रूप में प्रकाशित हुआ था। सर जॉर्ज ग्रियर्सन के इस हिंदी साहित्य इतिहास ग्रंथ में पहली बार हिंदी कवियों और लेखकों को उनके कालक्रम के अनुसार विभाजित किया गया है। साथ ही उनकी संबंधित साहित्यकारों के साहित्य लेखन की प्रवृत्तियों पर भी इसमें प्रकाश डाला गया है।

सर जॉर्ज ग्रियर्सन ने इस ग्रंथ में स्पष्टता लाने हेतु केवल हिंदी भाषा के कवियों और लेखकों को स्थान दिया है। संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश कवियों को इसमें स्थान नहीं दिया है। साथ ही वे अरबी, फारसी और उर्दू भाषाओं के कवियों को भी हिंदी का कवि मानने का विरोध करते हैं। परवर्ती इतिहासकारों को हिंदी कवियों को चुनने के लिए उन्होंने एक सुगठित मार्ग बनाया। हिंदी के परिधि में किस कवि को रखा जाए इसे लेकर बनी जटिलता को सुगम करने का काम ग्रियर्सन के इस इतिहास ग्रंथ ने किया है। उन्होंने इस ग्रंथ में वैज्ञानिक दृष्टिकोण रखते हुए विश्वसनीय जानकारी देने पर बल दिया है। उन्होंने इतिहास लेखन की कालानुक्रमी पद्धति का इसमें प्रयोग किया है। उन्होंने अपने पूर्व के इतिहासकार गार्सा द तासी, शिवसिंह सेंगर जी के इतिहास की संकलित जानकारी का भी इस्तेमाल किया है। साथ ही वार्ता साहित्य को भी सोदाहरण विवेचित करके ग्रंथ को अधिक विश्वसनीय बनाने का प्रयास किया है। ग्यारह अध्यायों में उन्होंने कालविशेष और तत्कालीन साहित्य की प्रवृत्तियों का विवेचन किया है। ग्रियर्सन ही वे पहले विद्वान हैं जिन्होंने 'भक्तिकाल' को हिंदी साहित्य का स्वर्ण

युग माना। हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन की परंपरा में यह ग्रंथ इसलिए महत्वपूर्ण माना जाता है कि इसमें हिंदी साहित्य को लेकर बिखरी हुई सामग्री वैज्ञानिक और विश्ववसनीय तरीके से एक जगह संकलित हो पाई। इससे हिंदी साहित्य के युगीन साहित्य एवं उनकी प्रवृत्तियों पर स्वतंत्र रूप से विवेचन करने के लिए परवर्ती इतिहासकारों को बड़ी सहायता मिली।

1.3.1.4 मिश्र बंधु ('मिश्र बंधु विनोद' – सन् 1913 ई. और सन् 1914 ई.) :

हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन की परंपरा में मिश्र बंधुओं का नाम विशेष उल्लेखनीय है। ये तीन भाई थे जिनके नाम गणेश बिहारी मिश्र, श्याम बिहारी मिश्र और शुकदेव बिहारी मिश्र थे। इन तीनों भाईयों ने मिलकर 'मिश्र बंधु विनोद' नामक हिंदी साहित्य के इतिहास ग्रंथ की रचना की। यह ग्रंथ चार भागों में विभाजित है। इसके पहले तीन भागों का प्रकाशन सन् 1913 ई. में जबकि चौथे भाग का प्रकाशन सन् 1914 ई. को हुआ। इस ग्रंथ में मिश्र बंधुओं ने करीब 5000 हजार कवियों की जानकारी दी है। विद्वानों के अनुसार इस ग्रंथ में हिंदी साहित्य के इतिहास का काल विभाजन पहली बार सही तरीके से किया गया है। इस इतिहास ग्रंथ के लेखन में कालानुक्रमी और तुलनात्मक पद्धति का प्रयोग किया गया है। इस ग्रंथ में आदिकाल से लेकर आधुनिक काल के कवियों का जीवनवृत्तांत, उनकी रचना का कालखंड और साहित्य की विशेषताओं को बताया गया है। परवर्ती अनेक इतिहासकारों ने इस ग्रंथ से कच्ची सामग्री ग्रहण करते हुए संदर्भ ग्रंथ के रूप में इसका इस्तेमाल किया है। फिर भी यह पूरा वैज्ञानिक इतिहास ग्रंथ नहीं है लेकिन हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन की एक महत्वपूर्ण कड़ी माना जाता है।

1.3.1.5 आचार्य रामचंद्र शुक्ल ('हिंदी साहित्य का इतिहास' – सन् 1929 ई.) :

हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन में आचार्य रामचंद्र शुक्ल का नाम शीर्षस्थ है। उन्होंने 'हिंदी साहित्य का इतिहास' नामक ग्रंथ सन् 1929 ई. को लिखा। आ. शुक्ल ने मूलतः यह ग्रंथ 'हिंदी शब्द सागर' की भूमिका के रूप में लिखा था जिसे भविष्य में स्वतंत्र हिंदी इतिहास ग्रंथ का रूप दिया। आ. शुक्ल पहले हिंदी इतिहासकार थे जिन्होंने हिंदी साहित्य लेखन की परंपरा में 'विधेयवादी पद्धति' का सूत्रपात किया। उन्होंने कवियों के जीवन एवं रचनाओं के संकलन को इतिहास मानने से इंकार किया और जाति, वातावरण और क्षण विशेष को अपने इतिहास ग्रंथ में महत्वपूर्ण स्थान दिया। उनका मानना था कि किसी साहित्य के इतिहास को जानने-समझने के लिए संबंधित जाति की परंपराओं, तत्कालीन वातावरण और सभी क्षेत्र की परिस्थितियों का व्यापक विश्लेषण होना जरूरी है। इसकारण उनके इस ग्रंथ में कवियों के साहित्य का विश्लेषण युगीन परिस्थितियों और विशेषताओं के परिप्रेक्ष्य में किया गया है।

आचार्य शुक्ल जी ने इस ग्रंथ में हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक काल विभाजन किया है। उनके पूर्व मिश्र बंधु और ग्रियर्सन के इतिहास ग्रंथों में यह प्रयास हुआ था लेकिन वे सफल नहीं हुए थे। हिंदी साहित्य के नौ सौ वर्षों के इतिहास को केवल पूर्व कालखंड और उत्तर कालखंड के रूप में विभाजित करने का उन्होंने विरोध किया। उन्होंने 900 वर्षों के कालखंड को चार भागों में विभाजित करके उनका नामकरण भी किया था, जैसे

- 1. वीरगाथा काल (सं. 1050 से 1375 वि.) 2. पूर्व मध्यकाल (सं. 1375 से 1700 वि.) 3. उत्तर मध्यकाल (सं. 1700 से 1800 वि.) और 4. आधुनिक काल (सं. 1900 से 1984 वि.) आदि। हिंदी साहित्य का यह कालविभाजन काफी लोकप्रिय हुआ क्योंकि इसमें संबंधित कालखंड के कवियों की युगीन स्थितियों, वातावरण और साहित्यिक प्रवृत्तियों के आधार पर उस कालखंड का नामकरण किया है। उन्होंने भक्तिकाल में भी निर्गुण और सगुण का वर्गीकरण करते हैं और निर्गुण में ज्ञानाश्रयी और प्रेमाश्रयी जबकि सगुण में रामभक्ति शाखा और कृष्णभक्ति शाखा जैसे उपभेद बनाकर अपनी इतिहास लेखन की प्रतिभा और वैज्ञानिक सोच का परिचय देते हैं। रीतिकाल को भी रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध और रीतिमुक्त इन तीन वर्गों में कवियों को विभाजित करते हुए सुस्पष्टता लाते हैं। इन तीनों भेदों में उन्होंने मार्मिक और सूक्ष्मता से कवियों के आचार्यत्व का विवेचन किया है।

आचार्य शुक्ल के हिंदी साहित्य का इतिहास इस ग्रंथ के प्रकाशन के बाद हिंदी के साहित्य के इतिहास को लेकर फैली अनेक विवाद, संदेह और भ्रांतियाँ शांत हुई। उनके व्यापक दृष्टिकोण, वैज्ञानिक विवेचन पद्धति और सूक्ष्म विश्लेषण के कारण यह ग्रंथ हिंदी साहित्य के इतिहास में मिल का पत्थर साबित हुआ है। उन्होंने कवियों के जीवनवृत्तांत से ज्यादा उनकी रचना और उनकी साहित्यिक प्रवृत्तियों को महत्त्व दिया है। कवियों के साहित्यिक मूल्य को जानने-परखने के बाद ही उन्होंने हिंदी साहित्य के इतिहास में उन्हें स्थान दिया है। इसकारण उनके ग्रंथ में पूर्ववर्ती पाँच हजार कवियों की भीड़ खत्म होकर चुनिंदा एक हजार कवियों तक वह सीमित हो जाती है। लेकिन कुछ जगहों पर वे आलोचक रूप में पक्षपात करते हुए नज़र आते हैं। उनके ग्रंथ में संत तुलसी के प्रति मोह है और कबीर के प्रति अन्याय दिखाई देता है। इसके बावजूद सन 1929 ई. के बाद से वर्तमान समय तक आचार्य रामचंद्र शुक्ल का 'हिंदी साहित्य का इतिहास' ग्रंथ हिंदी साहित्य के लेखन परंपरा में कालजयी ग्रंथ बन गया है। आज भी हिंदी साहित्य के इतिहास पर लेखन करने के लिए उनके द्वारा निर्धारित किए गए निष्कर्षों का अध्ययन किया जाता है।

1.3.1.6 डॉ. रामकुमार वर्मा ('हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' - सन् 1938 ई.) :

हिंदी साहित्य जगत् में एक श्रेष्ठ नाटककार और एकांकीकार के रूप में डॉ. रामकुमार वर्मा का नाम विशेष उल्लेखनीय है। उन्होंने सन 1938 ई. को 'हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' ग्रंथ का लेखन किया। इसमें उन्होंने 1693 ई. से 1693 ई. तक के कालखंड को आधार बनाया है। इसमें भक्तिकाल तक का कालखंड आया है। वे भक्तिकाल से आगे दूसरे भाग में इतिहास लेखन करना चाहते थे लेकिन वह काम पूरा नहीं हो सका। उन्होंने आचार्य शुक्ल के इतिहास को ही आधार बनाकर यह इतिहासह ग्रंथ लिखा है लेकिन कुछ जगहों पर उन्होंने आचार्य शुक्ल के विचारों को स्वीकार नहीं किया है। आचार्य शुक्ल ने हिंदी साहित्य के प्रारंभिक कालखंड के साहित्य को 'वीरगाथाकाल' नाम दिया था वहाँ डॉ. वर्मा उसे 'चारणकाल' कहना उचित मानते हैं। उन्होंने हिंदी साहित्य में अपभ्रंश भाषा के साहित्य को समेटकर 'स्वयंभू' को हिंदी का पहला कवि बताने की गलती की है।

1.3.1.7 आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी :

हिंदी साहित्य की लेखन परंपरा में आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी के बाद अगर किसी को आदर एवं सम्मान मिला है तो वह आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी जी को मिला है। उन्होंने 'हिंदी साहित्य की भूमिका' (1940 ई.), 'हिंदी साहित्य : उद्भव और विकास' (1952 ई.) और 'हिंदी साहित्य का आदिकाल' (1952 ई.) इन तीन रचनाओं के द्वारा हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। उन्होंने विशेषकर हिंदी साहित्य के आदिकाल पर पर्याप्त लेखन किया है। उनका हिंदी साहित्य की भूमिका यह इतिहास ग्रंथ नहीं लेकिन इतिहास लेखन के लिए जरूरी अनेक तथ्यों का विवेचन इस ग्रंथ में आया है। आचार्य शुक्ल के मतों का उन्होंने विरोध किया है। आचार्य शुक्ल जी ने जिस काल को वीरगाथाकाल कहा है, उसे आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी 'आदिकाल' कहना उचित कहते हैं। आचार्य शुक्ल ने जिन ग्रंथों के आधार पर यह नामकरण किया था उनकी प्रामाणिकता पर आचार्य द्विवेदी जी ने सवाल खड़े किए हैं। क्योंकि इनमें से अधिकांश रासो ग्रंथ अर्धप्रामाणिक है और आधे उपलब्ध है। भक्तिकाल में भक्ति के उदय को इस्लाम के प्रभाव मानने से इन्कार करते हैं। उन्होंने सूफी, नाथ, सिद्ध साहित्य की प्रवृत्तियों को ईरानी साहित्य से प्रभावित मानने से इंकार किया और उन्हें संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश काव्य परंपराओं पर आधारित माना। संत कबीर की अवहेलना करने वाले आचार्य शुक्ल जी के मतों को उन्होंने मुँहतोड़ जवाब दिया। इसप्रकार उन्होंने अपने गहन अध्ययन और प्रमाणों के आधार पर उपरोक्त इतिहास ग्रंथों द्वारा आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनेक मतों का खंडन किया। ऐतिहासिक चेतना और पूर्व परंपरा के बोध के संदर्भ में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी एक सशक्त इतिहासकार थे।

1.3.1.8 अन्य :

हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन की परंपरा में उपरोक्त इतिहासकारों के अलावा कुछ अन्य विद्वानों और संस्थाओं भी योगदान दिया है। उनकी सूचनात्मक जानकारी इसप्रकार है- नागरी प्रचारिणी सभा-काशी द्वारा सोलह खंडों में 'हिंदी साहित्य का बृहत इतिहास' प्रकाशित किया गया है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के इतिहास को आधार मानकर विभिन्न इतिहासकार और संपदकों ने मिलकर यह विशाल इतिहास ग्रंथ बनाया है। साथ ही डॉ. धीरेंद्र वर्मा का 'हिंदी साहित्य', डॉ. 'भगीरथ मिश्र' का 'हिंदी काव्यशास्त्र का इतिहास', विश्वनाथ प्रसाद मिश्र का 'हिंदी साहित्य का अतीत', डॉ. नगेंद्र का 'रीतिकाव्य की भूमिका', डॉ. गणपित चंद्र गुप्त का 'हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास', प्रभुदयाल मीतल का 'चैतन्य संप्रदाय और उसका साहित्य', परशुराम चतुर्वेदी का 'उत्तरी भारत की संत परंपरा', डॉ. नलिन विलोचन शर्मा का 'हिंदी साहित्य का इतिहास दर्शन', बाबू श्यामसुंदर दास का 'हिंदी भाषा और साहित्य', सूर्यकांत शास्त्री का 'हिंदी साहित्य का इतिहास दर्शन', कृपाशंकर शुक्ल का 'आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास', आचार्य चतुरसेन 'हिंदी साहित्य का इतिहास', डॉ. बच्चन सिंह का 'आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास', डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी का 'हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास', डॉ. टीकम सिंह तोमर का 'हिंदी वीर काव्य', डॉ. शिवकुमार शर्मा 'हिंदी साहित्य युगीन प्रवृत्तियाँ' आदि हिंदी साहित्य लेखन की परंपरा के उल्लेखनीय इतिहास ग्रंथ हैं।

1.3.2 आदिकालीन परिस्थितियाँ : राजनीतिक एवं सामाजिक :

हिंदी साहित्य के आदिकाल कालीन साहित्य का अध्ययन करने के लिए उस समय की राजनीतिक एवं सामाजिक परिस्थितियों को जानना जरूरी है। किसी भी कालखंड के साहित्य पर तत्कालीन स्थितियों का गहरा प्रभाव देखने मिलता है। साहित्य मानवी समाज से जुड़ा होने के कारण उसमें समाज की सभी स्थितियों का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है। आदिकालीन साहित्य की जो भी विशेषताएँ हमें देखने मिलती हैं, वह तत्कालीन स्थितियों का ही परिणाम है। यहाँ हमें मुख्य रूप से आदिकालीन राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियों की जानकारी लेना जरूरी है।

1.3.2.1 आदिकालीन राजनीतिक परिस्थिति :

आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार संवत् 1050 से लेकर 1375 तक का कालखंड हिंदी साहित्य में आदिकाल के रूप में जाना जाता है। महाराजा भोज से लेकर हमीरदेव तक के शासकों का यह कालखंड रहा है। भारत की दृष्टि से यह कालखंड विदेशी आक्रांताओं (मुसलमानों) के आक्रमण का कालखंड रहा है। राजनीतिक दृष्टि से यह कालखंड अव्यवस्था, गृहयुद्ध और विशृंखलता का कालखंड रहा है। भारत पर एक ओर मुस्लिमों का आक्रमण हो रहा था तो दूसरी ओर देसी राजा आपस में लड़ने में व्यस्त थे। संवत् 1704 में सम्राट हर्षवर्धन की मृत्यु के बाद भारत की संगठित शक्ति क्षीण हुई और केंद्रीय सत्ता का न्हास हो गया। उनके बाद प्रतिहार मिहिर ने केंद्रीय सत्ता को बचाने के प्रयास किए लेकिन गहरवार, परमार, चौहान, और चंदेल वंशों के राजपूत राजाओं ने अपने-अपने छोटे स्वतंत्र राज्य स्थापित किए।

नवोदित इस्लाम ने पूर्व-पश्चिम में अपनी सत्ताएँ स्थापित करने के लिए निरंतर आक्रमण करना शुरू किया। राजपूत राजा गृह युद्धों के कारण अपनी शक्ति को कमजोर कर बैठे थे। इसकारण विदेशी आक्रांताओं का डँटकर सामाना कर नहीं पा रहे थे। मुसलमानों ने सिंध को अपना प्रवेशद्वार बनाया और सन 1710-11 में मुहम्मद बिन कासिम ने सिंध पर आक्रमण किया। तब सिंध के राजा दाहिर और उसका पुत्र अपनी भूमि के लिए लड़े लेकिन उनकी हार हुई। क्योंकि दाहिर ब्राह्मण राजा होने के कारण जाटों और राजपूतों ने उन्हें युद्ध में सहायता नहीं की। उल्टे उन्होंने आक्रमणकारियों के साथ हाथ मिलाए।

उत्तर भारत में 10-11 वीं शती तक प्रतिहारों का राज्य बना रहा लेकिन मुस्लिमों के आक्रमण निरंतर होते रहे। दसवीं शती के अंत तक गझनी की सत्ता मुहम्मद गझनवी के हाथ में चली गई। उसने मथुरा और कन्नौज लूटे। ग्वालियर और कालिंजर को भी लूटा। उसके बाद सौराष्ट्र पर आक्रमण करके सोमनाथ के मंदिर से अपार धन राशि लूट ली। मुहम्मद गझनी जब उत्तर भारत में लूट-खसोट कर रहा था तब दक्षिण का राजा चोल अपने राज्य के विस्तार में व्यस्त था। यदि वह अपनी संकुचित राष्ट्रीयता की भावना को छोड़कर पूरी ताकत के साथ मुहम्मद गझनी से लड़ता तो वह एक इंच भी भारत में प्रवेश नहीं कर पाता।

11 और 12 वीं शती तक दिल्ली में तोमर, अजमेर में चौहान और कन्नौज में शक्तिशाली राज्य मौजूद थे। लेकिन मुहम्मद गझनी ने तुर्कों का सफाया करके संपूर्ण भारत पादाक्रांत करने की प्रतिज्ञा की। राजा जयचंद

से हाथ मिलाकर उसने पृथ्वीराज चौहान को हराया और उसे युद्ध में मार दिया। इसकारण कन्नौज और कालिंजर राज्यों का भी पतन हुआ। देखते-देखते पूरे उत्तर भारत में मुस्लिम पताका फहराने लगी। 12 वीं शती में मुहम्मद गोरी ने भारत को पादाक्रांत किया। भारतीय जनता देसी राजाओं के गृहयुद्धों के साथ-साथ विदेशी आक्रमणकारियों के युद्धों एवं अत्याचार को सहने के लिए मजबूर हो गई थी।

संक्षेप में कह सकते हैं कि आदिकालीन राजनीति परिस्थिति गृहयुद्धों, अराजकता, अत्याचार, विद्रोह, विदेशी आक्रमणों के कारण अशांत थी। हिंदू राजा वीर और पराक्रमी जरूर थे लेकिन उनमें संकुचित राष्ट्रीयता की भावना थी। वे यदि संगठित होकर मुस्लिमों के आक्रमणों का सामना करते तो भारत का मानचित्र आज कुछ ओर होता। राजनीतिक दृष्टि से अशांत और युद्धजन्य वातावरण में कवि एक हाथ में तलवार लेकर वीर रस के गीत गा रहे थे तो दूसरी ओर आध्यात्मिक उपदेश भी दिए गए हैं। स्पष्ट है कि राजनीति की दृष्टि से यह कालखंड पतन का काल माना जाता है।

1.3.2.2 आदिकालीन सामाजिक परिस्थिति :

आदिकाल में राजनीतिक उथल-पुथल के कारण समाज भी अस्त-व्यस्त हो चुका था। राजनीति एवं धर्म के पतन के युग में उच्च सामाजिक स्थितियों की कल्पना कैसे कर सकते हैं? जनता शासक और धर्मों के कड़े बंधनों में बंद चुकी थी। इस कालखंड में वर्णाश्रम व्यवस्था के नियम बहुत कड़े थे और इंसान की योग्यता उसके कर्म, गुणों पर नहीं बल्कि जाति और वर्ण पर हो रही थी। स्पृश्य-अस्पृश्यता के नियम भी कड़े हो गए थे। आम जनता अशिक्षित होने के कारण वह साधु संन्यासियों के शाप और वरदान में उलझ चुकी थी। धर्म के आडंबर बढ़ चुके थे। लोग तंत्र-मंत्र और जादू टोना के जरिए आकाल, महामारी और युद्धों को टालने की मानसिकता रखते थे। समाज में ब्राह्मण आदर और सम्मान के पात्र थे। सामंती वीरता और वंश कुलीनता का प्रभाव था। राजपूतों में वीरता और बलिदान जीवन की विशेषता बन चुकी थी। राजपूत स्त्रियाँ भी इसमें पीछे नहीं थी। 'जौहर' उनके आत्मबलिदान और शौर्य का प्रतीक बना था और 'स्वयंवर' भी इस काल की सामाजिक विशेषता थी। लेकिन स्वयंवर के नाम पर खून की नदियाँ बहाई जाती थी। राजा-राजाओं में भीषण युद्ध होते थे। राजपूत राजा वीर, पराक्रमी, दृढ़ प्रतिज्ञ थे लेकिन उनमें कूटनीतिज्ञता और दूरदर्शिता का अभाव था। उनमें विलासी जीवन के प्रति अत्याधिक आसक्ति थी। 'यथा राजा, तथा प्रजा' की उक्ति के अनुसार सामान्य जनता में भी विलासी जीवन के प्रति आसक्ति थी। नारी को भोग की वस्तु समझा जाता था। सामान्य जनता का मनोबल बहुत ही कम था। कुलमिलाकर सामाजिक दृष्टि से यह कालखंड पतनोन्मुख था।

संक्षेप में कह सकते हैं कि आदिकाल की सामाजिक स्थिति पतनशील रही। निरंतर गृहयुद्धों और विदेशी आक्रमणों से सामाजिक जीवन अशांत रहा। धर्म एवं कर्मकांडों के कारण सामान्यों का जीवन नरक बना था। समाज में जातिभेद एवं वर्णभेद का बोलबाला रहा। राजा वीर थे लेकिन विलासी जीवन में व्यस्त थे। नारी को भोग की वस्तु मानकर उसे पाने के लिए अकारण युद्ध छेड़कर सामान्य जनता को परेशान किया जाता था। गरीबी, युद्ध, अशांति कारण सामान्य जनता सदैव भयभीत रहती थी। आदिकालीन रासो काव्यों में समाज की इस दुर्दशा का सटीक वर्णन आया है।

1.3.3 आदिकालीन काव्यधारा की विशेषताएं :

आदिकालीन काव्यधारा संवत् 1050 से लेकर संवत् 1375 तक के कालखंड में लिखे गए काव्य साहित्य पर आधारित है। हिंदी साहित्य में यह कालखंड 'आदिकाल' के नाम से जाना जाता है। आदिकालीन साहित्य पर तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक स्थितियों का गहरा प्रभाव देखने मिलता है। इसलिए आदिकालीन काव्यधाराओं की विशेषता इन्हीं परिस्थितियों के ऊपज है। यह कालखंड राजनीतिक दृष्टि से पतनशील, सामाजिक दृष्टि से हीन-दीन और धार्मिक दृष्टि से कमजोर काल है। इस कालखंड में एक ओर चारण कवियों द्वारा 'रासो ग्रंथों' की निर्मिति हुई तो दूसरी ओर सिद्ध और नाथों ने धार्मिक साहित्य की रचना की है। लेकिन आदिकालीन काव्यधारा की विशेषताओं को 'रासो ग्रंथों' के परिप्रेक्ष्य में देखा जाता है। यह काव्यधारा 'रासो काव्य धारा' के रूप में पहचानी जाती है। अतः आदिकालीन काव्यधारा की प्रमुख विशेषताएँ इसप्रकार है-

1.3.3.1 ऐतिहासिकता का अभाव :

आदिकाल में अधिकांश चारण कवियों द्वारा अपने राजाओं का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन करते हुए 'रासो ग्रंथों' की रचना हुई है। अपने राजा को खुश करने के लिए वे बड़ा-चढ़ाकर वर्णन करते थे इसलिए इसमें ऐतिहासिकता का अभाव दिखाई देता है। अधिकांश चारणकवियों ने अपने रचनाओं में इतिहास प्रसिद्ध राजाओं को चरित नायकों के रूप में लिया है। लेकिन उनके वर्णन इतिहास की कसौटी पर खरे नहीं उतरते हैं। रासो ग्रंथों में ऐतिहासिक तथ्य बहुत हैं और कल्पना अधिक है। इसके कारण उनके वर्णन ऐतिहासिक तथ्यों एवं कालखंडों से मेल नहीं खाते हैं। इतिहास को विषय बनाकर काव्य लिखने के लिए जो सावधानी बरतनी चाहिए, उसका इनकी काव्यों में नितांत अभाव है। इन चारण कवियों को अपने राजाओं को राम, कृष्ण, युधिष्ठिर आदि अवतारी पुरुषों से भी श्रेष्ठ साबित करना था, इसकारण उन्होंने इतिहास को कल्पना के चरणों पर न्यूँछावर कर दिया है। इनके रासो ग्रंथों से ऐतिहासिक तथ्य और सत्य का नितांत अभाव है।

1.3.3.2 प्रामाणिकता का अभाव :

आदिकालीन सभी 'रासो ग्रंथों' की प्रामाणिकता संदिग्ध है। इस कालखंड में प्रमुख रूप से विजय कृत 'खुमाण रासो', जगनिक कृत 'परमाल रासो', नरपति नाल्ह कृत 'बिसलदेव रासो' और चंदवरदायी कृत 'पृथ्वीराज रासो' ये चार ग्रंथ प्राप्त होते हैं। इन रासो ग्रंथों पर शताब्दियों तक परिवर्तन, संशोधन होने के कारण इनका मूल रूप दब गया है। मूल कवियों की रचनाओं में मोहवश अन्य कवियों ने कब और कितने अंश जोड़ दिए हैं, इसका फैसला करना बहुत कठिन है। इनका शुद्ध रूप या पांडुलिपियाँ नहीं मिलती हैं। इन रासो ग्रंथों में उसी समय या कालखंड की जानकारी मिलना संभव नहीं है। 'खुमाण रासो' में 16 शती तक की सामग्री प्राप्त होती है। 'परमाल रासो' का रूप अल्लखंड से अधिक बदल गया है। 'पृथ्वीराज रासो' की प्रामाणिकता आज भी संदिग्ध है। 'बीसलदेव रासो' लघु काव्य होने के कारण उसमें कम बदलाव हुए हैं। फिर भी बीसलदेव जैसा पराक्रमी राजा अपना राज्य छोड़कर बारह वर्षों तक उडिसा में रहा था, इस पर हम विश्वास नहीं कर सकते।

स्पष्ट है कि इस काल के रासो ग्रंथों में व्यक्ति विपर्यय, स्थान-विपर्यय और काल-विपर्यय का दोष नज़र आते हैं। भाषा और शैली में भी जगह-जगह पर अंतर पाए जाते हैं। ये रचनाएँ गेय होने के कारण इनके मूल रूप की छान-बिन करना आज बहुत ही मुश्किल है।

1.3.3.3 युद्धों का सजीव वर्णन :

आदिकालीन चारण कवि किस-न-किस राजा के आश्रित कवि थे। वे काव्य-कला के साथ-साथ युद्ध कला में भी निपुण थे। समय पड़ने पर वे राज के साथ युद्ध भूमि पर अपना युद्ध कौशल भी दिखाते थे। इसकारण युद्ध वर्णन उनकी स्वानुभूति थी। वे अपनी कविताओं में युद्धों के देखे हुए मंझर का वर्णन करते थे। इसकारण उनके काव्यों में घोड़ों के टापों की आवाज, धनुष्य की टंकार, तलवार की झंकार, रक्त की बहती धारा आदि का प्रभावशाली वर्णन किया है। रणभूमि के सजीव चित्र उपस्थिति करने में यह कवि निपुण थे। उन्होंने सैन्य बल का ही नहीं बल्कि योद्धाओं की ऊर्जावान मनोदशा और क्रियाकलापों का भी सुंदर वर्णन किया है। कुछ काव्यों में युद्ध का खुलकर वर्णन हुआ तो कुछ ग्रंथों में वस्तु परिगणन शैली का प्रयोग किया गया है। इससे कथा-काव्य में नीरसता आ गई है। यह दोष छोड़ दिया जाए तो रासो काव्य युद्धों के सजीव वर्णन में प्रभावकारी सिद्ध होते हैं।

1.3.3.4 वीर और शृंगार रस की प्रमुखता :

आदिकालीन काव्यधारा में वीर और शृंगार रस की प्रमुखता दिखाई देती है। उनके काव्यों में वीर और शृंगार का सुंदर समन्वय स्थापित किया गया है। रासो ग्रंथों में वीर रस का पुष्ट रूप दिखाई देता है। तत्कालीन कालखंड गृहयुद्धों और विदेशी आक्रांताओं के आक्रमण का कालखंड होने कारण हमेशा युद्धों का माहौल बना रहा था। इसकारण इनके काव्यों में युद्ध का सजीव वर्णन आने के कारण वीर रस का अनायास ही प्रयोग हुआ है। वीरता और आत्मोत्सर्ग इस कालखंड के अत्युच्च जीवनादर्श थे। इस संदर्भ में कवि चंद्रवदाई लिखते हैं- “बारह बरस लै कूकर जिये, / और तेरह लै जिये सियार/ बरस अठारह क्षत्रिय जिये,/ आगे जीवन को धिक्कार।” अर्थात् क्षत्रियों के लिए युद्ध के बिना अपना जीवन व्यर्थ-सा लगता था।

इन युद्धों के केंद्र में अनेक बार स्वयंवर और स्त्री को पाने की कामना थी। इसकारण अनायास इनके काव्य में दूसरा प्रधान रस शृंगार है। रासो ग्रंथों में नर-नारी के प्रेम को विद्वानों ने शृंगार रस की उपमा दी है। लेकिन इस प्रेम में सात्विकता, उदात्तता की कमी है। राजकुमारियों की सौंदर्य का वर्णन बहुत ही अतिशयोक्ति पूर्ण तरीके से किया है। नायिका के रूप-सौंदर्य के साथ-साथ प्रकृति के षट्क्रतु का वर्णन भी शृंगार रस को पुष्ट करता दिखाई देता है। संक्षेप में कह सकते हैं कि रासो ग्रंथों में वीर रस की प्रधानता रही है और शृंगार रस उसे सहायक के रूप में ऊर्जा प्रदान करता है।

1.3.3.5 आश्रयदाताओं का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन :

आदिकालीन रासो काव्यों के रचयिता कवि तत्कालीन राजाओं के आश्रय में रहते थे। आश्रयदाता की कृपादृष्टि बनी रहे और उनकी प्रशंसा पाने के लिए चारण कवि उनके दैनिक क्रिया-कलापों का बड़ा-चढ़ाकर

वर्णन करते थे। वे अपने राजाओं को नायक बनाकर प्रतिपक्षी राजा की हीनता का वर्णन अतिशयोक्तिपूर्ण तरीके से करके अपने राजा की प्रशंसा करते थे। वे अपने राजा के यश, कीर्ति और वैभव का बखाण गाते रहते थे। कहीं-कहीं जगहों पर तो उन्होंने अवतारी महापुरुष राम, कृष्ण, युधिष्ठिर और हरिश्चंद्र से भी बढ़कर अपने आश्रयदाताओं की प्रशंसा की है। अपने आश्रयदाता की कृपादृष्टि और उपहार पाने की दृष्टि से भी यह वर्णन किया गया है।

1.3.3.6 संकुचित राष्ट्रीयता की भावना :

आदिकालीन कालखंड में भारत में अनेक वीर-पराक्रमी राजपूत राजा था। लेकिन इनमें संकुचित राष्ट्रीयता की भावना थी। वे अखंड भारत वर्ष के बार में नहीं सोचते थे। छोटे-छोटे उनके राज्य ही उनके लिए भारत था। इसलिए वे दूसरे राजाओं को परास्त करके अपना राज्य सुरक्षित रखने के लिए विदेशी आक्रमणकारियों से हाथ मिलाते थे। जैसे देशद्रोही राजा जयचंद का गुणगान करने वाले भी चारण कवि उस समय थे। राजा जयचंद ने मुहम्मद घोरी से हाथ मिलाकर पृथ्वीराज चौहान को युद्ध में हाराया और उस में पृथ्वीराज चौहान की मौत हुई। उसके बाद घोरी ने हिंदुस्तान को पादाक्रांत करके छोटे-छोटे राज्यों का पतन किया। उस समय छोटे-छोटे राज्य ही भारत हुआ करते थे इसकारण अजमेर और दिल्ली के राजकवि को कन्नौज तथा कालिंजर के समृद्धि या पतन पर खुशी या गम नहीं होता था। उस समय के राजाओं ने अपने सौ-पचास गाँवों को मिलाकर अपना राज्य बनाया था तो उनके चारण कवियों को भी उनके अधीन ही रहना था। इसकारण उनकी कविताओं में राष्ट्रीयता की संकुचित भावना दिखाई देती है। यदि उस समय अखंड भारत की राष्ट्रीय भावना और निष्ठा होती तो आज भारत का मानचित्र कुछ ओर ही होता।

1.3.3.7 प्रकृति का चित्रण :

आदिकालीन काव्यग्रंथों में प्रकृति का स्वतंत्र रूप से चित्रण बहुत कम मिलता है। प्रकृति के आलंबन और उद्दीपन दोनों रूपों का चित्रण देखने मिलता है। इसमें उद्दीपन रूप में प्रकृति का चित्रण अधिक हुआ है। कहीं-कहीं पर प्रकृति के वर्णन में वस्तु, नाम परिगणन शैली को अपनाने से कथा प्रवाह में बाधा उपस्थित हुई है और वर्णन में नीरसता आई है। रासो ग्रंथ वर्णनात्मक शैली में होने के कारण नगर, राजमहल, नदी, पहाड़ आदि का विस्तार से वर्णन हुआ है।

1.3.3.8 'रासो' नामकरण :

आदिकाल के अधिकांश काव्यग्रंथों के नाम के साथ 'रासो' यह शब्द जुड़ा है। विद्वानों ने इसके अनेक अर्थ बताए हैं। कुछ विद्वान 'रासो' शब्द का संबंध 'रहस्य' से जोड़ते हैं। तो कुछ लोग 'रसायन' से। विख्यात फ्रांसिसी इतिहासकार गार्सा-द-तासी 'रासो' शब्द का संबंध 'राजसुय यज्ञ' से जोड़ते हैं। कुछ विद्वानों ने इसका संबंध 'रासक' से जोड़ा है, जिसका अर्थ है- क्रीड़ा, नृत्य या ध्वनि है। लेकिन रासो ग्रंथों के संदर्भ में यह सभी भ्रामक धारणाएँ हैं। मूलतः 'रासक' एक छंद है जिसका प्रयोग अपभ्रंश साहित्य में मिलता है। इसके बाद इसका प्रयोग गेय रूपक के लिए होने लगा। उसके बाद यह चरित काव्य और कथा काव्य के लिए रूढ़ हो गया। मूलतः रासो काव्य वीर चरित्रों की पद्यबद्ध गेय कथा है।

1.3.3.9 काव्य के दो रूपों का प्रयोग :

आदिकालीन काव्यधारा में मूलतः प्रबंध और मुक्तक इन दोनों काव्यरूपों का प्रयोग देखने मिलता है। अधिकांश वीरगाथाएँ प्रबंध काव्य भेद में लिखी गई हैं— जैसे ‘पृथ्वीराज रासो’ प्रबंध काव्य है तो ‘बीसलदेव रासो’ मुक्त काव्य की कोटि में आता है। इस कालखंड में काव्य की अन्य शैली दिखाई नहीं देती क्योंकि सभी चारण कवि वीरगाथाएँ ही लिख रहे थे। इसलिए उन्होंने प्रबंध काव्य शैली को ही प्रमुख रूप से अपनाया था। काव्य के इन दो रूपों के अतिरिक्त फूटकर रूप में गद्य लिखे जाने के संकेत भी मिलते हैं।

1.3.3.10 विविध छंदों का प्रयोग :

आदिकालीन काव्यधारा में छंदों का विविधमुखी प्रयोग देखने मिलता है। इसके पूर्व साहित्य में या उसके बाद के साहित्य में छंदों का इतना विविधमुखी प्रयोग देखने नहीं मिलता है। इस कालखंड में प्रमुख रूप से दोहा, तोमर, रोला, तोटक, उल्लाहा, साटक, कुंडलियाँ आदि छंदों का बहुत ही कलात्मक ढंग से प्रयोग किया गया है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी छंदों के प्रयोग के संदर्भ में लिखते हैं, “रासो के छंद जब बदलते हैं, तो श्रोता के चित्त में प्रसंगानुकूल नवीन कंपन उत्पन्न करते हैं।” ‘पृथ्वीराज रासो’ में छंदों का विविधमुखी प्रयोग देखने मिलता है। इसकारण ‘पृथ्वीराज रासो’ ग्रंथ को ‘छंदों का अजायब घर’ और उसके रचनाकार चंदबरदाई को छंदों का सम्राट कहा जाता है। भाव प्रकटीकरण के प्रमुख उद्देश्य से ही इन छंदों का प्रयोग हुआ है।

1.3.3.11 डिंगल और पिंगल भाषा का प्रयोग :

आदिकालीन काव्य के लिए जो भाषा का प्रयोग हुआ था वह आज की खड़ी बोली से बिल्कुल भिन्न थी। डिंगल और पिंगल ये दोनों अपभ्रंश भाषा के रूप थे। अपभ्रंश और राजस्थानी के मेल से डिंगल भाषा बनी थी जो चारण कवियों के लिए गेय भाषा थी। इसी भाषा में चारण कवि वीरगाथाओं का गायन करते थे। तो अपभ्रंश और ब्रज भाषा से पिंगल भाषा बनी थी। इसमें संस्कृत के तत्सम, तद्भव शब्दों के साथ अरबी, फारसी, के शब्द प्राप्त होते हैं। वीर रस के भावों को व्यक्त करने के लिए डिंगल और पिंगल भाषा उपयोगी थी इसलिए रासो ग्रंथों में इनका प्रयोग हुआ है।

1.3.3.12 जन-जीवन के संपर्क का अभाव :

आदिकालीन काव्यधारा आम जनता के जीवन से कोसो दूर थी। सभी रासो ग्रंथ सामंती जीवन पर लिखे जाने के कारण उनमें आश्रयदाता राजाओं के ही जीवन का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन आया है। अपने आश्रयदाता का गुणगान करना ही उनके साहित्य कर्म का प्रमुख उद्देश्य था। इसकारण आदिकालीन काव्यधारा आम जनता के जनजीवन की धड़कनों से कोसो दूर रहा और सामंती विलासपूर्ण जीवन के गुण-गायन में व्यस्त रहा।

संक्षेप में कह सकते हैं कि आदिकालीन काव्यधारा की विशेषता तत्कालीन परिस्थितियों की देन है। चारण कवियों में अत्युच्च काव्य प्रतिभा थी जो साहित्यिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है। कथानकों के विषय, वर्णनात्मकता, भावाभिव्यक्ति, वीर-शृंगार रस का अद्भुत समन्वय, छंदों का बहुमुखी प्रयोग आदि के कारण आदिकालीन काव्यधारा हिंदी साहित्य के इतिहास में अपना विशेष स्थान रखती है।

1.3.4 आदिकालीन प्रातिनिधिक रचनाकारों का सामान्य परिचय – अमीर खुसरो, विद्यापति :

आदिकाल में एक ओर चारण कवियों द्वारा रासो काव्य लिखे जा रहे थे तो दूसरी ओर सिद्ध, नाथ, जैन साधुओं द्वारा उपदेशपरक धार्मिक साहित्य भी लिखा जा रहा था। सिद्ध कवि सरहपाद को हिंदी का पहला कवि माना जाता है जिन्होंने 'दोहाकोश' की रचना की ऐसा माना जाता है। लेकिन यह रचना उपलब्ध नहीं होती। जैन कवि शालिभद्र सूरि ने 'भरतेश्वर बाहुबली रास' नामक ग्रंथ की रचना की। जैन आचार्य देवसेन ने 'श्रावकाचार' ग्रंथ की रचना की। लेकिन इनके अलावा अमीर खुसरो और विद्यापति जैसे कुछ चुनिंदा कवि लीक से हटकर मौलिक साहित्य का सृजन कर रहे थे। अमीर खुसरो ने जनता के मनोरंजन के लिए पहेलियाँ, मुकरियाँ लिखी, विद्यापति की पदावली भी महत्वपूर्ण मानी जाती है। दोनों प्रतिनिधि कवियों का संक्षिप्त परिचय इसप्रकार है-

1.3.4.1 अमीर खुसरो का सामान्य परिचय:

आदिकालीन साहित्य के आखिरी वर्षों में अमीर खुसरो एक प्रतिनिधि कवि माने जाते हैं। उन्होंने आदिकाल में ही खड़ी बोली हिंदी का प्रयोग किया। इसकारण उन्हें खड़ी बोली हिंदी का पहला कवि माना जाता है। उन्होंने जनता के मनोरंजन के लिए पहेलियाँ और मुकरियाँ लिखकर बहुत शोहरत बटोरी। उनका जीवन परिचय इसप्रकार है-

*** जीवन परिचय :** अमीर खुसरो का असली नाम अब्दुल हसन था। इनका जन्म एटा जिले के पटियाली गाँव में 1255 ई. को हुआ। इनके पिता का नाम अमीर सैफुद्दीन महमूद था जो तुर्किस्तान में लाचीन कबीले के सरदार थे। अमीर खुसरो उनके तीसरे बेटे थे। इनके गुरु का नाम निजामुद्दीन अवलिया था। उन्होंने अपने जीवन काल में दिल्ली के सात सुलतानों की सेवा की थी। उन्होंने गुलाम वंश का पतन, खिलजी वंश का उत्थान और तुघलक वंश का आरंभ देखा था। इनके बारे में ठोस जानकारी उपलब्ध नहीं होती लेकिन इनके एक लड़की और तीन लड़के थे। इनकी मृत्यु 1324 ई. को हुई।

*** व्यक्तित्व :** अमीर खुसरो बहुत ही खुशमिज़ाज और मिलनसार व्यक्ति थे। उन्हें अरबी, फारसी, तुर्की तथा हिंदी भाषा का अच्छा ज्ञान था। वे अपने उदार मन के लिए प्रसिद्ध थे। सुलतानों की खिदमत करके जो भी धन इन्हें प्राप्त होता, वह उसे गरीबों में बाँट देते थे। उनमें कहीं से भी सांप्रदायिक कट्टरता नहीं थी। वे एक संगीतज्ञ भी थे। उन्होंने सितार और तबला का आविष्कार किया था।

*** अमीर खुसरो की रचनाएँ :**

अमीर खुसरो ने लगभग 100 ग्रंथों की रचना की ऐसा माना जाता है लेकिन इनमें से 20-21 रचनाएँ ही प्राप्त होती हैं। उनकी रचनाओं में 1. खालिकबारी 2. खुसरो की पहेलियाँ 3. खुसरो की मुकरियाँ 4. दो सुखने 5. गजल 6. 'किस्सा-चहार-दरवेश' 7. 'अरबी-फारसी-तुर्की पर्याय कोष' आदि उल्लेखनीय हैं। उनकी रचनाओं के कुछ उदाहरण इसप्रकार हैं-

*** पहेलियाँ :**

“एक थाल मोती से भरा/ सब के सीर पर औंधा धरा/ चारो ओर वह थाल फिरे/ मोती उससे एक भी न गिरे।”

उत्तर : तारों भरा आकाश

*** मुकरियाँ :**

“मेरा मोसे सिंगार करावत,/आगे बैठत मान बढ़ावत/ ये सखी साजन, / ना सखि दर्पण।”

*** ढकोसला :**

“खीर पकाई जतन से/ चर्खा दिया चलाय/ आया कुत्ता खाय गया खीर/बैठी ढोल बजाय।”

*** सखुने :**

“तरवर से एक तिरीया उतरी/ उसने बहुत रिझाया/ बाप का उस ने नाम जो पुछा/ आधा नाम बताया/
आधा नाम पिता पर प्यारा/ बूझ पहेली गोरी।”

उत्तर : निंबोणी

*** अमीर खुसरो की साहित्यिक योगदान :**

आदिकालीन साहित्य की पारंपरिकता और जटिलता से उपर उठकर अमीर खुसरो ने साहित्य में एक नया रास्ता तलाशा। उन्होंने जीवन के रोज के संकट और आत्मानुशासन की कठोर शृंखला को तोड़कर जीवन को आनंद और मनोरंजन से जोड़ दिया। अपने साहित्य के द्वारा उन्होंने हिंदू-मुस्लिम एकता का प्रयास किया। उस समय हिंदी और उर्दू भाषा की उत्पत्ति को लेकर विवाद एवं भ्रामक धारणाएँ थी। कुछ लोग हिंदी का जन्म उर्दू से मानते थे लेकिन खुसरो ने हिंदी का जन्म उर्दू से नहीं बल्कि उर्दू तो हिंदी की एक शैली होने की बात स्पष्ट की। इसकारण भाषाशास्त्र की दृष्टि से भी इनका साहित्य मौलिक है। तत्कालीन बादशाहों की ऐतिहासिक घटनाएँ इनके साहित्य में सुरक्षित है। उनके साहित्य के ऐतिहासिक तथ्य अधिक विश्वसनीय है। उन्होंने खड़ी बोली हिंदी को साहित्य में स्थापित करने का सर्वप्रथम प्रयास किया है। उन्होंने जीवन को गंभीरता और उदासीनता से बाहर लाकर मनोरंजन से जोड़ दिया। पहेलियाँ, मुकरियाँ तथा सखुनों के द्वारा कौतुहल और विनोद की निर्मिति की। मानव मन को प्रसन्न करना ही अमीर खुसरो की कविता का प्रधान उद्देश्य था।

1.3.4.2 विद्यापति का सामान्य परिचय :

आदिकाल के उत्तरार्ध में प्रतिनिधि कवियों में विद्यापति का नाम विशेष प्रसिद्ध है। मैथिली और संस्कृत भाषा के विख्यात कवि थे। वे राजा कीर्तिसिंह और राजा शिवसिंह के दरबारी कवि थे और शृंगारिक पदावली लेखन में इनकी विशेष ख्याति थी। उनकी कविताओं में भक्ति और शृंगार का संगम दिखाई देता है। इनका कालखंड 14 वीं शती का मध्यकाल माना जाता है। उनका जीवन एवं रचनात्मक परिचय इसप्रकार है-

* जीवन परिचय :

विद्यापति के जन्म के संबंध में निश्चित समय उपलब्ध नहीं है फिर भी इनका जन्म 1350-1374 ई. के मध्य में माना जाता है। उनका पूरा नाम विद्यापति ठाकुर था। बिहार के दरभंगा जिले में स्थिति बिसपी गाँव में मैथिल ब्राह्मण परिवार में इनका जन्म हुआ। इनके पिता का नाम गणपति ठाकुर और माता का नाम हाँसिनी देवी था। इनके पिता एक विख्यात कवि थे। उन्होंने अपने गुरु पंडित हरि मिश्र से शिक्षा अर्जित की। संस्कृत, अवहट्ट और मैथिली भाषा के अच्छे ज्ञाता थे। उन्होंने अपने जीवन काल में राजा कीर्तिसिंह और राजा शिवसिंह के दरबारी कवि के रूप में कार्य किया। राजा शिवसिंह के वे बालसखा थे और राजा शिवसिंह ने उनकी काव्यप्रतिभा से खुश होकर उन्हें बिपसी यह गाँव उपहार के रूप में दिया और 'अभिनव जयदेव' की उपाधि दी।

* विद्यापति की रचनाओं का परिचय :

विद्यापति का नाम भक्ति के पदों, शृंगारिक पदावली के लिए विशेष चर्चा में रहा। उनके गीतों के अनुकरण पर आगे गीत लेखन की परंपरा दृढ़ हुई। विद्यापति ने मैथिली, अवहट्ट और संस्कृत भाषा में साहित्य रचनाएं लिखी। उनमें से उल्लेखनीय रचनाओं के नाम हैं—

१. संस्कृत भाषा की रचनाएँ : 'शैव सर्वस्व सार', 'गंगा वाक्यावली', 'दुर्गाभक्त तरंगिणी', 'भूम परिक्रमा', 'दान वाक्यावली', 'पुरुष परीक्षा', 'विभाग सार', 'लिखनावली', 'गोरक्ष विजय' (गद्य रचना) आदि।
२. अवहट्ट भाषा की रचनाएँ : 'कीर्तिलता' और 'कीर्तिपताका' ।
३. मैथिली भाषा की रचनाएँ : 'गोरक्ष विजय' (पद्य), 'पदावली' ।

* विद्यापति की साहित्यिक योगदान :

विद्यापति का नाम विशेष रूप में 'पदावली' के लिए मशहूर हुआ है। विद्यापति के पदावली को आधार मानकर उनके साहित्य को भक्ति साहित्य, रहस्यवादी साहित्य और शृंगारी साहित्य के श्रेणी में रखने का प्रयास विद्वानों ने किया है। हिंदी साहित्य के इतिहासकार जॉर्ज ग्रियर्सन इन्हें भक्त कवि मानते हैं, नागेंद्रनाथ गुप्त और जनार्दन मिश्र इन्हें रहस्यवादी कवि मानते हैं जबकि आचार्य रामचंद्र शुक्ल, रामकुमार वर्मा इन्हें शृंगारी कवि मानते हैं। विद्यापति के पद गौड़ीय वैष्णव भक्तों की श्रुति परंपरा में बहुत ही लोकप्रिय हुए। सन् 1881 ई. को जॉर्ज ग्रियर्सन ने भक्तों के मुख से सुनकर इनके 82 पदों का संकलन किया। उसके बाद बंगाल के नागेंद्रनाथ गुप्त ने 'विद्यापति की पदावली' नाम से इनके पदों का संकलन किया।

विद्यापति के पद अधिकांश रूप में राधा-कृष्ण प्रेम पर आधारित है। कुछ पदों में प्रकृति चित्रण, देवों की स्तुति और शैव संप्रदाय पर आधारित है। विद्यापति खुद शैव संप्रदाय से थे लेकिन उन्होंने पदावली में राधा-कृष्ण को नायक-नायिका के रूप में चित्रित किया है। उनके अधिकांश पद शृंगारिक हैं और उनकी रचना भक्त

की दृष्टि से नहीं बल्कि शृंगारी कवि की दृष्टि की गई है। उनके पदों में राधा के नख-शिख की सुंदरता का वर्णन, आकर्षण और नायक कृष्ण के हृदय में प्रेम-वैचित्र्य का वर्णन है। प्रणय, स्नेह, मान, राग, अनुराग आदि भावों का सुंदर संयोजन इन पदों में है। इसकारण महाकवि निराला जी ने विद्यापति के पदों की मादकता को 'नागिन की लहर' कहा है।

उनकी रचनाओं में लोकजीवन के तत्त्व, लोकोक्ति, मुहावरें, अंधविश्वास, रीति-रिवाज, प्रथाओं का सुंदर समन्वय किया गया है। उन्होंने भगवान श्रीकृष्ण को एक सामान्य मनुष्य के रूप में चित्रित करते हुए उन्हें लोक-जीवन से जोड़ा है। प्रकृति चित्रण करते हुए उन्होंने अलंकारों के विविध रूपों का इस्तेमाल किया है। विद्यापति ने गीतों को लोक जीवन से जोड़ने का काम किया। उनके गीत मार्मिक एवं रागात्मकता के लिए काफी प्रसिद्ध थे। गेयता उनके गीतों की खासियत थी। उन्होंने लोकधुनों और रागों तक को अपनाया था। उनके गीतों की मधुरता के कारण ही हिंदी साहित्य जगत में उन्हें 'मैथिल कोकिल', 'अभिनव जयदेव', 'कवि शेखर', 'खेलन कवि', 'कवि कंठहार', 'पंचानन' आदि नामों से पहचाना जाता है। हिंदी साहित्य के गीतों, पदों और शृंगार रस योजना की परंपरा की पहली कड़ी के रूप में उनकी पदावली को याद किया जाता है।

1.4 स्वयंअध्ययन के लिए प्रश्न :

(अ) निम्नलिखित प्रश्नों के सही विकल्पों को चुनिए।

- हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन की परंपरा का सूत्रपात किस शती से हुआ?

अ. 17 वीं	ब. 18 वीं
क. 19 वीं	ड. 20 वीं
- हिंदी साहित्य का इतिहास लेखन का सर्वप्रथम प्रयास ने किसने किया?

अ. 'गार्सा-द-तासी'	ब. जॉर्ज ग्रियर्सन
क. आ. रामचंद्र शुक्ल	ड. डॉ. रामकुमार वर्मा
- हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन की परंपरा में स्वदेशी विद्वानों में सर्वप्रथम नाम किसका आता है?

अ. आ. रामचंद्र शुक्ल	ब. शिवसिंह सेंगर
क. मिश्रबंधु	ड. आ. हजारीप्रसाद द्विवेदी
- हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन की परंपरा में जॉर्ज ग्रियर्सन ने कौनसे ग्रंथ की रचना की?

अ. हिस्टरी ऑफ हिंदी लिटरेचर	ब. हिस्टरी ऑफ इंडिया
क. द मार्टन वर्नेक्यूलर लिटरेचर ऑफ हिंदुस्तान	ड. एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल
- जॉर्ज ग्रियर्सन के 'द मार्टन वर्नेक्यूलर लिटरेचर ऑफ हिंदुस्तान' यह ग्रंथ किस पत्रिका के लिए विशेषांक के रूप में लिखा था?

- अ. एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल ब. बंगला गॅज़ेट
क. उदंड मार्तंड ड. कविवचन सुधा
6. मिश्रबंधुओं ने हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन की परंपरा में कौनसे ग्रंथ की रचना की?
अ. मिश्रबंधु सरोज ब. मिश्रबंधु कल्पना
क. मिश्रबंधु विनोद ड. मिश्रबंधु इतिहास
7. आचार्य रामचंद्र शुक्ल के किस ग्रंथ को अब तक का हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास माना जाता है?
अ. हिंदी साहित्य का इतिहास ब. हिंदी साहित्य का आदिकाल
क. आधुनिक हिंदी का इतिहास ड. हिंदी साहित्य का उद्भव और विकास
8. आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 'हिंदी साहित्य का इतिहास' यह ग्रंथ सर्वप्रथम किसकी भूमिका के रूप में लिखा था?
अ. आदिकाल की भूमिका ब. हिंदी शब्द सागर
क. हिंदी भाषा उदब भव ड. संत तुलसीदास
9. आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने सं. १०५० से सं. १३७५ तक के कालखंड के साहित्य को कौनसा नामकरण दिया है?
अ. चारण काल ब. बीजवपन काल
क. वीरगाथाकाल ड. सिद्धसामंत युग
10. डॉ. रामकुमार वर्मा ने हिंदी साहित्य के प्रारंभिक काल को कौनसा नाम देना युक्तिसंगत माना?
अ. पूर्वकाल ब. प्रथम चरण
क. चारणकाल ड. वीरगाथा काल
11. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन परंपरा में कौनसे ग्रंथ की रचना की?
अ. हिंदी साहित्य का आदिकाल ब. हिंदी साहित्य की भूमिका
क. हिंदी साहित्य का उद्भव और विकास ड. ये सभी
12. किसकी मृत्यु के बाद भारत की संगठित शक्ति क्षीण होकर केंद्रीय सत्ता का ज्हास हुआ?

- अ. सम्राट अशोक ब. सम्राट हर्षवर्धन
क. सम्राट चक्रधर ड. सम्राट शिद्धोधन
13. दसवीं शती के अंत तक गङ्गानी की सत्ता किसके हाथ में आ गई?
अ. मुहमंद शाह रंगिला ब. मुहमंद बिन कासिम
क. मुहम्मद गङ्गनवी ड. मुहम्मद गोरी
14. उत्तर में मुहम्मद गोरी आक्रमण करके भारत को पादाक्रांत कर रहा था तब दक्षिण में कौनसा राजा अपने राज्य विस्तार में व्यस्त था?
अ. चोल राजा ब. कृष्ण देवराय
क. सम्राट अशोक ड. पृथ्वीराज चौहान
15. आदिकालनी काव्यधारा में कौनसे रस की प्रधानता थी?
अ. भय और शोक ब. वीर और शृंगार
क. हास्य और भक्ति ड. वीर और हास्य

(आ) निम्नलिखित प्रश्नों के सही विकल्पों को चुनकर रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

1. हिंदी साहित्य के संवत् 1050 से संवत् 1375 तक के कालखंड को कहा जाता है।
अ. भक्तिकाल ब. रीतिकाल
क. आदिकाल ड. आधुनिक काल
2. 'इस्त्वार द ला लितरेत्यूर ऐन्दुई ऐन्दुस्तानी' इस हिंदी साहित्य के इतिहास ग्रंथ का लेखन ने किया है।
अ. जॉर्ज ग्रियर्सन ब. गार्सा-द-तासी
क. कामिल बुल्के ड. रिचर्डसन
3. शिवसिंह सेंगर ने हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन करके ग्रंथ की निर्मिती की।
अ. शिवसिंह सरोज ब. हिंदी साहित्य का इतिहास
क. आदिकाल ड. हिंदी साहित्य
4. अंग्रेजी भाषाविद्वान जॉर्ज ग्रियर्सन ने हिंदी साहित्य के को स्वर्णयुग माना है।
अ. आदिकाल ब. भक्तिकाल

- क. रीतिकाल ड. आधुनिक काल

5. मिश्रबंधुओं के ‘मिश्रबंधु विनोद’ इतिहास ग्रंथ में कवियों का जीवनवृत्तांत संकलित है।
अ. ५ हजार ब. ४ हजार
क. ३ हजार ड. २ हजार

6. आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने ‘हिंदी साहित्य का इतिहास’ इस ग्रंथ से इतिहास लेखन में पद्धति का सूत्रपात किया।
अ. वर्णानुक्रमी ब. कालानुक्रमी
क. विधेयवादी ड. तुलनात्मक

7. डॉ. रामकुमार वर्मा ने हिंदी साहित्य इतिहास ग्रंथ की रचना की है।
अ. हिंदी साहित्य की भूमिका ब. हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास
क. हिंदी साहित्य उद्भव ड. शिवसिंह सरोज

8. आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने वीरगाथाकाल को कहना अधिक उचित समझा है।
अ. आदिकाल ब. चारणकाल
क. बीजवपन काल ड. सिद्ध-सामंत युग

9. ‘आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास’ यह की रचना है।
अ. डॉ. नामवर सिंह ब. आ. रामचंद्र शुक्ल
क. डॉ. बच्चन सिंह ड. डॉ. रामकुमार वर्मा

10. ने सौराष्ट्र के सोमनाथ मंदिर से अपार धनराशि लूटी।
अ. मुहम्मद गज़नवी ब. गोरा बादल
क. मुहम्मद बिन कासीम ड. मुहम्मद गोरी

11. १२ वीं शती में ने भारत को पादाक्रांत किया।
अ. मुहम्मद गज़नवी ब. गोरा बादल
क. मुहम्मद बिन कासीम ड. मुहम्मद गोरी

12. मुहम्मद गोरी ने रजपूत राजा जयचंद की मदद से को युद्ध में हराया।

- अ. पृथ्वीराज चौहान ब. सम्राट अशोक
क. सम्राट हर्षवर्धन ड. राजा चोल
13. राजपूत स्त्रियों के लिए आत्मबलिदान और शौर्य का प्रतीक था।
अ. सती जाना ब. जौहर
क. केशवपन ड. पुनर्विवाह
14. 'बीसलदेव रासो' की रचना ने की।
अ. नरपति नाल्ह ब. जगनिक
क. चंदबरदाई ड. दलपित विजय
15. 'पृथ्वीराज रासो' की रचना ने की।
अ. नरपति नाल्ह ब. जगनिक
क. चंदबरदाई ड. दलपित विजय
16. 'खुमान रासो' की रचना ने की।
अ. नरपति नाल्ह ब. जगनिक
क. चंदबरदाई ड. दलपित विजय
17. 'परमाल रासो' की रचना ने की।
अ. नरपति नाल्ह ब. जगनिक
क. चंदबरदाई ड. दलपित विजय
18. 'रासो काव्य' से जुड़े रासो शब्द का संबंध है जो अपभ्रंश साहित्य में एक छंद प्रकार है।
अ. रसायन ब. रास
क. रासक ड. रासलीला
19. 'रासो काव्य' की पद्य बद्ध गेय कथा है।
अ. वीर चरित्रों ब. खल चरित्रों
क. महान चरित्रों ड. दुश्चरित्रों
20. को छंदों का अजायब घर कहा जाता है।

- अ. बीसलदेव रासो ब. परमाल रासो
क. पृथ्वीराज रासो ड. खुमान रासो
21. को छंदों का सम्राट कहा जाता है।
अ. नरपति नाल्ह ब. जगनिक
क. चंदबरदाई ड. दलपित विजय
22. रासो ग्रंथों में भाषा का प्रयोग किया गया है।
अ. डिंगल और पिंगल ब. फारसी और उर्दू
क. अवहट्ट और संस्कृत ड. खड़ी बोली और अपभ्रंश
23. अमीर खुसरो का असली नाम था।
अ. मुहम्मद खुसरो ब. अब्दुल हसन
क. अब्दुल रहमान ड. अब्दुल कासिम
24. आदिकाल में पहेलियाँ, मुकरियाँ और सखुने इस मनोरंजक साहित्य की निर्मिति ने की।
अ. अमीर खुसरो ब. सहरपा
क. विद्यापति ड. स्वयंभू
25. अमीर खुसरो के गुरु का नाम था।
अ. हरि मिश्र ब. रामानंद
क. निजामुद्दीन अवलिया ड. मुहम्मद रंगीला
26. अमीर खुसरो ने भारतीय संगीत क्षेत्र में वाद्यों का आविष्कार किया।
अ. सतार और तबला ब. ढोल और बाँसुरी
क. सनई और बाजा ड. ढोलकी और संतूर
27. अमीर खुसरो ने अपने साहित्य से कौतुहल और की निर्मिति की।
अ. भय ब. गंभीरता
क. विनोद ड. शोक
28. कवि विद्यापति के दरबारी कवि थे।

- अ. कीर्तिसिंह और शिवसिंह ब. रामसिंह और पृथ्वीसिंह
 क. रत्नसेन और शारंगधर ड. कृष्णदेव और चोल राजा
29. विद्यापति की पदावली में का शृंगारिक वर्णन आया है।
 अ. राम-सीता ब. शिव-पार्वती
 क. राधा-कृष्ण ड. नल-दमयंती
30. विद्यापति की पदावली के लिए उन्हें उपनाम से जाना जाता है।
 अ. मैथिली कोकिल ब. मैथिली मयूर
 क. मैथिली गरूड ड. मैथिली बाज

1.5 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ :

- * **गार्सा-द-तासी-** फ्रांसिसी भाषाविद्वान, कवि, हिंदी साहित्य के प्रथम इतिहास लेखक थे जिन्होंने फ्रेंच भाषा में हिंदी साहित्य का इतिहास लिखा।
- * **जॉर्ज ग्रियर्सन** - अंग्रेजी भाषा के भाषाशास्त्र के विद्वान, जिन्होंने पहलीबार हिंदी साहित्य का इतिहास वैज्ञानिक पद्धति से लिखने का प्रयास किया।
- * **वर्णानुक्रमी पद्धति** - हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन में सर्व प्रथम इस पद्धति का प्रयोग हुआ, जिसमें कवि या लेखकों के नाम के आद्याक्षर का वर्णमाला के अनुसार क्रम दिया जाता है। लेकिन इसमें कालक्रम और युगीन परिस्थितियों की ओर दुर्लक्ष्य होता है।
- * **कालानुक्रमी पद्धति** - हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन में कालानुक्रमी यह दूसरी पद्धति का प्रयोग हुआ, जिसमें कवियों को उनके कालखंड के अनुसार प्राथमिकता दी जाती है। इसमें कवि या लेखक के जनवर्ष या रचनाकाल की तिथि के अनुसार उनका विवरण किया जाता है।
- * **विधेयवादी पद्धति** - यह साहित्य के इतिहास लेखन की वैज्ञानिक और आधुनिक विधि है। इसमें साहित्य के विकास का अध्ययन युगीन परिस्थितियाँ, वातावरण और परंपरा के संदर्भ में किया जाता है। इस पद्धति के जनक फ्रांसीसी विद्वान 'तेन' है और हिंदी साहित्य में आचार्य रामचंद्र शुक्ल को विधेयवादी पद्धति का सूत्रपात करने का श्रेय जाता किया। उन्होंने इसी पद्धति का अवलंब करके कालजयी 'हिंदी साहित्य का इतिहास' (१९२९ ई.) इस इतिहास ग्रंथ की रचना की है।
- * **आदिकाल** - हिंदी साहित्य का संवत् १०५० से लेकर संवत् १३७५ तक के कालखंड में लिखे साहित्य को 'आदिकाल' नाम दिया गया है।
- * **रासो ग्रंथ** - हिंदी साहित्य के आदिकाल में चारणकवियों द्वारा अपने आश्रय दाताओं के

जीवनचरित्र, उनकी वीरता पर गेय पद्ध रचनाएं लिखी गई है, उन्हें रासो ग्रंथ कहा जाता है। जैसे-
चंदबरदाई कृत- पृथ्वीराज रासो।

* रासक - रासक अपभ्रंश साहित्य का एक छंद है।

1.6 स्वयंअध्ययन प्रश्नों के उत्तर :

(अ.) के उत्तर

- | | |
|---------------------------------|--|
| 1. क. १९ वीं | 2. अ. 'गार्सा-द-तासी' |
| 3. ब. शिवसिंह सेंगर | 4. क. द माडर्न वर्नेक्यूलर लिटरेचर ऑफ हिंदुस्तान |
| 5. अ. एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल | 6. क. मिश्रबंधुविनोद |
| 7. अ. हिंदी साहित्य का इतिहास | 8. ब. हिंदी शब्द सागर |
| 9. क. वीरगाथाकाल | 10. क. चारणकाल |
| 11. ड. ये सभी | 12. ब. सम्राट हर्षवर्धन |
| 13. क. मुहम्मद गझनवी | 14. अ. चोल राजा |
| 15. ब. वीर और शृंगार | |

प्र. (आ.) के उत्तर :

- | | |
|--|------------------------|
| 1. क. आदिकाल | 2. ब. गार्सा-द-तासी |
| 3. अ. शिवसिंह सरोज | 4. ब. भक्तिकाल |
| 5. अ. ५ हजार | 6. क. विधेयवादी |
| 7. ब. हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास | 8. अ. आदिकाल |
| 9. क. डॉ. बच्चन सिंह | 10. अ. मुहम्मद गझनवी |
| 11. ड. मुहम्मद गोरी | 12. अ. पृथ्वीराज चौहान |
| 13. ब. जौहर | 14. अ. नरपति नाल्ह |
| 15. क. चंदबरदाई | 16. ड. दलपित विजय |
| 17. ब. जगनिक | 18. क. रासक |
| 19. अ. वीर चरित्रों | 20. क. पृथ्वीराज रासो |
| 21. क. चंदबरदाई | 22. अ. डिंगल और पिंगल |
| 23. ब. अब्दुल हसन | 24. अ. अमीर खुसरो |

- | | |
|---------------------------|------------------------------|
| 25. क. निजामुद्दीन अवलिया | 26. अ. सतार और तबला |
| 27. क. विनोद | 28. अ. कीर्तिसिंह और शिवसिंह |
| 29. क. राधा-कृष्ण | 30. अ. मैथिली कोकिल |

1.7 सारांश :

1. हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन की सुदीर्घ परंपरा है। इसमें गार्सा-द-तासी के 'इस्त्वार द ला लितरेत्यूर ऐन्दुई ऐन्दुस्तानी' (1839-1847 ई.), शिवसिंह सेंगर के 'शिवसिंह सरोज' (1883 ई.), सर जॉर्ज ग्रियर्सन के 'द मॉडर्न वर्नेक्यूलर लिटरेचर ऑफ हिंदुस्तान' (1888 ई.), मिश्रबंधुओं का 'मिश्रबंधु विनोद' (1913-1914 ई.), आचार्य रामचंद्र शुक्ल के 'हिंदी साहित्य का इतिहास' (1929 ई.), डॉ. रामकुमार वर्मा 'हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' (1938 ई.), आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी के 'हिंदी साहित्य की भूमिका', 'हिंदी साहित्य का आदिकाल' और 'हिंदी साहित्य का उद्भव और विकास' आदि इतिहासकार और उनकी रचनाओं का महत्वपूर्ण स्थान है।
2. आचार्य रामचंद्र शुक्ल के 'हिंदी साहित्य के इतिहास' को आज तक का सबसे वैज्ञानिक इतिहास माना जाता है जिसमें उन्होंने इतिहास लेखन की विधेयवादी पद्धति का सूत्रपात किया। उन्होंने हिंदी साहित्य के 900 वर्षों के कालखंड का वैज्ञानिक पद्धति से काल विभाजन और नामकरण करके अपनी प्रतिभा का परिचय दिया।
3. आदिकालीन काव्यधारा का राजनीतिक परिवेश गृहयुद्ध, विदेशी आक्रांताओं के आक्रमण, भारत की केंद्रीय सत्ता का न्हास और पतन का कालखंड रहा है।
4. आदिकालीन काव्यधारा का सामाजिक परिवेश सामाजिक जीवन की दृष्टि दीन-हीन रहा। समाज में जातिवाद-वर्णभेद का प्रभाव बढ़ा था। धार्मिक अंधविश्वास और कर्मकांड में अशिक्षित समाज उलझ चुका था। सामंत परिवारों का जीवन मदिरा और मदिराक्षी के केंद्र में घूम रहा था। स्त्री को उपभोग की वस्तु माना जाता था।
8. आदिकालीन काव्यधारा में 'रासो ग्रंथों' और धार्मिक साहित्य का सृजन हुआ। रासोग्रंथों ने इस काल के साहित्य का प्रतिनिधित्व किया। इस कालखंड में विजय कृत 'खुमाण रासो', जगनिक कृत 'परमाल रासो', नरपति नाल्ह कृत 'बीसलदेव रासो' और चंदवरदायी कृत 'पृथ्वीराज रासो' ये चार ग्रंथ प्राप्त होते हैं।
6. आदिकालीन काव्यधारा की प्रवृत्तियों में ऐतिहासिकता का अभाव, संकुचित राष्ट्रीयता की भावना, प्रामाणिकता का अभाव, आश्रयदाताओं की प्रशंसा, वीर एवं शृंगार रस की प्रधानता, डिंगल-पिंगल भाषा का प्रयोग, प्रकृति चित्रण, छंदों का विविधमुखी प्रयोग, जनजीवन का अभाव आदि प्रमुख रूप से देखने मिलती है।

७. आदिकालीन काव्यधारा में अमीर खुसरो और विद्यापति प्रतिनिधि कवियों के रूप में दिखाई देते हैं। अमीर खुसरो ने पहेलियाँ, मुकरियाँ, सखुने आदि के माध्यम से जनजीवन को युद्धों की गंभीरता से बाहर लाकर मनोरंजन करने का काम किया। तो विद्यापति ने पदावली के माध्यम से मार्मिक गीत लेखन की हिंदी गीत लेखन परंपरा का सूत्रपात किया। उनकी पदावली की शोहरत के कारण वे 'मैथिल कोकिल' के नाम से कालजयी बने।

1.8 स्वाध्याय :

अ) लघुत्तरी प्रश्न :

1. हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन की परंपरा में गार्सा-द-तासी के योगदान को स्पष्ट कीजिए।
2. हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन की परंपरा में शिवसिंह सेंगर के योगदान को स्पष्ट कीजिए।
3. हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन की परंपरा में जॉर्ज ग्रियर्सन के योगदान को स्पष्ट कीजिए।
4. हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन की परंपरा में मिश्र बंधुओं के योगदान को स्पष्ट कीजिए।
5. हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन की परंपरा में आ. रामचंद्र शुक्ल के योगदान को स्पष्ट कीजिए।
6. हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन की परंपरा में डॉ. रामकुमार वर्मा के योगदान को स्पष्ट कीजिए।
7. हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन की परंपरा में आ. हजारीप्रसाद द्विवेदी के योगदान को स्पष्ट कीजिए।
8. आदिकाल की राजनीतिक परिस्थिति को स्पष्ट कीजिए।
9. आदिकाल की सामाजिक परिस्थिति को स्पष्ट कीजिए।
10. अमीर खुसरो का जीवन एवं रचनात्मक परिचय दीजिए।
11. विद्यापतिका जीवन एवं रचनात्मक परिचय दीजिए।

आ) दीर्घोत्तरी प्रश्न :

1. हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन की परंपरा को विस्तार से स्पष्ट कीजिए।
2. हिंदी साहित्य के आदिकालीन काव्यधारा की राजनीतिक और सामाजिक परिस्थिति का विवेचन कीजिए।
3. हिंदी साहित्य की आदिकालीन काव्यधारा की प्रवृत्तियों का विवेचन कीजिए।
4. हिंदी साहित्य की आदिकालीन काव्यधारा में अमीर खुसरो और विद्यापति के योगदान को स्पष्ट कीजिए।

1.9 क्षेत्रीय कार्य :

1. हिंदी साहित्य के इतिहास के ग्रंथ और ग्रंथकारों की सूची बनाईए।
2. मराठी साहित्य के इतिहास की जानकारी लेकर हिंदी साहित्य से उसकी तुलना कीजिए और उस पर कक्षा में गुट चर्चा कीजिए।
3. आदिकालीन रासो ग्रंथों पर विद्वानों के मतों एवं अभिप्रायों का संकलन करके कक्षा में गुट चर्चा कीजिए।
4. आ. रामचंद्र शुक्ल के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर पोस्टर बनाए।

1.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए :

1. शुक्ल रामचंद्र (आ.), हिंदी साहित्य का इतिहास (सं.22 वाँ 2023 ई.), लोकभारती प्रकाशन, महात्मा गांधी मार्ग, प्रयागराज (उ.प्रदेश)-211001
2. शर्मा रमेश चंद्र (डॉ.), हिंदी साहित्य का इतिहास (सं.2002 ई.), विद्या प्रकाशन, सी-449, गुजैनी, कानपुर-22 (उ.प्रदेश)
3. द्विवेदी हजारीप्रसाद (आ.), हिंदी साहित्य का आदिकाल (सं. 1952 ई.), बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना (बिहार)



घटक 2

भक्तिकाल

अनुक्रम

- 2.1 उद्देश्य
- 2.2 प्रस्तावना
- 2.3 विषय विवेचन
 - 2.3.1 भक्तिकालीन परिस्थितियाँ राजनीतिक एवं सामाजिक परिस्थितियाँ
 - 2.3.2 भक्तिकाल की पूर्वपीठिका
 - 2.3.3 भक्तिकालीन काव्य धारा की विशेषताएँ
 - 2.3.4 प्रातिनिधिक रचनाकारों का सामान्य परिचय- गुरु नानकदेव, मीराबाई
- 2.4 स्वयंअध्ययन के लिए प्रश्न
- 2.5 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ
- 2.6 स्वयंअध्ययन प्रश्नों के उत्तर
- 2.7 सारांश
- 2.8 स्वाध्याय
- 2.9 क्षेत्रीय कार्य

2.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए

2.1 उद्देश्य :

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप,

- ◆ भक्तिकालीन राजनीतिक एवं सामाजिक परिस्थितियों का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- ◆ भक्ति काल की पूर्वपीठिका से परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- ◆ प्रातिनिधिक रचनाकारों के परिचय के अंतर्गत गुरु नानकदेव, मीरा का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।

2.2 प्रस्तावना :

संवत् 1375 से संवत् 1700 तक के काल खंड को हिंदी साहित्य के इतिहास में भक्तिकाल अथवा पूर्व मध्यकाल नाम से जाना जाता है। विचारपूर्वक देखा जाए तो भक्ति का महत्त्व प्राचीनकाल से स्वीकार किया जा सकता है। वैदिक और उपनिषद् साहित्य में तो स्पष्टतया भक्ति की महिमा का उल्लेख हुआ है। हमारे हिंदी साहित्य में भी चौदहवीं शती से सोलहवीं शती के मध्य भाग तक का समय भक्तिकाल के नाम से बहुचर्चित रहा है। हमारा भक्ति काव्य जहाँ एक ओर उच्चतम धर्म की व्यवस्था करता है, तो दूसरी ओर इस परंपरा में उच्च कोटि के कवित्व का निर्माण हुआ है। इस परंपरा में भाव, भाषा, कला सभी दृष्टियों से भक्ति-साहित्य श्रेष्ठतम कहा जा सकता है। कुछ समीक्षकों ने इस युग को हिंदी साहित्य का 'स्वर्ण युग' नाम से संबोधित किया है।

2.3 विषय विवेचन :

2.3.1 भक्तिकालीन राजनीतिक एवं सामाजिक परिस्थितियाँ :

परिस्थितियाँ-

प्रस्तुत इकाई के अंतर्गत भक्तिकाल की परिस्थितियों के अंतर्गत राजनीतिक परिस्थितियों तथा सामाजिक परिस्थितियों पर प्रकाश डालने की कोशिश की जा रही है। यथार्थ में समाज और राजनीति ये ऐसे घटक जो जो किसी काल के समाज जीवन को प्रभावित करते रहते हैं। जो एक-दूसरे के परस्पर पूरक होते हुए भी समाज के अन्य घटकों को भी प्रभावित करते रहते हैं।

1. राजनीतिक परिस्थितियाँ :

हिंदी साहित्य के अंतर्गत भक्तिकाल के इस लंबे कालावधि को राजनीतिक इतिहास के परिप्रेक्ष्य में इस प्रकार से विभाजित किया जा सकता है- 1. प्रथम कालखंड संवत् 1375 से संवत् 1583 तक और 2. संवत् 1583 से संवत् तक प्रथम कालखंड में देश की राजधानी दिल्ली पर तुगलक और लोधी वंश के शासकों ने अपनी हुकूमत चलाई थी। दूसरे कालखंड में मुगलवंश के बाबर, हुमायूं, अकबर, जहांगीर और शहाजहाँ ने अपनी हुकूमत चलाई थी। राजनीतिक के परिप्रेक्ष्य में यह कालखंड काफी विक्षुब्ध, अशांत और संघर्षमय का जाता है। मुहम्मद गौरी ने खुद के विजयी प्रदेशों पर तुर्कों का राज्य प्रस्थापित हुआ। गियासुद्दीन बलबन, अलाउद्दीन

आदि सुलतान और उनके सरदार साम्राज्य विस्तार के कार्य में सफल हुए लेकिन उनके कमजोर, अशक्त उत्तराधिकारियों के माध्यम से उनके सल्तनत की रक्षा नहीं हो सकी। अलाउद्दीन खिलजी और तुगलक ने अपने अनवरत प्रयासों से केंद्रीय शासन को मजबूत तथा बलिष्ठ बनाकर अपनी दूरदर्शिता का परिचय दिया लेकिन उनकी थोड़ी-सी बेसावधानी की वजह से उनके सिंहासन के इरादों पर पानी फेरने का काम किया गया। इसी कारण चौदहवीं और पंद्रहवीं शताब्दियों में अधिकांश मुसलमानों और हिंदुओं के प्रादेशिक राज्यों का निर्माण हुआ। तुर्क शासन विदेशी होते हुए भी उन्होंने भारत भूमि को अपनाया था। उनका इस देश पर अपार प्रेम था। उनकी कुछ धमनियों में हिंदू रक्त था। तुर्कों के बाद पठानों का राज्य हुआ। उनके पूर्वज हिंदू अथवा बौद्ध रहे। इसी कारण संक्षेप में कहा जा सकता है कि, वे लोग सही अर्थों में विदेशी नहीं कहे जा सकते थे।

अलाउद्दीन खिलजी सवत् 1295 में दिल्ली के राजगद्दी पर विराजमान हुआ। उसने मालवा के साथ महाराष्ट्र को भी अपने कब्जे में लिया। गुजरात पर अपना अधिकार जमाते हुए उन्होंने राजपूताना को तीनों ओर से घेर लिया था। एक-एक करते हुए रणथंबौर, चित्तौड़, सिवाना, जालोर तथा भिन्नमाल आदि प्रदेशों पर अपनी हुकूमत जमायी।

इस प्रकार से दक्षिण भारत में मुसलमान शासकों का प्रवेश हुआ। अलाउद्दीन के आखिरी दिनों में दिल्ली का शासन कमजोर पड़ गया। आगे चलकर अलाउद्दीन तुगलक ने सवत् 1320 में उसने अथक प्रयास किए। इन प्रयासों की वजह से उसने बंगाल जीत लिया। दक्षिण में महाराष्ट्र और आंध्र प्रदेश तक अपने हुकूमत की सीमाओं को बढ़ाया। कुछ कालावधि में बाद प्रांतीय अथवा स्थानीय शासकों में स्वतंत्रता की प्रवृत्ति पनपने लगी। एक-एक दिन होते हुए कोई-न-कोई राजा स्वतंत्रता का एलान करते हुए दिल्ली सम्राट उस पर हमला करते हुए उनको अपने अधिपत्य में लाने का प्रयास करता था। राजस्थान का प्रांत मेवाड में हम्मीर सिसोदिया सवत् 1336 में स्वाधीन हो गया। इसी दरम्यान विजयनगर के हिंदू राज्य का निर्माण हुआ। मदुरा तथा बंगाल में दिल्ली राज्य के सुबेदार स्वतंत्र राजा बन गए। इधर दक्षिण में बहमनी राज्य की स्थापना हुई फीरोज तुगलक ने इन विद्रोहियों पर तंजा कसा था, लेकिन उसके उत्तराधिकारी निकम्मे तथा नालायक साबित हुए। इसका परिणाम यह हुआ कि, राज्य की शक्ति प्रांतीय शासकों के हाथों की बागडोर बन गई। इसी बीच दक्षिण में विजयनगर तथा। बहमनी राज्यों में संघर्ष जारी रहा। वैसे देखा जाए तो तुर्क राज्य निकम्मा ओर खोखला बन चुका था। आगे चलकर सवत् 1398 में दिल्ली राज्य तैमूर की निर्भय ठोकर खाकर उससे अपने आपको संभाल न सका।

पंद्रहवीं शताब्दी का कालखंड प्रांतीय शासकों का रहा है। इस प्रक्रिया में राजस्थान में मेवाड का निर्माण हुआ। महाराणा लाखा, चुडा और कुंभा के शासन का खंड में वह एक प्रमुख शक्ति के रूप में उभरता दिखाई देता है। इसी दरम्यान मालवा, गुजरात, बंगाल, जौनपुर, तथा कश्मीर स्वतंत्र राज्यों के रूप में उभरते दिखाई देने लगे थे। बिहार राज्य का एक इलाका है, जिसका नाम तिरहुत है, जहाँ पर कामेश्वर नामक ब्राह्मण ने हिंदू राज्य की स्थापना की थी। उसके बेटे गणेश्वर ने उसे स्वतंत्र किया था। गणेश्वर के बेटे कीर्तिसिंह और उसके बेटे शिवसिंह हिंदू राजा बन गए।

समस्त भारत में यह राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में यह कालखंड अस्थिर और भयावहता निर्माण करनेवाला दिखाई देता है। बुंदेलखंड में गाहडवाल वंशज के बुंदेल सरदार राज्य करने लगे थे। उधर उड़ीसा में सूर्यवंशी कपिलेंद्र ने स्वतंत्र राज्य का निर्माण किया था। बहमनी राज्य का विध्वंस होने पर उसकी जगह पर छोटे-छोटे तीन-चार राज्यों का निर्माण हुआ था। पंद्रहवीं शतक में पठानों दिल्ली पर कब्जा किया, और अपने राज्य का विस्तार बिहार तक पहुंचाने का कार्य किया। उनकी एक कमी रह गई कि, वे दिल्ली को अपना राज्य नहीं बना सके। सोलहवीं शती के मध्य में जब बाबर ने आक्रमण किया तब उस समय सभी स्वतंत्र प्रादेशिक राज्य थे। तत्कालीन भारत में प्रमुख शासक पश्चिमी इलाखे में मेवाड का राणा सांगा तथा दक्षिण में विजयनगर का कृष्णदेव राज का राज्य अस्तित्व में था। बाबर ने संवत् 1526 में बहुचर्चित पानीपत के रणभूमि में नए हथियारों की सहायता से उनका विरोधी इब्राहिम लोधी को पराजित किया। दिल्ली से अगली चढ़ाई में उसकी राणा सांगा के साथ दो हाथ करने पड़े। वहाँपर उन्होंने बाबर का साथ दिया। राणा सांगा के पश्चात राजपूतों में प्रतिरोध की शक्ति नामशेष हो गई। आगे चलकर पठानों ने अपना हौसला बुलंद किया और अपना संघर्ष जारी रखा। पठान शासक शेरशाह सूरी ने साधनों के बिना हुमायूँ को पूरी तरह से पराजित किया। शेरशाह के कार्यकाल से ही अमर काव्य पद्मावत लिखा गया।

शेरशाह के उत्तराधिकारी अयोग्य निकले इधर मुगलों का नेतृत्व अकबर जैसे प्रतिभासंपन्न व्यक्ति के हाथों में चला गया। हेमचंद्र के नेतृत्व में पठानों ने पानीपत के दूसरे युद्ध में अकबर का तगड़ा मुकाबला किया। लेकिन अंत में अकबर का पक्ष भारी रहा। सम्राट अकबर के सामने देश के छोटे-छोटे हिंदू तथा मुसलमान राजाओं ने हार मान ली। अकबर के कार्यकाल में भी मेवाड के राणा प्रताप ने उसकी अधीनता स्वीकार नहीं किया और वह उसके विरोध में लड़ता रहा। राणा प्रताप के बेटे अमरसिंह जहांगीर से सोलह वर्षों तक लड़ा और बाद में उसकी अधीनता स्वीकार की। शाहजहां के शासन के अंतिम दिनों में बुंदेलखंड में चंपतराय और इधर महाराष्ट्र में छत्रपति शिवाजी महाराज ने स्वतंत्रता प्राप्ति हेतु प्रयास किए।

उपरिवेचित विवरण से ज्ञात होता है कि, विदेशी आक्रमणकारियों ने अपने मन के अनुसार यहाँ पर राज किया है। लेकिन यहाँ के भूमिपूत्रों शासकों के प्रतिरोध का सामना करना पड़ा। भूमिपूत्र शासक अंतिम दम तक विदेशी शासकों के विरोध में लड़ते रहे। कट्टर तथा सांप्रदायिक मुस्लिम शासकों के माध्यम से यहाँ के भूमिपूत्र शासकों की जनता पर बेरहमी और निर्मम अत्याचार किए गए। ऐसी विचित्र स्थिति में सामान्य जनता का बेहाल हो चुका था। गैर मुस्लिम जनता के साथ-साथ मुस्लिम जनता का भी हाल बहुत बुरा था। धर्म के नाम पर मुस्लिम धर्म में शिया और सुन्नी में विवाद चल रहा था। अरबी, तुर्की, ईरान और अफगान आदि मुस्लिम धर्मों में आए दिन विवाद दिखाई देते रहते थे। शासनकर्त्ता जमात में भी राज्य प्राप्त करने की होड़ ने बेरहमी और निर्मम हत्याओं को सिलसिला हमेशा कायम बना दिखाई देता था। औरंगजेब ने अपनी राज्यलिप्सा हेतु जितने निर्ममता से अत्याचार करने हो उतने करने का बेरहमी से कार्य किया। अकबर, जहांगीर तथा शाहजहां के राज्य कालावधि को छोड़ दिया तो अधिकांश मुस्लिम शासनकर्त्ताओं ने सामान्य जनता पर धर्म के नाम पर अनाचार, अत्याचार करते हुए गृहकलह, विदेशी आक्रमणकारियों के आतंक तथा युद्ध में अपना समय व्यतीत किया था।

इस बात का भी जिक्र महत्वपूर्ण है कि, सभी मुस्लिम शासकों ने हिंदूओं के प्रति असहिष्णु तथा अनुदार पूर्ण व्यवहार किए हो। अधिकांश मुस्लिम शासकों ने संस्कृत और देशी भाषाओं के साहित्य, संगीत तथा कला को प्रोत्साहित दिया था। मुस्लिम शासकों के मंत्री तथा सलाहकार अधिकांश हिंदू ही रहे। सिकंदर बुतसिकन के बेटे जैनुलाबुददीन ने हिंदू मंदिरों का जीर्णोद्धार करवाया। अकबर तथा उसके वंशजों के प्रशासन में हिंदी को बराबर आश्रय मिलता रहा। हिंदू धर्म के कट्टर विरोधी औरंगजेब ने भी अपने दरबार में हिंदी कवियों को भी स्थान दिया था।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि, यह कालखंड राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में बड़ा ही असुरक्षित रहा है।

2. सामाजिक परिस्थिति :

14 वीं तथा 15 वीं शती में भारतीय समाज के प्रमुख घटक हिंदू तथा मुसलमानों के जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में आदान-प्रदान नजर आता है। हिंदुओं में जाति-पाति तथा विवाह के बंधन काफी कठोर हो गए थे। तत्कालीन समाज व्यवस्था में एक ही परिवार कुछ लोग हिंदू तो कुछ मुसलमान दिखाई देते हैं। इस कालखंड में हिंदू-मुसलमानों के बीच परस्पर विवाह के संकेत प्राप्त हो जाते हैं। कश्मीर के सुलतान शाहमीर के बेटियों के विवाह हिंदू सामंतों के साथ हुए थे। तत्कालीन समाज में लड़कियों विवाह होने पर अपने पति का धर्म स्वीकार किया करती थी। उन दिनों की बात यह है कि, आए दिन जाति-पाति के बंधन कठोर बनते नजर आते थे। इन बंधनों का विरोध होता दिखाई देता था। रामानंद और उनके शिष्य कबीर ने इसी प्रथा का कड़ा विरोध किया था।

खान-पान के बंधन इतने कड़े नहीं थे। लेकिन आगे चलकर 15 वीं शती में इसके बंधन कड़े दिखाई बन रहे थे। इन दिनों खान-पान के बंधनों के साथ-साथ छुआछूत के नियम भी कड़े हो गए थे। शेरशाह ने जमींदारी प्रथा को उठाया था, लेकिन मुघलों इसी प्रथा को जारी रखने का कार्य किया। मुघल दरबार में जागीरदार और मनसबदार बड़े समृद्ध थे। बादशाही और जागीरदारों का जीवन भोग-विलास और ऐश्वर्यपूर्ण था। बादशाह को सामान्य जनता की ओर ध्यान देने के लिए वक्त नहीं था। सवंत् 1630-31 के बीच गुजरात खानदेश तथा दक्षिण में अकाल पड़ा था, तब शाहजहां ने उन प्रांतों के लगान में काफी प्रकार की छूट दी थी, यहाँ तक कि, मुफ्त में अनाज बंटवाया था।

अधिकांश हिंदू अनेक कारणों से अपनी इच्छा के अनुसार ही मुसलमान बन चुके थे। सभी मुसलमान बादशाह तथा सामंत इस्लाम को तलवार के बल बुते पर फैलाने के पक्ष का समर्थन नहीं करते थे। फीरोज तुगलक, सिकंदर, बुतशिकन, अहमदगुजराती, महमूद बघेडा, तथा सिकंदर लोधी जैसे धर्म के नाम अपने धर्म का प्रचार-प्रसार करनेवालों के साथ-साथ जैनुलाबुददीन, हुसैनशाह बंगाली तथा शेरशाह के जैसे उदारनीति अपनाने वाले शासक रहे। इस कालावधि के पूर्व अन्य धर्मियों को हिंदू बनाने वाली घटनाओं के भी सबूत प्राप्त होते हैं। गोरी के कैदियों का शुद्धिकरण किया गया था। चीन निवासी आकर आसाम में आकर बसे थे, उनका आर्याकरण नहीं किया गया था। हिंदू-मुसलमानों के बीच विवाह होने के बाद वे अपना धर्म छोड़कर

दूसरा धर्म अपनाते थे। इसी कारण शाहजहां को फरमान निकालना पड़ा था कि, नवविवाहिता को स्वीकार करने वाले हिंदू को मुसलमान बनना ही पड़ेगा ही। शायद इसी कारण ही हिंदुओं में जाति-पांति के निर्बंधों के नियम कड़े बन गए। विलासी मुसलमान शासकों ने अपनी विलासिता जीवन प्रणाली के कारण ही हिंदू समाज व्यवस्था में पर्दे की पद्धति का प्रचलन हुआ इसके साथ-साथ बाल-विवाह की पद्धति ने जन्म लिया। जिस प्रकार हिंदू समाज व्यवस्था में जाति के आधार पर उंच-नीचता का भेदभाव पनपने लगा तो दूसरी ओर मुसलमान समाज व्यवस्था में शिया-सुन्नी की असमानता ने अपना सिर उपर उठाया था। कुछ मुसलमान शासकों में रुप-लिप्सा तथा काम-पिपासा की स्पर्धा चल रही थी। इस बात का अच्छा उदाहरण अलाउद्दीन रहा है। इस काल हिंदुओं की आर्थिक स्थिति बदतर थी। इस का उल्लेख तत्कालीन ऐतिहासिक दस्तावेजों में प्राप्त होता है।

जिस प्रकार हिंदुओं तथा मुसलमान शासित और शासक का भेद था वह धीरे-धीरे बदलता दिखाई देता है। वे एक दूसरे के प्रति उदारता के भाव से व्यवहार करते हुए दिखाई देते हैं। हिंदू और मुसलमान शासनकर्ताओं में वास्तु, मूर्ति, चित्रकला, धर्म काव्य के क्षेत्र में आदान-प्रदान दिखाई देता है।

2.3.2 भक्तिकाल की पूर्वपीठिका :

भक्तिकाल का महत्त्व प्राचीन काल से निर्विवाद रहा है। उसे कई इतिहासकारों ने स्वर्णयुग की संज्ञा से अभिहित किया है। इसकी उत्पत्ति अचानक एकाएक नहीं हुई है। बल्कि इसके पीछे दीर्घकालीन धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक तथा साहित्यिक परिस्थितियाँ आधारभूत रही हैं। इन्हीं को भक्तिकाल की पूर्वपीठिका कहा जाता है। उसका संक्षेप में विवरण इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है।

1. धार्मिक पृष्ठभूमि :

मध्यकाल में धर्म अपनी मूल भावना से हटकर कर्मकांड, बाह्याचार तथा आडंबर में ही उलझ गया था। इस काल में धार्मिक क्षेत्र के अंतर्गत ये आयाम दिखाई देते हैं। इस काल में पूजा-पाठ केवल ब्राह्मण तक ही सीमित था। इस वर्ग को छोड़कर अन्य जाति, धर्म के लोग इसमें किसी भी प्रकार पूजा, अर्चा में योग नहीं दे सकते थे। आम जनता के लिए धार्मिक क्षेत्र के दरवाजे हमेशा के लिए बंद किए गए थे। आम जनता के लिए धर्म जटिल और दूर की वस्तु बन गया था। धर्म के अंतर्गत पाई जानेवाली मोक्ष संकल्पना को कठिन, जटिल नियमों में इस तरह जकड़ कर रखा गया था कि, मोक्ष की संकल्पना ने मानों सामान्य जनता के लिए सांस लेना मुश्किल किया हो ।

ऐसी विचित्र परिस्थिति में भक्ति आंदोलन ने सहज, सरल और व्यक्तिगत ईश्वर-प्राप्ति का मार्ग दिखाने का प्रशस्त तथा राजमार्ग की भांति कार्य किया है। इस काल की यह भी एक विशेषता रही है कि, ईश्वर तक पहुंचने की लिए किसी भी मध्यस्थ की आवश्यकता नहीं है। यह प्रमुख भावना को जन्म देने का कार्य इस खंड की उपज कहा जा सकता है।

दक्षिण भारत के आलवार (वैष्णव) और नायनार (शैव) संतों ने भावात्मक भक्ति का जो स्वरूप दिया, वही आगे उत्तर भारत में विकसित हुआ है।

2. सामाजिक पृष्ठभूमि :

भक्ति काल की सामाजिक पृष्ठभूमि बड़ी विचित्र रही थी। तत्कालीन समाज में अनेक बुराइयों ने जन्म लिया था। इसी कारण विचित्र परिस्थिति के अंतर्गत जाति-पाति के आधार पर कठोर विभाजन हुआ था। जो व्यक्ति हीन जाति में जन्म लेता था उसे उसी जाति में ही नरक यातनाएँ भुगतनी पड़ती थी। जो व्यक्ति उंची जाति में जन्म लेता था, उसकी योग्यता न होने पर भी उसे उसकी जाति के आधार पर श्रेष्ठत्व प्रदान किया जाता था। विविध धार्मिक ग्रंथों आधार लेकर सर्वसामान्य लोगों में इस बात का प्रचार-प्रसार इस प्रकार किया था कि, उच्च-नीचता पूर्व जन्म का पाप-पुण्य का फल होता है। इसी कारण ही हीन जातियों के लोगों का जीना दुश्वार हो गया था। इसी कालखंड में छुआछूत के नियम कठोर और कठिन बन गए थे। जिस धर्म में पशुओं के साथ मैत्री भाव से पेश आना सामान्य बातें होती थी। उसी धर्म में हीन जाति के लोगों स्पर्श या यहाँ तक उनको देखना भी पाप माना जाता था।

भक्ति काल में स्त्रियों तथा निम्न वर्गों की भर मार रूप से उपेक्षा की जाती थी। उपर विवेचित परिस्थितियों ने भक्ति आंदोलन को क्रांति की कगार पर खड़ा किया था। इसी कारण इस काल के संत कवियों को सहज रूप से कहना पड़ा कि-‘जाति पूछो न साधू की’ इस काल के कवियों ने यह सबलता के साथ जनमानस में प्रस्थापित किया कि, सभी मनुष्यों को ईश्वर की संतान मानकर समानता और भाईचारे का संदेश दिया है। कबीर, रैदास जैसे संत स्वयं निम्न वर्ग से आए थे, इसीकारण उसका व्यापक प्रभाव निर्माण हुआ था।

3. राजनीतिक पृष्ठभूमि :

भारत में दिल्ली सल्तनत और बाद में मुगल शासन स्थापित हो चुका था। मध्यकालीन भारत का परिवेश काफी असंतोषजनक रहा। निरंतर युद्धों की छाव में सामान्य लोगों का हाल बेहाल हो चुका था। इस अस्थिरता के परिवेश में सामान्य जनता का जीना मुश्किल हो गया था। हिंदु-मुसलमान शासकों में धर्म के नाम पर आए दिन संघर्ष होता रहता था।

ऐसी विचित्र परिस्थिति में भक्ति आंदोलन ने सामान्य जनता के जीवन में एक आशा की नई किरण प्रदान की। भक्ति आंदोलन के कवियों ने अपनी वाणी विचारों काव्य के माध्यम से शांति, सहिष्णुता और समन्वय को राजमार्ग प्रशस्त किया।

4. सांस्कृतिक और दार्शनिक प्रभाव :

भक्ति काल में सांस्कृतिक परिवेश के साथ-साथ दार्शनिक का भी प्रभाव अपने आप में एक अलग आयाम रहा है। भक्ति आंदोलन पर सांस्कृतिकता के साथ-साथ दर्शन का भी गहरा प्रभाव रहा है। वेदांत दर्शन इस काल की महत्वपूर्ण उपलब्धि रही है। शंकराचार्य ने अपने सांस्कृतिक परिवेश के परिप्रेक्ष्य में अपना अद्वैत वाद का प्रसार किया। रामानुजन ने अपना विशिष्टाद्वैत का पक्ष अपने मतावलंबियों के सामने रखने का कार्य किया। मध्वाचार्य ने अपना दैवतावाद का पक्ष भी अपने मतावलंबियों के सामने रखा था।

सुफी संप्रदाय अथवा सुफी आंदोलन भी इस काल खंड की महनीय उपलब्धि रही है। प्रेम, समर्पण और ईश्वर से आत्मीय संबंध पर जोर देकर अपने सुफी संप्रदाय का प्रचार-प्रसार किया है। मलिक मुहम्मद जायसी सुफी संप्रदाय के प्रमुख कवि रहे हैं। इन सब कवियों समाज सुधारकों ने भक्ति को मजबूत आधार बनाया था।

5. भाषा और साहित्यिक परिस्थितियाँ :

मध्यकाल अर्थात् भक्तिकाल में संस्कृत भाषा केवल विद्वानों की भाषा थी। इस भाषा के सिवा अन्य भाषाओं के प्रयोग के प्रतिबंध था। सामान्य जनता अथवा आम जनता के लिए समाज में प्रचलित लोकभाषाएँ अधिक उपयुक्त थीं। प्रायः अधिकांश भक्ति कवियों ने अवधी, ब्रज, खड़ी बोली आदि भाषाओं में अपनी-अपनी रचनाओं लेखन किया। इस कालखंड में साहित्य पहली बार जनसामान्य लोगों तक पहुंचने का कार्य हुआ।

6. आर्थिक और जनजीवन की परिस्थितियाँ :

भक्ति काल में आर्थिक और कुलमिलाकर अन्य परिस्थितियाँ कमजोर रही हैं। जिसके कारण तत्कालीन समाज में सामान्य लोगों से समाज के विभिन्न स्तर के लोगों में आर्थिक विसंगति का चित्र मिलता है। आए दिन विविध राजाओं में आपसी राजनीतिक मतभेदों के चलते युद्धों का परिवेश हमेशा छाया रहा करता था। तत्कालीन अधिकांश राजाओं ने अपनी मर्जी के अनुसार विविध करों का भार सामान्य जनता के सिर पर ढोया था। एक ओर सामान्य जनता तो आर्थिक बाब से तंग आ चुकी थी, तो दूसरी ओर इच्छा न होते हुए भी उन्हें अपने-अपने राजाओं को विविध प्रकार के कर देने पड़ते थे। जिससे सामान्य लोगों का हाल बेहाल हो चुका था। आर्थिक क्षेत्र के साथ-साथ सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक आदि सभी क्षेत्रों में विदारकता ने प्रवेश किया था।

ऐसी विचित्र स्थिति में भक्ति आंदोलन ने लोगों के जीवन में मानसिक शांति और आशा की नई किरण भरने का कार्य किया है। जो सामान्य जनता के जीवन को स्थायित्व देने में काफी हद तक सफल दिखाई देती है।

निष्कर्ष :

भक्तिकाल की पूर्व पीठिका का अध्ययन करने पर प्राप्त निष्कर्ष इस प्रकार से संक्षेप में प्रस्तुत किए जा रहे हैं, इस काल में पूर्वपीठिका में जटिलता, सामाजिक असमानता, राजनीतिक अस्थिरता और सांस्कृतिक समन्वय प्रमुख कारण थे। इन सब ने मिलकर भक्ति आंदोलन को जन्म दिया, जिसने धर्म को सरल बनाया। समाज में समानता, प्रेम और मानवता का संदेश फैलाने का कार्य किया है।

2.3.3 भक्ति कालीन काव्य धारा की विशेषताएँ :

प्रस्तावना -

भक्तिकालीन काव्य धारा की विशेषताओं पर प्रकाश डालते समय निम्नलिखित आयामों की चर्चा करना अनिवार्य होता है। वास्तव में भक्तिकाल को हिंदी साहित्य का स्वर्णयुग माना जाता है। इस काव्य धारा की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित प्रकार से प्रस्तुत की जा रही हैं।

1. ईश्वर के प्रति भक्ति भाव :

भक्तिकाल हिंदी साहित्य का एक मात्र काल रहा है, जहाँ पर जाति, धर्म, अस्पृश्यता को त्याग कर सामान्य लोग ईश्वर के दरबार में मानव निर्मित धर्म, जाति की दीवारें तोड़कर एक होकर ईश्वर के नामस्मरण में लीन रहते हुए दिखाई दे रहे हैं। भक्ति कालीन कवियों ने ईश्वर को प्रेम और समर्पण प्राप्त करने पर अधिक बल दिया था। चाहे वह संत कबीरदास हो या संत तुलसीदास निर्गुण निराकार संत संप्रदाय के कबीर दास तो सारी दुनिया में समाए हुए प्रत्येक जीवन में ईश्वर के रूप को अजमाने की कोशिश करते हुए दिखाई देते हैं, तो सगुण भक्ति संप्रदाय के संत तुलसीदास जैसी अन्य सगुण संप्रदाय के भक्त कवि अपने आराध्य के चरणों में लीन होकर अपना सर्वस्व अर्पण करने का भाव राम भक्ति के माध्यम से प्रस्तुत करते हुए दिखाई देते हैं।

2. निर्गुण और सगुण भक्ति :

भक्ति काल के अंतर्गत निर्गुण और सगुण भक्ति काव्य धाराओं का अपने-आपमें नितान्त अलग महत्त्व रहा है। निर्गुण भक्ति काव्य धारा के अंतर्गत श्रद्धा और प्रेम का संयोग भक्ति है, अथवा स्नेहपूर्वक ध्यान भक्ति है। निर्गुण निराकार, सारी सृष्टि में समाई हुए प्रत्येक वस्तु, जीव में ईश्वर, परमात्मा का अंश जरूर होता है, ऐसी धारणा निर्गुण वादी कवियों की रही थी।

निर्गुणवादी कवि चिंतकों की तुलना में सगुणवादी कवियों की धारणा अलग प्रकार की थी। वे अपने भगवान, परमात्मा, ईश्वर को एक विशिष्ट सगुण रूप में ही देखना उनके रूप को अजमाना उचित मानते थे। इसी कारण ही उन्होंने इसी देश की भूमि में निपजे प्रभू रामचंद्र और श्री कृष्ण की परंपरागत प्रतिमाओं का आधार, आश्रय, सहारा लेकर अपने आराध्य के चरणों में लीन होना उचित समझा था। सगुण भक्ति के अंतर्गत रामभक्ति परंपरा में संत तुलसीदास का नाम शीर्ष स्थान पर आता है, तो कृष्ण भक्ति के अंतर्गत सूरदास, मीराबाई का नाम आदर के साथ लिया जाता है।

3. लोकभाषा का प्रयोग :

लोकभाषा का प्रयोग भक्तिकालीन काव्य धारा की महत्वपूर्ण विशेषता कही जा सकती है। भक्ति काल के पूर्ण अभिजात जनों हेतु केवल संस्कृत भाषा का ही प्रयोग किया जाता था। लेकिन भक्ति काल तक आते-आते अठराह पगड जातियों से आए साधु संतोंने अपनी विशिष्ट लोकभाषा का प्रयोग किया। इस कालखंड में देखा जा सकता है कि, इस कालखंड में अवधी, ब्रज, राजस्थानी, आदि लोकभाषाओं का प्रयोग प्रचुर मात्रा में हुआ है। इसी कारण इस कालखंड में निर्मित काव्य को जनसामान्यों तक पहुंचाया गया है।

4. सामाजिक समता :

सामाजिक समता इस कालखंड की अनन्य साधारण उपलब्धि कही जा सकती है। इस काल में भारतीय समाज की जाति पर आधारित समाज व्यवस्था आधार रही हैं। इसी कारण भारतीय समाज व्यवस्था में प्रत्येक व्यक्ति को जन्मजात जाति के आधार पर श्रेष्ठता-हीनता का शिकार बनना पड़ा था। लेकिन इस भक्ति काल के

आधार स्तंभ संत कबीर ने मानवतावादी भूमिका को अपनाते हुए जन्म, जाति के आधार पर कोई व्यक्ति श्रेष्ठ, महान नहीं बनता। उसके आचार-विचार और सामाजिक कार्यप्रणाली ही उसे मानवतावादी बनाने में समाजोपयोगी बनाती है।

संत कबीर ने अपने काव्य के माध्यम से मानव निर्मित जाति-पांति, उंच-नीचता की दीवारों पर प्रहार करने का कार्य किया है। तत्कालीन सनातनी धर्मावलंबियों की ओर से कबीर की मानवतावादी भूमिका का विरोध हुआ था। लेकिन कबीर ने उसका डटकर विरोध किया था। उन्होंने अपने प्रवचनों, सत्संगों के माध्यम से तत्कालीन सामाजिक कुरीतियों पर कोड़े बरसाने का कार्य किया।

5. सरल और मधुर शैली :

भक्तिकाल के साहित्य अथवा काव्य की महत्वपूर्ण शैली रही है-सरल और मधुर शैली। इसी कारण ही भक्ति कालीन काव्य आज भी इतने सालों के बाद भी सामान्य लोगों के गले का हार बना है। आज भी सरल और मधुर शैली के कारण ही संत कबीर, संत गोस्वामी तुलसीदास, संत मीराबाई आदि कवियों की रचनाएँ गेयता के कारण ही अजरामर बन गई हैं। इस काल के कवियों की रचनाओं के कारण ही तत्कालीन समाज से मानसिक और मनोवैज्ञानिकता के परिप्रेक्ष्य में यह काव्य आज भी खरा उतरता है। इसी कारण कबीर, तुलसीदास, मीरा के गेय पदों में संगीतात्मकता के दर्शन होते हैं।

6. मानवता तथा प्रेम का संदेश :

भक्तिकाल का साहित्य मानवता और प्रेम का संदेश प्रस्थापित करनेवाला साहित्य रहा है। मानवता तथा प्रेम के संदेश के माध्यम से प्रेम, दया, करुणा और भाईचारे की भावना का विकास हुआ है। जाति-पांति की मानव निर्मित दीवारों को तोड़ने कार्य मानवता के प्रेम के संदेश ने किया है। जिसके कारण ही विश्व बंधुत्व की भावना का विकास हुआ है।

7. गुरु महिमा :

गुरु महिमा के माध्यम से इस कालखंड के कवियों ने गुरु को ज्ञान का स्रोत और ईश्वर तक पहुंचाने का माध्यम माना है। इस विशेषता को संत कबीर और मीराबाई के पदों और दोहों के माध्यम से देखा जा सकता है।

8. विभिन्न भक्ति भाव :

भक्ति काल में विभिन्न भक्ति भावों के दर्शन होते हैं। संत तुलसी दास ने श्री रामचंद्र को अपना आराध्य मानकर अपना जीवन समर्पित किया था। उनकी भक्तिभावना में दास्य अर्थात् दास मतलब सेवक भाव के दर्शन होते हैं। संत सूरदास ने अपने पदों के माध्यम से श्री कृष्ण के प्रति अपने भाव अर्पित किए हैं, उनकी भक्ति भावना में वात्सल्य भाव के दर्शन होते हैं। मीराबाई के पदों के माध्यम से माधुर्य भक्ति के दर्शन होते हैं।

9. संगीतात्मकता :

भक्तिकालीन साहित्य की संगीतात्मकता यह एक अत्यंत महत्वपूर्ण उपलब्धि कही जा सकती है। इस कालखंड के सभी कवियों के पद, भजन दोहों, साखी को विविध रूपों में रचा गया है। जो गेय और लोकप्रिय रहे हैं। जो आज इतने लंबे अंतराल के बाद भी वह गायकों के गले का मालाहार बनते-बनते श्रोताओं को भी मंत्रमुग्ध करा देता है।

10. धार्मिक समन्वय :

धार्मिक समन्वय यह भक्तिकाल की महनीय उपलब्धि कही जा सकती है। तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक परिप्रेक्ष्य में हिंदू-मुस्लिम एकता प्रयास भारतवर्ष के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण माना जाता है। मलिक मुहम्मद जायसी जो जाति से मुसलमान रहे और उन्होंने हिंदू जनमानस से संबंधित विषय काव्य सृजन हेतु उठाए थे। रहीम भी जन्मना मुस्लिम थे, लेकिन उन्होंने अपने पदों दोहों के माध्यम से श्री कृष्ण आदरणीय और पूजनीय माना था। इस काल खंड के कवियों ने एकेश्वरवाद की संकल्पना का जोरदार समर्थन किया था।

निष्कर्ष :

भक्तिकाल की काव्य धारा का अध्ययन करने पर प्राप्त निष्कर्ष इस प्रकार प्रस्तुत किए जा सकते हैं। भक्ति काल की काव्य धारा ने हिंदी साहित्य को नई दिशा प्रदान की। इसमें भक्ति के साथ-साथ सामाजिक सुधार समानता और मानवता का समन्वय मिलता है। यह युग भारतीय संस्कृति के पुनर्जागरण का प्रतीक रहा है।

2.3.4 प्रातिनिधिक रचनाकारों का सामान्य परिचय :

1. गुरु नानकदेव

2. मीराबाई

1. गुरु नानकदेव :

गुरु नानकदेव भक्ति काल के महान संत कवि और सिख धर्म के संस्थापक थे। उनका जन्म सन् 1469 ई में तलवंडी में (अब पाकिस्तान नानक साहिब में) हुआ। बचपन से वे धार्मिक तथा आध्यात्मिक प्रवृत्ति के थे। वे निर्गुण भक्ति धारा के महान प्रवर्तक माने जाते हैं। उनकी माता का नाम तृप्ता देवी तो पिता का नाम मेहता कालू था। होनहार वीरवान के चिकने पात होते हैं। अर्थात् (मुलाचे पाय पाळण्यात दिसतात) बचपन से वे सामाजिक कुरीतियों के विरोधी रहे उन्होंने भारत सहित कई देशों की यात्राएँ की थी, और अपने विचारों का प्रचार-प्रसार किया था। गुरु नानकदेव ने अपनी वाणी को गुरु ग्रंथ साहिब में संकलित किया है। उनकी रचनाएँ पंजाबी, ब्रज, तथा साधुकर्डी भाषा में मिलती हैं। उनके काव्य रूप पद, शब्द, तथा भजन के रूप में प्राप्त हैं। उनकी विचारधारा की प्रमुख विशेषता के अंतर्गत प्रमुख रूप से यह बातें पाई जाती हैं। उनकी भक्ति निर्गुण है, उनका कहना था कि, ईश्वर निराकार और एक है। उन्होंने एकेश्वरवाद का समर्थन किया। उनका यह विचार 'एक ओंकार 'नाम से बहुचर्चित रहा है। उन्होंने अपने जीवन काल के दौरान समानता का सामाजिक संदेश दिया।

वे मानते थे कि जांति-पांति, उंच नीच मानव निर्मित है, वह मानव ने अपने स्वार्थ हेतु बनाई है, इसलिए उन्होंने इस बात का जोरदार विरोध किया। उन्होंने अपनी विचारधारा के अंतर्गत सत्संग और नामस्मरण पर बल दिया। उन्होंने कर्म को प्रधानता देते हुए सच्चाई को जीवन का आधार माना था।

गुरु नानक देव ने “नाम जपो, कीरत करो, चंड छोड़ो,” का समर्थन किया। वे तत्कालीन समाज व्यवस्था के अंतर्गत एकमात्र ऐसे महामानव रहे थे कि, उन्होंने मानवता, सेवा और भाईचारे का संदेश दिया। उन्होंने समाज में व्याप्त अंधविश्वास तथा पाखंड पर कोड़े बरसाने का कार्य किया है। उनकी साहित्यिक विशेषताएँ देखने के बाद कहा जा सकता है कि, उन्होंने सरल और जनभाषा का प्रयोग किया। इसी कारण वे उनकी वाणी उनके विचार समाज में लोकप्रिय और बहुचर्चित रहे। उन्होंने लोक शैली का सहज प्रयोग किया। उनकी वाणी अर्थात् उनके साहित्य में संगीतात्मकता पाई जाती है, इसी कारण आज भी उनका साहित्य मंत्र मुग्ध होकर गाया तथा सुनाया जाता है। उनमें समाज सुधार की भावना प्रबल थी। आध्यात्मिकता और नैतिकता का समन्वय रखने वाली उनकी विचारधारा की तुलना अन्य किसी मध्यकालीन संतों की विचारधारा से नहीं की जा सकती।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि, गुरु नानक देव भक्ति काल के एक ऐसे संत कवि थे, जिन्होंने अपने काव्य और विचारधारा के माध्यम से समानता, प्रेम और एकेश्वरवाद का संदेश दिया। इसलिए उनका साहित्य और उनकी विचारधारा प्रासंगिक होते हुए भी मानव कल्याणकारी दिखाई देती है।

2. मीराबाई :

मीरा भक्ति काल की कवि है, जिनका जन्म राठौरो की मेडतिया शाखा के अंतर्गत राव दूदा जी के चतुर्थ पुत्र रत्नसिंह के घर में कुडकी गांव में संवत् 1555 के आस-पास हुआ। बाल्यावस्था में उनकी माता का निधन हुआ, इसी कारण उनका पालन-पोषण पितामह दादू के द्वारा हुआ। वे परम वैष्णव भक्त थे। इनके संसर्ग से मीरा के दिलो दिमाग पर कृष्ण के भक्ति संस्कार हुए। जो आगे चलकर माधुर्य भाव की भक्ति में विकसित हो गए। बारह वर्ष की अल्पायु में उनका विवाह चितौड़ के राजा महाराणा सांगा के बड़े पुत्र भोजराज के साथ हुआ। लेकिन कुछ वर्षों के बाद पति के निधन के बाद उनकी भक्ति भावना कृष्ण के चरणों में लीन हो गई। वह अपने बाल्यावस्था से ही अपने आपको कृष्ण की अनन्य अनुरागिनी हो गई थी। वह बाल्यकाल से गिरधर गोपाल को अपना पति समझने लगी थी। वह साधु संगति, भजन और कीर्तन में मग्न रहने लगी थी। गिरधर हेतु उन्होंने अपनी राजमर्यादा और लोक-लाज को छोड़ा और राजकुल का अत्यंत कठोर विरोध भी सहा था। संवत् 1603 में उनकी द्वारिका में मृत्यु हो गई। यह भी किंवदंती है कि, रणछोड जी की मुर्ति ने इन्हें अंतर्निहित कर लिया था। उन्होंने अपना एक पद लिखा था। उसका भावार्थ यह है कि, अब जो मिली हूँ, अब बिछुडना नहीं चाहती। यह भी प्रसिद्ध है कि, मीरा ने अपने परिवारजनों के व्यवहार से तंग आकर गोस्वामी तुलसीदास को एक पत्र लिखकर भेजा था, और परामर्श मांगा था जिसके उत्तर में गोस्वामी तुलसीदास ने लिखा था कि-जाके प्रिय न राम वैदेही। लिखकर अपना संदेश भेजा था। मीरा के गुरु के बारे में भी जान लेना भी आवश्यक है। इन पर संत समुदाय और चैतन्य मतानुयायी दोनों प्रभाव पड़ा था।

रचनाएँ—

मीरा के नाम पर निम्नलिखित रचनाओं को गिना जाता है। नरसीजी का माहरो, गीत गोविंद की टीका, मीरानी गरबी, मीरा के पद, राग सोरठ के पद, रास गोविंद आदि। नरसीजी का माहरो में नरसी के भात भरन की कथा का विवरण है। गीत गोविंद की टीका अब तक प्राप्त नहीं हुई रास गोविंद के बारे में यह तर्क लगाया जाता है कि, यह उनकी ही रचना है। राग सोरठ के पद में मीरा, कबीर और नामदेव के पदों का संग्रह है। मीरानी गरबी या गीत के गीत रास मंडली के गीतों समान गाये जाते हैं। मीरा के फुटकर पर कोई 200 के आसपास प्राप्त हुए हैं। मीरा के साहित्य के चिंतक पुरोहित नारायण ने उनके पदों की संख्या करीब पाँच सौ से करीब मानी है। मीरा के पद गुजराती, राजस्थानी, पंजाबी, खड़ी बोली आदि में प्राप्त होते हैं। ऐसा लगता है कि, दास मीरा लाल गिरधर, अथवा मीरा के प्रभु गिरधर नागर नाम से उनके पद बाद में जोड़े जाते रहे हैं। मीरा के अन्य ग्रंथ या तो मिलते ही नहीं और जो भी मिलते भी या वे अपूर्ण हैं। संक्षेप में कहा जा सकता है कि, साहित्य के महत्त्व के अंकन के लिए इनके उपलब्ध पदों पर ही निर्भर रहना पड़ता है।

मीरा के काव्य का सौंदर्य—

मीरा भारत के प्रधान भक्तों में तो सर्वश्रेष्ठ गिनी जाती है, उनका काव्य आसुओं के जल से सिक्त, पल्लवित तथा पुष्पित प्रेम की मनोहारिणी सुगंध से सुवासित हैं। मीरा की भक्ति माधुर्य भाव की है। भक्ति के क्षेत्र में मीरा तुलसी और सूर से भी आगे निकल पड़ी है। तुलसी का दास्य भाव की भक्ति में मर्यादावाद राम की अत्यंत निकटता में बाधक है। सूर ने अपनी माधुर्य-भाव की भक्ति में गोपी और राधा के माध्यम से कृष्ण का सानिध्य प्राप्त करना चाहा है, पर यहाँ खुद मीरा राधा बन गई है। उनके सांवलिया और उनमें कोई दुराव तथा छिपाव नहीं है। मीरा ने अपने आराध्य के प्रति तन्मय भाव के दर्शन कराते हुए प्रेम के अत्यंत प्रवीण तथा अनुभूतिमय चित्र उतारने का महनीय कार्य किया है। उनके पदों में वियोगजन्य दुख को नापने का कोई सुगम नहीं है। उनमें मिलन, उत्सुकता, आशा तथा प्रतीक्षा से संबंध रखने वाले सभी पद अनुपम हैं। उनके पदों में रहस्यात्मकता है। माधुर्य भाव की भक्ति में रहस्यात्मकता का समावेश आवश्यक हुआ है। मीरा का काव्य गीति-काव्य का एक आदर्श प्रस्तुत करता है। हाँ, इनके गीतों में सूरदास के पदों की तुलना में अपेक्षा साधारणीकरण की मात्रा अधिक है। सूरदास जैसा काव्योत्कर्ष तो मीरा के काव्य में नहीं मिलता। शब्द चयन, अलंकार, विधान, चुभती उक्तियों सूर में अधिक हैं, लेकिन यह स्वीकार करना ही पड़ेगा कि, अंतस्थ की गइराई जो मीरा में है वह सूर में सर्वत्र नहीं दिखाई देती। मीरा का दर्द दीवानापन उनके काव्य को निराला बना देता है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि, आधुनिक कवयित्री महादेवी वर्मा की तुलना मीरा से की जाती है। लेकिन डॉ. शिवकुमार शर्मा के विचारों में महादेवी को मीरा जैसी तन्मयता लाने के लिए न जाने कितनी देर तक साधना की अपेक्षा है। मीरा के कुछ पद तो राजस्थान मिश्रित भाषा में हैं और कुछ विशुद्ध साहित्यिक ब्रज भाषा में हैं। हाँ, दोनों में भी प्रेम की तल्लीनता समान रूप से पाई जाती है। मीरा के काव्य में सूर की क्रीड़ा, तुलसी की दृढ़ता और कबीर की रहस्यात्मकता के साथ-साथ प्रेम का ऐसा पुनीत उन्माद था, जो आज भी पाठकों के अंतस्थ को पिघलाकर अंतस्थ के माध्यम से महानता प्रदान करता है।

2.4 स्वयंअध्ययन के लिए प्रश्न :

प्रश्न 1. निम्नलिखित वाक्यों में दिए गए पर्यायों में से उचित पर्याय चुनकर वाक्य फिर से लिखिए।

1. भक्तिकाल का कालावधी से गिना जाता है।
क. सन् ख. शिवशक
ग. सवन्त घ. विक्रमी सन
2. भक्ति काल को नाम से भी अभिहित किया जाता है।
क. ताम्रयुग काल ख. लोहयुग काल
ग. भस्म युग काल घ. स्वर्णयुग
3. १५ वीं शती में राजस्थान में प्रांत का निर्माण हुआ था।
क. राणा सांगा ख. मेवाड
ग. रेवाड घ. खिवाड
4. बहुचर्चित पानीपत की रणभूमि पर नए हाथियारों से विरोधियों ने पराजित किया था।
क. इब्रहिम लोधी ख. इंशा लोधी
ग. औरंगजेब घ. इम्रान लोधी
5. रामानंद के शिष्य रहे हैं।
क. कबीर ख. तुलसीदास
ग. रामानुजन घ. गोरी
6. प्रांत में अलवार संतों का जिक्र हुआ है।
क. पूर्व ख. पश्चिम
ग. दक्षिण घ. उत्तर
7. पूछो न साधू की।
क. कर्म ख. धर्म
ग. जाति घ. पात्रता

प्रश्न 2. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

1. भक्ति आंदोलन पर का प्रभाव रहा है।

2. सुफी संप्रदाय के प्रमुख संत का नाम क्या है।
3. संत कबीर की विचारधारा का नाम है।
4. संत कबीर की रचना का नाम है।
5. जमींदारी प्रथा को ने उठाया था।

2.5 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ :

- * रीति – पद्धति, धारा
- * सवंत – संस्कृत शब्द जिसका अर्थ है, काल गणना परिमाण
- * रणभूमि – युद्ध भूमि
- * ब्रजभाषा – ब्रज परिसर में बोली जानेवाली भाषा
- * अवधि – अवध प्रांत में बोली जानेवाली भाषा.

2.6 स्वयंअध्ययन प्रश्नों के उत्तर :

- उत्तर प्रश्न 1 –
- | | |
|--------------|-------------------|
| 1. ग – सवंत् | 2. घ – स्वर्णयुग, |
| 3. ख – मेवाड | 4. क – इब्राहिम |
| 5. क – कबीर | 6. ग – दक्षिण |
| 7. ग – जाति | |

उत्तर प्रश्न 2 – रिक्त स्थानों की पूर्ति के उत्तर

1. सांस्कृतिकता
2. मलिक मुहम्मद जायसी
3. निर्गुण
4. साखी, सबद, रमैणी
5. शेरशाह

2.7 सारांश :

1. भक्ति आंदोलन पर राजनीतिक और सामाजिक क्षेत्र ने काफी प्रभाव छोड़ था।
2. सत्ता प्राप्ति के लिए राजनीति कितनी महत्वपूर्ण होती है, यह बात हम सदियों से देखते आए हैं।

3. भक्ति आंदोलन ने जाति, धर्म, वर्ण आदि मानव निर्मित दीवारों को तोड़कर सामान्य लोगों को ईश्वर प्राप्ति के साधनों का मार्ग प्रशस्त किया था।

2.8 स्वाध्याय :

1. भक्ति कालीन सामाजिक और राजनीतिक परिस्थिति का परिचय दीजिए।
2. भक्ति काल की पूर्व पीठिका को स्पष्ट कीजिए।
3. भक्तिकालीन काव्य धारा की विशेषताएँ लिखिए।
4. गुरु नानक देव
5. मीराबाई

2.9 क्षेत्रीय कार्य :

भक्तिकालीन काव्य के परिप्रेक्ष्य में महाराष्ट्र की वारकरी संप्रदाय की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

2.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए :

1. हिंदी साहित्य- युग और प्रवृत्तियाँ डॉ. शिवकुमार शर्मा
2. हिंदी साहित्य का इतिहास- डॉ नगेंद्र और डॉ हरदयाल
3. हिंदी साहित्य का इतिहास- डॉ. रामचंद्र शुक्ल



निर्गुण भक्तिधारा और प्रातिनिधिक कवि

अनुक्रम

- 3.1 उद्देश्य
- 3.2 प्रस्तावना
- 3.3 विषय विवेचन
 - 3.3.1 ज्ञानाश्रयी शाखा की विशेषताएँ।
 - 3.3.2 कबीर : व्यक्तित्व एवं कृतित्व।
 - 3.3.3 प्रेमाश्रयी शाखा की विशेषताएँ
 - 3.3.4 जायसी : व्यक्तित्व एवं कृतित्व।
- 3.4 स्वयंअध्ययन के लिए प्रश्न
- 3.5 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ
- 3.6 स्वयंअध्ययन प्रश्नों के उत्तर
- 3.7 सारांश
- 3.8 स्वाध्याय
- 3.9 क्षेत्रीय कार्य
- 3.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए

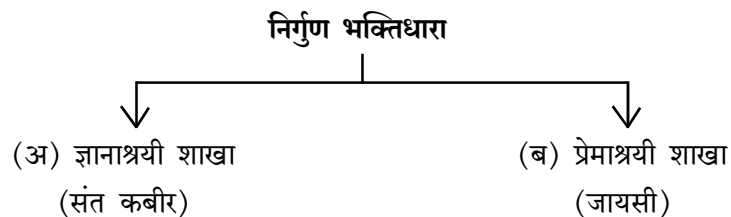
3.1 उद्देश्य :

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप,

- ◆ भक्तिकालीन विभिन्न धाराओं से परिचित होंगे।
- ◆ ज्ञानाश्रयी शाखा से परिचित होंगे।
- ◆ प्रेमाश्रयी शाखा से परिचित होंगे।
- ◆ निर्गुण भक्तिधारा की सामान्य विशेषताओं को समझा सकेंगे।
- ◆ संत कबीर के व्यक्तित्व तथा साहित्य से परिचित होंगे।
- ◆ जायसी के व्यक्तित्व तथा साहित्य से परिचित होंगे।

3.2 प्रस्तावना :

हिंदी साहित्य के इतिहास के संवत् 1375 से संवत् 1700 तक के कालखंड को सामान्यतः भक्तिकाल कहा जाता है। भक्तिकाल हिंदी साहित्य का स्वर्णिम युग माना जाता है। भक्तिकालीन हिंदी साहित्य का प्रभावशाली युग है जिसमें भक्तिभावना (ईश्वर के प्रति प्रेम और समर्पण) को केंद्र में रखकर रचनाएँ की गई हैं। इस कालखंड में सगुण एवं निर्गुण भक्तिधारा का निरंतर विकास हुआ। भक्तिकालीन हिंदी साहित्य में निर्गुण भक्तिधारा को अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। निर्गुण के अंतर्गत संत तथा सूफियों का काव्य सम्मिलित है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने नामदेव एवं कबीर द्वारा प्रवर्तित भक्तिधारा को 'निर्गुण ज्ञानाश्रयी शाखा' की संज्ञा से अभिहित किया है। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इसे 'निर्गुण भक्ति साहित्य' तथा रामकुमार वर्मा ने 'संत काव्य परंपरा' का नाम दिया है। इस धारा के कवियों ने ज्ञान तत्त्व को सर्वाधिक महत्व दिया है। इसमें ईश्वर के निर्गुण निराकार रूप का वर्णन किया है। निर्गुण भक्तिधारा के प्रमुख दो अंग हैं -



(अ) ज्ञानाश्रयी शाखा :

ज्ञानाश्रयी शाखा भक्तिकाल की निर्गुण भक्तिधारा का एक प्रमुख भाग है। इसमें ईश्वर की निराकार माना गया है। ज्ञान के माध्यम से ईश्वर के भक्ति पर बल दिया है।

इस शाखा के अंतर्गत संत काव्य परंपरा सम्मिलित है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इसे 'निर्गुण भक्ति साहित्य' कहा है। ईश्वर को निर्गुण निराकार रूप में स्वीकार करनेवाले ज्ञानाश्रयी शाखा के कवियों के लिए संत

शब्द का प्रयोग किया जाता है। ज्ञानाश्रयी शाखा ने समाज को तर्क सादगी और सच्ची भक्ति का मार्ग दिखाया और धार्मिक आडंबरों का विरोध किया। संत कबीर निर्गुण काव्यधारा के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। संत नामदेव, संत कबीर के अलावा रैदास, धर्मादास, धन्ना, सिंगा, दलूदास, जयदेव, गुरुनानक, मलकूदास, दादूदयाल, जनगोपाल, मोहनदास, दरियासाहब, सुंदरसाहब आदि अनेक नाम संत काव्य परंपरा के अंतर्गत लिए जाते हैं।

(ब) प्रेमाश्रयी शाखा :

हिंदी साहित्य के अंतर्गत जायसी कुतबन, मुल्ला दाऊद आदि सूफी परंपरा के कवियों द्वारा प्रवर्तित भक्तिधारा को 'प्रेमाश्रयी' शाखा कहा जाता है। हिंदी साहित्य में इसे सूफी मत अथवा सूफी काव्य के नाम से भी जाना जाता है। यह धारा मूलतः ईरान की है। मुसलमान शासन काल में ईरान के कुछ सूफी कवि भारत आए। ईरान में इस्लाम धर्म के एक अंग के रूप में सूफी मत का उदय एवं विकास हुआ था। ये कवि हृदय से उदार एवं कोमल हृदय के होते हैं। आचार्य शुक्ल ने 'मृगावती' के रचयिता 'कुतबन' को सूफी काव्य का प्रवर्तक माना है। हिंदी साहित्य में इसका विकास प्रेमकाव्य के रूप में हुआ है। डॉ. रामकुमार वर्मा ने 'मुल्ला दाऊद की 'चंदायन' को सूफी काव्य का प्रथम ग्रंथ माना है। सूफी कवियों की केंद्रीय संवेदना 'प्रेम' है इसे डॉ. गणपतिचंद्र गुप्त ने 'रोमांसिक कथाकाव्य परंपरा' कहा है।

सूफी कवियों ने ईश्वर के निर्गुण निराकार रूप को स्वीकार किया है। वे ईश्वर प्राप्ति का एक मार्ग प्रेम को मानते हैं। सूफी कवियों ने ईश्वर की कल्पना स्त्री के रूप में और परमात्मा की कल्पना पुरुष के रूप में की है। ईश्वर को परम सत्य मानते हैं। यशप्राप्ति के लिए गुरु को महत्त्व दिया है। 'पद्मावत' के रचयिता मलिक मुहम्मद जायसी सूफी काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि है। 'पद्मावत' सूफी काव्य का सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ है। इनके अतिरिक्त कुतबन, मौलाना दाऊद, मंझन, उसमान, नुर मुहम्मद आदि प्रमुख सूफी कवियों ने सूफी काव्यधारा को आगे बढ़ाया है।

3.3 विषय विवेचन :

3.3.1 ज्ञानाश्रयी शाखा की विशेषताएँ।

हिंदी का भक्तिकाव्य एक विशेष सामाजिक-सांस्कृतिक परिस्थिति की उपज है। कुछ प्रवृत्तियाँ ऐसी हैं जो समस्त भक्ति काव्यधारा में उपस्थित हैं। परंतु प्रत्येक काव्यधारा में कुछ विशिष्ट प्रवृत्तियाँ भी हैं, जो उनकी निजी पहचान कराती हैं। ज्ञानाश्रयी काव्यधारा की सुदीर्घ परंपरा की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-

1) सहज अनुभूति का काव्य :

ज्ञानाश्रयी काव्यधारा भावनात्मक एवं अनुभूतिप्रवण जनकाव्य है। जिसका प्रेरणास्रोत सामान्य जन का कल्याण था। इन कवियों ने जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में शोषित और पीड़ित-प्रताड़ित मानव की समस्त परिस्थितियों एवं भावनाओं का गंभीर चित्रण किया है। यह काव्यधारा इतनी अनुभव-पूर्ण है कि उसमें तत्कालीन

जन-जीवन का पूर्ण बिम्ब उपस्थित हो गया है। यह काव्यधारा निराशा, वासना, प्रतिशोध और प्रति हिंसा के अंधकार में भटकते मानव-समाज को प्रेरणा और प्रकाश देने वाला है।

इस काव्यधारा के अधिकांश कवि समाज के निम्नवर्ग या सामान्य वर्ग से आते थे। जिनके लिए शास्त्र वर्जित था। इसलिए ज्ञानाश्रयी कवियों ने आत्मानुभव को प्रधानता दी है। इनका मूल उद्देश्य था अशिक्षित जनता में सत्य का निरूपण करना, कथनी-करनी में तारतम्य पर बल देना तथा 'नाम' के माधुर्य को घर-घर पहुँचाना। उदात्त अनुभूति की हृदयस्पर्शी व्यंजना इस काव्यधारा की अनन्य विशेषता है। कबीर की उक्ति,

पण्डित और मसालची, दोनों सूझत नाहि
औरन को करै चांदना, आप अंधेरे मांहि

कबीरदास जी कहते हैं कि पोथी पढ़कर अपने आपको पंडित कहलाने वाले और मशाल लेकर दूसरे को मार्ग बतलाने वाले दोनों ही अज्ञान और अंधेरे में रहते हैं।

2) संतों का निर्मल व्यक्तित्व :

इस परंपरा से संबंधित कवियों का व्यक्तित्व निम्न जाति का होने पर भी आत्मविश्वास से परिपूर्ण है। उनमें किसी प्रकार की आत्महीनता नहीं है। इस विचारधारा के अनुसार शुद्र से शुद्र व्यक्ति में भी ब्रह्म का अस्तित्व है। जैसा सत्संग, ज्ञान, अनुभव इन्हें मिला था, उसने इनके व्यक्तित्व को पूर्णतः शोधित, परिष्कृत एवं निर्मल बना दिया था।

3) सहज जीवन का समर्थन :

सिद्धों एवं नाथों की परंपरा से संबद्ध होते हुए भी ये लोकपद्धति के विरोधी नहीं थे। अस्वाभाविक चमत्कार एवं कठिन साधना से वे ऊपर उठे हुए थे। उन्होंने अध्यात्म का ऐसा मार्ग खोजा, जो समाज की चार दीवारी की मर्यादा के भीतर रहकर अग्रसर होता था। किसी संत ने गृहस्थ धर्म का विरोध नहीं किया। गृह-त्याग का समर्थन भी नहीं किया। भोगवाद का समर्थन नहीं किया। वेद ही अंतिम सत्य नहीं है, वर्णाश्रम एवं जातिवाद व्यर्थ है। सत्य, अहिंसा एवं सदाचार के अनुभवों से ही आत्मोन्नयन होता है, यह इनका सहज पंथ था। वैष्णव-भक्तिधारा से भी उन्होंने प्रेमाभक्ति एवं नाम-स्मरण को ग्रहण कर लिया जो सहज साधना के अंग थे। तात्पर्य यह कि उन्होंने विभिन्न धर्मों-मतों का सामान्यीकरण या विज्ञानीकरण करते हुए धर्म को एक विश्वधर्म के रूप में प्रतिष्ठित किया।

4) ज्ञान की प्रधानता :

अपनी सामाजिक स्थिति के कारण कुछ कवियों में उग्रता आई है, तो कुछ कवियों में विनम्रता। इन्होंने अनुभव को ज्ञान से श्रेष्ठ बताया तथा अपने अर्जित ज्ञान पर गर्व प्रदर्शित किया। उनके ज्ञान-गर्व ने चमत्कारपूर्ण रूपकों, उक्तियों, उलटबाँसियों आदि के रूप में अभिव्यक्ति पाई है। यह ज्ञान का गर्व ही है, जिसके कारण कबीर पूछ सकते हैं-

जोतू बाभन बाभिनी जाया और राह से क्यों नहीं आया।

जोतू तुरुक तुरुकनी जाया पेटे काहे ना मुन्नत कराया।

यह काव्यधारा ज्ञान के द्वारा पारस्परिक एकता की भावना में वृद्धि करती है। ज्ञान के महत्त्व को समाज की समझाने का प्रयास इन कवियों ने किया है।

5) ब्रह्म-निरूपण :

इस धारा के कवियों ने ब्रह्म, जीव, जगत्, माया आदि विषयों पर विस्तार से लिखा है। यह ठीक है कि इनकी वाणी अटपटी एवं अस्पष्ट है, किंतु इस गंभीर विषय पर सांकेतिक रूप से प्रकाश अवश्य डालती है। इन कवियों का ब्रह्म नित्य सुख, अरूप, अव्यक्त, अनाम, अजर, अमर और सर्वव्यापी है-

अलख निरंजन लखै न कोई, निर्भय निराकार है गोई।

सुनि अस्थल रूप नहीं रेखा, दिस्ट अदिस्ट छिप्यो नहीं रेखा। (कबीर)

कबीर के लिए राम दशरथ सुत नहीं हैं। वे ब्रह्म स्वरूप हैं। निर्गुण निराकार ब्रह्म हैं। अवतारवाद में संतों की आस्था नहीं है।

6) माया का रूप :

ज्ञानाश्रयी कवियों ने माया पर बहुत कुछ लिखा है। मिथ्या ज्ञान ही माया है जिस तरह रस्सी में सर्प का ज्ञान भ्रम या माया ही है। कबीर ने माया के कई रूपों का वर्णन किया है। माया सृष्टि का कारण है, अविद्या है, शक्ति है, सांसारिक संबंधों की भी जननी है। मैं और मेरा का बोध माया ही देती है। माया दुःखों की जड़ है। यह ज्ञान विरोधी है। यह 'महाठगिनी' है। यह सत्मार्ग से विचलित करती है -

“कबीर माया मोहिनी जैसे मीठी खाँड़।”

“माया महा ठगिनि हम जानी॥”

कबीर के अनुसार, माया वासना को जन्म देती है। ब्रह्म में जो माया है, पिण्ड में वही कंचन है। भक्ति में माया बाधक का काम करती है। इसलिए संतों ने इसे दूर रहने की सलाह दे दी है।

7) जीव और जगत् :

सभी ज्ञानाश्रयी कवियों ने जीव और जगत् के संबंध में लिखा है। जहाँ वे जीवन-जगत् को ब्रह्म का अंश मानते हैं, वहाँ वे अद्वैतवाद के नजदीक हैं। कबीर कहते हैं समस्त जीवात्मा एक है, परंतु रूपाकार में पृथक् है। यानी जल एक ही तत्त्व है, भले उसका नाम कुछ भी हो या किसी भी आकार में रखा हो। स्वर्ण मूलतः एक है, उसके आभूषण भले अलग-अलग हैं-

“पानी ही तें हिम भया, हिम हवै गया बिलाय।

जो कुछ था सोई भया, अब कुछ कहा न जाय॥”

कबीर तथा संत कवि मानते हैं कि जगत् की उत्पत्ति ब्रह्म से होती है और नष्ट होकर जगत् उसी ब्रह्म में समाहित हो जाता है। तात्पर्य यही है कि संतों की जगत् संबंधी अवधारणा अद्वैतवादियों जैसी है। कबीर जगत् को स्वप्न कहते हैं- 'जीवन सुपिन समान।'

8) गुरु-महिमा की प्रशंसा :

समस्त ज्ञानमार्गी काव्यधारा में गुरु महिमा को श्रेष्ठ साधन कहा गया है। भक्त कवियों ने भी गुरु को महत्त्व दिया है। मगर संत कवि तो गुरु को गोविंद ही मानते हैं, क्योंकि वही ज्ञान देता है या पहचान कराता है कि यह ईश्वर है। कबीर कहते हैं,

“गुरु गोविंद दोऊ खडे, काके लागूं पाय।
बलिहारी गुरु आपने, गोविंद दियो बताय।।”

कबीरदास जी कहते हैं कि यदि मेरे सामने गुरु और गोविंद (ईश्वर) दोनों एक साथ खड़े हो तो मैं पहले अपने गुरु के चरणों में शीश झुकाऊंगा। क्योंकि उनके दिए हुए ज्ञान से ईश्वर के दर्शन है।

संसार के बंधनों से मुक्ति के लिए वैराग्य चाहिए। वैराग्य के लिए मनोनिग्रह चाहिए। इस मनोनिग्रह के लिए गुरु कृपा बहुत आवश्यक है। सद्गुरु ही इनके लिए ईश्वर तुल्य है।

गुरु ब्रह्मा गुरु विष्णु, गुरु देवो महेश्वराः
गुरु साक्षात् परब्रह्म, तस्मै श्री गुरुवे नमः

9) रहस्यवाद :

इन कवियों में अनेक रहस्यात्मक उक्तियाँ मिलती हैं, जो शंकर अद्वैत तथा नाथ-साधना का प्रभाव है। संतकाव्य में अलौकिक एवं गूढ़ प्रेम की व्यंजना हुई है, यही इनका रहस्यवाद है। कबीर के इस प्रसिद्ध दोहे पर शंकर अद्वैत का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है-

जल में कुम्भ कुम्भ में जल है बाहर भीतर पानी।
फूटा कुम्भ जल जलहिं समाना यह कथ कहै गियानी।

तर्क, जिज्ञासा, विस्मय एवं तत्त्वानुभूति इनके रहस्य चिंतन के अंग हैं। संतकाव्य में रहस्यवाद के दो रूप हैं, हठयौगिक रहस्यवाद और सूफीमत प्रभावित प्रेम संलक्षण रहस्यवाद। हठयौगिक रहस्यवाद में कुण्डलिनी, चक्र, अनहद नाद, इंगला-पिंगला आदि की चर्चा मिलती है। प्रायः रहस्यवाद को प्रतीकों द्वारा व्यक्त किया गया है -

रस गगन गुफा में अजर झरे।
अजपा सुमिरन जाप करे।
बिनु बाजा झनकार उठे जहाँ समुझि परै जब ध्यान धरे।

बिनु चन्दा उजियारी दरसे जहँ तहँ हँसा नजरि परे।
आकासे मुख औधां कुआँ..

कबीरदास जी की उलट बाँसियाँ रहस्यों से भरी होती है। जो दृढयोग और अंतर्गता की चरम अवस्था का वर्णन करता है। कबीर ने लोक-विरुद्ध प्रतीकों का प्रयोग किया है। जिज्ञासू का मन संसार हे हटकर सत्य की खोज जगे। कबीर कहते हैं कि मोक्ष के लिए बाहर जाने की आवश्यकता नहीं है। ब्रह्मांड का सारा रहस्य इस शरीर (काया) के भीतर ही मौजूद है।

10) सूफियों के प्रेमदर्शन का प्रभाव :

सूफी परमात्मा को प्रेमस्वरूप मानते हैं। उसे प्रेम के माध्यम से ही प्राप्त करते हैं। सूफियों के प्रेमदर्शन का प्रभाव संतकवियों पर भी पड़ा है। तथापि संतों की प्रेम पद्धति भारतीय ही रही है। अर्थात् उन्होंने परमात्मा को प्रियतम माना है और स्वयं को प्रियतमा। 'हरि मोर पीउ मैं हरि की बहुरियाम कहते समय कबीर इसी प्रेम संबंध की बात करते हैं। इस स्थिति के चित्रण के लिए संयोग एवं वियोग दोनों के चित्र खड़े किए गए हैं। संयोग की अपेक्षा वियोग चित्रण में मर्मस्पर्शिता अधिक है।

11) वैष्णव-चिंतन का प्रभाव :

ज्ञानाश्रयी काव्य परंपरा पर वैष्णव दर्शन एवं चिंतन का भी प्रभाव है। कबीर ने बार-बार वैष्णवों की प्रशंसा की है और शाक्तों की निंदा की है। वस्तुतः इन संतों ने राम, गोपाल आदि नामों के अतिरिक्त भक्ति भावना भी वैष्णवों से ली है। अहिंसा का तत्त्व भी वैष्णव संप्रदाय का ही है-

बकरी पाती खात है ताकी काढी खाल।
जो नर बकरी खात हैं ताको कौन हवाल।

कबीर ने पाखंड और हिंसा का कड़ा प्रहार किया है। इस दोई वैष्णव के अहिंसा और कर्म फल सिद्धांत का प्रभाव है।

12) नारी के प्रति दृष्टि :

प्रायः सभी संत कवि नारी के प्रति असहिष्णु हैं। उन्होंने उसकी निंदा की है। संभवतः उन्होंने नारी की आसक्ति के कारण बौद्ध धर्म के भिक्षुओं तथा नाथों-सिद्धों के पतन को देखा था। कबीर कहते हैं -

नारी तो हमहूँ करी, तब ना किया विचार।
जब जानी तब परिहरी, नारी महाविकार।
मगर उसी कबीर ने चरित्रवान एवं सती नारियों की प्रशंसा भी की है।

कबीर इस दोहे में वैराग्य मार्ग और साधना के सिद्धांतों को स्पष्ट करता है। कबीर ने अपनी वाणी में नारी को अक्सर 'माया' के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किया है।

13) भाषा एवं शैलीगत प्रवृत्तियाँ :

इन सभी कवियों ने प्रधानतः मुक्तक-काव्य लिखा है। इनमें दोहा और पद की प्रधानता है। इनके पद गेय हैं। लोकप्रियता के लिए इन्होंने चाँचर, फाग, हिण्डोला आदि लोकगीतों के लय में काव्य रचना की है। सभी ज्ञानाश्रयी कवियों ने भोजपुरी, ब्रजभाषा, खड़ीबोली, राजस्थानी आदि हिंदी की बोलियों का प्रयोग किया है।

संतों की मिली-जुली भाषा को 'सधुक्कड़ी भाषा' कहा गया है। इन संत कवियों ने दीपक, कमलिनी, सरोवर, जल, नागिन, नाग, हँस, भौरा, वृक्ष, पक्षी आदि प्रतीकों का प्रयोग किया है। उलटबाँसी भी इनकी एक शैली है। इनकी भाषा में रस, छंद, अलंकार पर विशेष ध्यान नहीं है। अलंकारों का प्रयोग सायास नहीं, बल्कि स्वाभाविक है। दोहा, चौपाई, सोरठा इनके प्रिय छंद हैं।

निष्कर्ष :

ज्ञानाश्रयी काव्यधारा का लोकपक्ष अत्यंत मजबूत एवं प्रभावशाली है। इस काव्यधारा के कवि लोक, परलोक दोनों को भी महत्त्व देते हैं। एक ओर वे सांसारिक भोगविलास की निंदा करते हैं और जीवन की नश्वरता की बातें करते हैं, तो दूसरी तरफ सामाजिक जीवन में व्याप्त स्खलन, कटुता, विषमता आदि का विरोध करते हैं। इन कवियों ने श्रम का महत्त्व प्रतिपादित किया तथा हर सड़ी-गली मान्यता का विरोध किया। यह सही अर्थों में जन-काव्य है, जनोन्मुख काव्य है, प्रजातांत्रिक मूल्यों का काव्य है और दलित अस्मिता का काव्य है। इनका सबसे प्रमुख देय है समाज की विषमता का विरोध तथा मानववाद की स्थापना। धर्म एवं जाति को इन कवियों ने साहित्य से निर्वासित करने का समस्त प्रयास किया है। इन्होंने आम आदमी में गौरव एवं स्वाभिमान भर दिया है।

3.3.2 कबीर : व्यक्तित्व एवं कृतित्व।

जीवनवृत्त :

मध्ययुगीन अन्य भक्त एवं संत कवियों के समान कबीर का जीवनवृत्त अंधकारमय है। उनके जन्म, मृत्यु, निवास-स्थान वंश, यथार्थ नाम आदि सभी बातों के संदर्भ में स्पष्ट रूप से कहा नहीं जा सकता। परंतु संत कबीर सिकंदर लोधी के समकालीन थे। अनेक देश विदेश के इतिहासकारों ने इतिहास ग्रंथों में इसकी पुष्टी की है। कबीरदास के साहित्य में नामदेव और जयदेव का भी उल्लेख मिलता है, इससे स्पष्ट होता है कि कबीर जयदेव और नामदेव के बाद के कवि हैं। नामदेव का समय तेरहवीं शताब्दी का अंतिम चरण माना गया है। संत पीपा ने कबीर उल्लेख किया है। अतः हम यहाँ कह सकते हैं कि कबीर नामदेव के बाद के और पीपा के पहले के कवि हैं। संत पीपा का जन्म सं. 1482 माना गया है। 'कबीर चरित्रबोधम' में सं. 1455 वि. ज्येष्ठ सुदी पूर्णिमा सोमवार को कबीर की जन्म तिथि स्वीकार की गई है,

“चौदह सौ पचपन साल गए चद्रावार एक ठाठ ठए ।

जेठ सुदी बरसायत को पूरनमासी प्रगट भए॥”

डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी, डॉ. माता प्रसाद गुप्त तथा हिंदी के अधिकतर विद्वानों ने संवत् 1455 जेष्ठ सुदी पूर्णिमा सोमवार को कबीर का जन्म माना है। यही तिथि अधिक उपयुक्त एवं तर्कसंगत है।

गुरु :

स्वामी रामानंद कबीर के गुरु थे। कबीर का कहना है “काशी में हम प्रगट भये, रामानंद चेताये।” कुछ विद्वान शेख तकी को कबीर के गुरु मानते हैं परंतु वह तर्क संगत नहीं है। कबीर ने शेख तकी के प्रति कहीं भी श्रद्धा प्रकट नहीं की है। अतः स्वामी रामानंद ही कबीर के गुरु थे।

माता-पिता :

कबीर के जन्म के संबंध में अनेक किंवदंतिया प्रचलित हैं। अधिकतर विद्वानों का मानना है कि कबीर का जन्म एक विधवा ब्राह्मणी की कोख से हुआ। लोकलाज वश विधवा ने नवजात शिशु को काशी के लहरतारा नामक तालाब के निकट फेंक दिया था, जिसका पालन-पोषण निःसंतान जुलाहा दम्पति नीरू और नीमा ने किया। इस बात का समर्थन कबीर ने अपने आप को जुलाह कहकर किया है। कबीर के जन्म और माता-पिता क संबंध में अनेक विद्वानों के मतों को देखने के बाद स्पष्ट रूप से कह सकते हैं कि उनका जन्म सं. 1455 में काशी में हुआ और मृत्यु स. 1575 में मगहर में हुई।

पत्नी :

कबीर गृहस्थी थे। इनकी पत्नी का नाम लोई था। डॉ. रामकुमार ने इनकी अन्य एक पत्नी मानी है जिसका नाम धनिया या रमजानिया था।

पुत्र और पुत्री :

कमाल और कमाली कबीर के पुत्र और पुत्री थे। कबीर की कई उक्तियों से पता चलता है कि इनका पारिवारिक जीवन सुखी नहीं था। कुछ विद्वानों ने इनके निहाल और निहाली दो और पुत्र तथा पुत्री भी माने हैं।

व्यक्तित्व :

संत कबीर उदार, निर्भीक, स्वतंत्रताप्रेमी, स्वाभिमानी, सत्यवादी, अहिंसा, सत्य और प्रेम के समर्थक जाति-पाति बाह्याडंबरों के विरोधी तथा क्रांतिकारी भावना से ओतप्रोत थे। वे मस्तमौला, लापरवाह एक फक्कड फकीर थे। उनमें विद्रोह की भावना कुट-कुट कर भरी हुई थी। उनमें अदम्य साहस एवं अखंड आत्मविश्वास था। वे प्रतिभावान विलक्षण व्यक्तित्व से संपन्न थे। अनेक दबावों के बावजूद भी वे कभी सिकंदर लोधी के सामने झुके नहीं। हिंदू और मुसलमानों के रोष ने उन्हें तनिक भी विचलित नहीं किया। वे योगियों के प्रभाव से आहत नहीं हुए और ना ही सूफी उन्हें अपने संप्रदाय में मिला सके। उन्होंने हमेशा समाज विरोधी

बातों का डटकर मुकाबला किया। उन्होंने अंत तक अपनी अटपटी वाणी से उत्तरी भारत का नेतृत्व किया। वे सामाजिक व्यवस्था और धार्मिक व्यवस्था पर प्रहार करते रहें। कबीर के व्यक्तित्व के संदर्भ में डॉ. हजारीप्रसाद का मंतव्य दृष्टव्य है, “वे सिर से पैर तक मस्त मौला, स्वभाव से फक्कड, आदत से अक्खड, भक्त के सामने निरीह, भेषधारी के आगे प्रचंड, दिल के साफ, दिमाग के दुरूस्त, भीतर से कोमल, बाहर से कठोर, जन्म से अस्पृश्य, कर्म से वंदनीय थे। युगावतार की शक्ति और विश्वास लेकर पैदा हुए थे और युग प्रवर्तक की दृढ़ता उनमें वर्तमान थी, इसलिए युग प्रवर्तन कर सके।”

कृतित्व :

‘बीजक’ कबीर की प्रामाणिक रचना मानी गयी है। इसमें कबीर के उपदेशों का शिष्यों द्वारा संकलन है। ‘बीजक’ के तीन भाग किए गए हैं – साखी, शब्द, रमैनी। कई विद्वानों ने कबीर के ग्रंथों की संख्या 57 से 61 मानी है। अनुराग सार, उग्र गीता, निर्भय ज्ञान, शब्दावली और रेखतों आदि पुस्तकों को कबीर द्वारा रचित माना गया है, परंतु इसके संबंध में प्रामाणिक रूप से कुछ कहना कठिन है।

साहित्य-समीक्षा :

संत कबीर निराकारवादी हैं। कबीर का राम सृष्टि के कन-कन में समाया हुआ है। उसे बाहर खोजने की आवश्यकता नहीं है। उनका कहना है “हिरदै सरोवर है अविनासी। मम कबीर का राम दशरथ पुत्र राम न होकर परमात्मा (ईश्वर) का प्रतीक है। कबीर राम को पुकारने की आवश्यकता निश्चित रूप से महसूस करते हैं, इसलिए उन्हें कोई ना कोई नाम देना ही पड़ता है। कबीर कहते हैं,

“दशरथ सुत तिहू लोक बखाना।
राम नाम का मरम है आना।।”

कबीर का एकेश्वरवाद मुस्लिम एकेश्वरवाद से बिल्कुल भिन्न है। कबीर का निर्गुण ईश्वर व्यापक है। वह समस्त संसार में समाया हुआ है। वह केवल शास्त्रों और पुराणों के अध्ययन एवं ज्ञान से नहीं जाना जाता है बल्कि प्रेमपूर्ण भक्ति से प्राप्त किया जा सकता है। कबीर की भक्ति अनन्य भाव से परिपूर्ण है। जिसमें कर्मकांड, बाह्याडंबरों आदि को बिल्कुल स्थान नहीं है। भक्ति के मार्ग में माया कनक और कामिनी के रूप में व्यवधान डालती है, अतः कबीर ने इसकी कटु आलोचना की है। कबीर के भक्तिमार्ग में ऊँच-नीच, ब्राह्मण, शूद्र और स्पृश्यास्पृश्य आदि को कोई स्थान नहीं है। वे कहते हैं,

“जाति पांति पूछै नहिं कोई, हरि को भजे सो हरि का होई।

कबीर ने भक्ति और प्रेम के सहारे ब्रह्म से तादात्म्य करना चाहा है। परमात्मा को पति और आत्मा को पत्नी रूप में कल्पना करके प्रेम का एक महान भारतीय आदर्श रूप उपस्थित किया है। कबीर ने इंद्रिय-साधना और मन साधना पर बल दिया है। कबीर हिंदू और मुसलमानों की साधना की जटिल क्रियाओं, आडंबरों, अंधविश्वासों का विरोध करते हैं। कबीर में वैष्णवों का प्रपत्तिवाद है, जैनों की अहिंसा और बौद्धों की

बुद्धिवादिता है। कबीर को किसी भी प्रकार का भाषा शास्त्रीय ज्ञान नहीं था। उन्हें जो भी बात जिस संप्रदाय की अच्छी लगी उसे लिया। उन्हें एक सामान्य भक्तिमार्ग की स्थापना करनी थी और उसके लिए यही माध्यम उपयुक्त था। वे साधना क्षेत्र में महान युग-गुरु और साहित्यिक क्षेत्र में युगद्रष्टा है। संप्रदाय चाहे जो भी उसकी अनुमति की उसे कोई आवश्यकता नहीं थी।

रहस्यवाद :

कबीर हिंदी साहित्य के आदि रहस्यवादी कवि हैं। इस क्षेत्र में उनका अत्यंत उच्च स्थान है। हिंदी आलोचकों ने रहस्यवाद को दो भागों में विभाजित किया है, (क) भावात्मक रहस्यवाद (ख) साधनात्मक रहस्यवाद। कबीर में रहस्यवाद के इन दोनों रूपों का दर्शन होता है कबीर के भावात्मक रहस्यवाद को अनेक अवस्थाओं में विभक्त कर दिया गया है।

प्रथमावस्था में परमात्मा की आत्मा दिव्य ज्योति के दर्शन से आकर्षित हो जाती है। कबीर अपने प्रियतम के अलौकिक सौंदर्य पर विमुग्ध है। उनके लिए ईश्वर गूँगे के गुड़ के समान है। वे कहते हैं,

“कहत कबीर पुकार के अद्भुत कहिये ताहि।”

द्वितीय अवस्था में परमात्मा से मिलने की आतुरता प्रकट की जाती है। इस अवस्था में विरह-मिलन, आशा-निराशा, अभिलाषा, वेदना का अत्यंत सजीव वर्णन हुआ है। कबीर ने मिलन की आतुरता का जिस कलात्मकता और विरह वेदना का जिस मार्मिकता से वर्णन किया है, वह हिंदी साहित्य अद्वितीय है। कबीर कहते हैं,

“आँखडिया झाँई पड़ी, पंथ निहारि-निहारि।

जीभडियाँ छाला पड्या राम पुकारि-पुकारि॥

“सुखिया सब संसार है खावै और सोवै

दुखिया दास कबीर है, जागै अरू रोवै॥ ”

तृतीय अवस्था आत्मा और परमात्मा के ऐक्य की है। इस संबंध में कबीर का वर्णन अत्यंत सजीव एवं हृदयस्पर्शी बन पड़ा है।

“लाली मेरे लाल की जित देखूँ तित लाल।

लाली देखन मैं गई मैं भी हो गई लाल॥”

कबीर के प्रीतम मिलन की आतुरता संसार के किसी भी प्रेम व्यापार से अधिक तीखी है। रात्रि की समाप्ति के पश्चात चकवी के लिए चकवे से मिल सकना संभव है, परंतु कबीर के लिए दिन-रैन दोनों एक समान है,

“चकवि बिछुरी रैन की आई मिली परभाति।

जो जन बिछुरे राम से ते दिन मिलै न राति ॥”

कबीर में गंभीर रहस्यमय अनुभूतियों, विरह-व्याकुलता, आत्म-समर्पण की उत्कंठा, प्रेमपूर्ण भक्ति, आंतरिक प्रेम की निष्ठा, परमात्मा मिलन की उत्कट अभिलाषा आदि बाते सम्मिलित हैं।”

कबीर में साधनात्मक रहस्यवाद भी देखा जाता है इनके साहित्य में इंगला, पिंगला, सुषुम्ना, षटदल, त्रिकुटी, सूर्य, चंद्र आदि हठयोग के पारिभाषिक शब्द मिलते हैं।

कबीर के रहस्यवाद पर शंकराचार्य के अद्वैतवाद का प्रभाव था।

“जल में कुंभ कुंभ में जल है भीतर बाहर पानी।
फूटा कुंभ जल जलहि समाना यह तत कहौ गयानी॥”

शंकराचार्य के समान कबीर ने भी आत्मा और परमात्मा के मिलन में माया को अवरोधक तत्त्व माना है। कहीं-कहीं शंकर के समान संसार को मिथ्या भी माना है। कबीर भावना की अनुभूति से युक्त उत्कृष्ट रहस्यवादी कवि हैं।

सामाजिक पक्ष :

संत कबीर भक्त, कवि, सुधारक और युगद्रष्टा भी है। उन्होंने तमाम सामाजिक कुरीतियों, अंधविश्वासों, रूढ़ियों, सांप्रदायिक कट्टरताओं, कर्मकांडों, आडंबरों आदि पर प्रहार किया है। उन्होंने हिंदू-मुसलमानों के धार्मिक और सामाजिक बाह्याचारों का खंडन किया है। एक और हिंदुओं की मूर्तिपूजा, उपवास, नाम, जाप, तीर्थयात्रा आदि बातों पर प्रहार किया है। वहीं दूसरी ओर मुसलमानों के नमाज, रोजा, हज आदि बातों का भी कडा विरोध किया है। संत कबीर के कालखंड में हिंदू और मुस्लिम जातियों में परस्पर वैमनस्य चरम सीमा पर पहुँच गया था। दक्षिण के अलवार भक्तों का भक्ति का आंदोलन रामानंद के नेतृत्व में उत्तर भारत में पहुँच चुका था। इस आंदोलन में ऊँच-नीच का कोई भेदभाव नहीं था। भक्ति में सभी जाति धर्मों के लोगों को समान अधिकार था। कबीर ने रामानंद को अपना गुरु मानकर इस मत का अनुसरण किया। हिंदुओं में फैली अंधविश्वास पर प्रहार करते हुए वे कहते हैं,

“पत्थर पुजै हरि मिलै सौ मैं पूँजू पहार।
तातै चक्की भलि पीस खाये संसार॥”

कबीर मंदिर और तीर्थस्थानों को निरर्थक बताते हैं। वे मस्जिद और हज्ज तथा नमाज की निरर्थकता सिद्ध करते हैं।

कबीर के समय देश में धर्म की और एक धारा प्रवाहित हो रही थी, वह थी सूफी साधना की धारा। सूफी लोग मुसलमान उल्माओं की तरह कट्टर और संकीर्ण मतवादी न थे और न इन्हे मुस्लिम धर्म के कर्मकांड पर विश्वास था। उनसे परिचित कबीर ने जनता के लिए एक सामान्य मार्ग का निर्देश किया। कबीर के अनुसार भक्ति में ज्ञान महत्वपूर्ण है। पोथी पढ़ने से कोई पंडित नहीं होता। ढाई अक्षर प्रेम के जो जानता है वही सही अर्थों में पंडित होता है -

“पोथी पढ़ि-पढ़ि जग मुआ पंडित भया न कोई।
ढाई आखर प्रेम के, पढ़ै सो पंडित होई॥”

कबीर ने जातिगत, वंशगत, धर्मगत, संस्कारगत, विश्वासगत और शास्त्रगत रूढ़ियों और परंपरा के मायाजाल को बुरी तरह से छिन्न-भिन्न किया है। एक ओर वे पंडितों को खरी-खोटी सुनाते हैं तो वहीं दूसरी ओर मुल्ला की कटु आलोचना करते हैं। एक ओर मंदिर तथा तीर्थस्थानों को निरर्थक बताते हैं तो दूसरी ओर मस्जिद हज्ज-नमाज आदि पर प्रहार करते हैं। वे कहते हैं,

“अरे इन दाउन राह न पाई
हिंदुन की हिन्दुआई देखी तुरकन की तुरकाई ॥”

वर्णाश्रम व्यवस्था पर व्यंग्य प्रहार करते हुए कबीर कहते हैं, “तुम किस प्रकार ब्राह्मन हो और हम किस प्रकार शूद्र, हम किस प्रकार घृणित रक्त है और तुम किस प्रकार पवित्र दूध।” बनारस के ठग संतों का भंडा फोड़ने में भी कबीर हिचकिचाते नहीं हैं, “साढ़े तीन गज की धोती पहने हुए, तिहरे तागे लपेटे हुए, गले जयमाला डाले हुए और हाथ में माला लिए हुए इन अभागों को हरि का संत नहीं कहना चाहिए ये लोग तो बनारस के ठग हैं। राज्य की न्याय व्यवस्था पर प्रहार करते हुए कबीर कहते हैं, “काजी तुमसे ठीक तरह बोलते नहीं बना, हम तो दीन बेचारे ईश्वर के सेवक हैं, और तुम्हारे मन को राजसी बातें ही भाती है। लेकिन इतना समझ लो कि ईश्वर, धर्म के स्वामी ने कभी अत्याचार करने की आज्ञा नहीं दी।” कबीर ने युगानुरूप मानवीय आदर्शों की स्थापना की। कबीर का जीवन और काव्य भारत की सामंती व्यवस्था की रूढ़ियों, पाखंडों और मिथ्याचार के प्रति लड़ाई है। कबीर ने अनेक वर्षों से चली आर रही संकुचित वृत्ति पर प्रहार करते हुए प्रत्येक व्यक्ति का उदार बना दिया है।

कलापक्ष :

कबीर अशिक्षित थे। उनकी वाणी को अनुयायों (शिष्यों) ने पुस्तक रूप में प्रस्तुत किया है। वे काव्यशास्त्र, छंदशास्त्र, भाषाशास्त्र आदि से बिल्कुल अनजान थे।

“मसि कागद छूयो नहीं,
कलम गद्यों नहि हाथ।”

कबीर यह संदेश देना चाहते थे कि उनका ज्ञान ‘कागज की लेखी’ (किताबी ज्ञान) नहीं, बल्कि ‘आँखन देखी’ (जगत् का अनुभव और आत्मज्ञान) है।

उनके काव्य का कलापक्ष अव्यवस्थित और कमजोर है। अनुभूति की सच्चाई पर उनका काव्य खरा उतरता है। कबीर के काव्य के संदर्भ में डॉ. रामकुमार वर्मा का मत इस प्रकार है, “उनकी काव्यानुभूति इतनी उत्कट थी कि वे सफलता से महाकवि कहे जा सकते हैं।” उन्होंने बिना किसी लाग लपेट, आडंबर और कृत्रिमता के जन-जीवन संबंधी अनुभूतियों को सरल और सीधे ढंग से अभिव्यक्त किया है। कबीर के काव्य

में यथेष्ट सरसता, द्रवणशीलता और मार्मिकता है। जहाँ उन्होंने विरहिणी आत्मा के स्पंदन, हास और रूदन, मिलन और बिछड़न के चित्र प्रस्तुत किए हैं। यहाँ पर उनके संत, साधक, कवि, भक्त, सुधारक और नेता समस्त रूप एक हो गए हैं। कबीर की सौंदर्यपूर्ण काव्य पंक्तियाँ प्रस्तुत है,

“नैनो अंदर आव तू नैन झाँपि तोही लेऊँ।
ना मैं देखू और को ना तोहि देखन देऊँ॥”

“सपुने में साई मिले, सोबत लिया जगाय।
आँख न खोलूँ डरपता मति सपना हो जाय।”

भाषा :

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कबीर को ‘वाणी के डिक्टेटर’ कहा है। कबीर के भाषा के संदर्भ में लिखते हैं, “भाषा पर कबीर का जबर्दस्त अधिकार था। जिस बात को उन्होंने जिस रूप में प्रकट करना चाहा, उसे उसी रूप में भाषा से कह दिया, बन गया तो सीधे-सीधे नहीं तो दरेरा देकर। भाषा कुछ लाचार सी कबीर के सामने नजर आती है।” कबीर स्वभाव से घुम्मक्कड थे। परिणामतः उनकी भाषा में ब्रज, अवधी, राजस्थानी, पंजाबी आदि विविध बोलियों का मिश्रण है। इसलिए इनकी भाषा को ‘खिचड़ी या सधुक्कडीम’ कहा गया है। इसे पंचमेल खिचड़ी भी कहा गया है।

शैली :

कबीर अपनी शैली के स्वयं निर्माता है। उनका समस्त काव्य साहित्य मुक्तक शैली में है। उनके व्यक्तित्व का मस्त मौलापन, अक्खडपन और मोजीपन उनकी शैली में अवतरित हो गया है। अतः कबीर की शैली मुक्तक शैली है। इस शैली में अभिव्यक्ति के सभी गुण विद्यमान हैं। उन्होंने मुक्तक शैली के माध्यम से समाज में फैली विषमता, जाति-पाँति, सामाजिक आडंबर, धर्मांधता आदि बातों पर प्रहार किया है।

अलंकार :

कबीर अशिक्षित थे फिर भी काव्य में उन्होंने भारी मात्रा में अलंकारों का प्रयोग किया है। उन्हें भावों को सहज में चमत्कृत कर देनेवाले अलंकारों का भी ज्ञान था। उनके काव्य में रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा, प्रतिवस्तुपमा, यमक, अनुप्रास, मालोपमा, विरोधाभास, निदर्शना, दृष्टांत, अर्थांतरन्यास तथा पर्यायोक्ति आदि अलंकारों का सुंदर प्रयोग है। रूपक अलंकार का अधिक प्रयोग हुआ है। एक उदाहरण प्रस्तुत है,

“नैनो की करि कोठरी, पुतली पलंग बिछाई।
पलकों की चिक डारि के पिय को लिया रिझाई।”

प्रतीक, छंद :

कबीर काव्यशास्त्र, छंदशास्त्र, भाषाशास्त्र, आदि के ज्ञानी नहीं थे परंतु उनके काव्य में प्रतीक-छंद

का अनुपम संगम हुआ है। प्रतीक योजना कबीर के काव्य की सबसे बड़ी ताकत है। उन्होंने दार्शनिक विचारों की अभिव्यक्ति प्रतिकों के माध्यम से की है। कबीर के काव्य में दोहा, सोरठा, रमैनी आदि छंदों का प्रयोग हुआ है। दोहा और सोरठा उनके अधिक प्रिय छंद हैं।

अतः हम कह सकते हैं कि संत कबीर निर्गुण भक्तिधारा के प्रमुख हस्ताक्षर हैं। वे भक्तिकाल के प्रमुख एवं युगद्रष्टा कवि थे। कबीर साहित्य और धर्म के क्षेत्र में एक नवीन क्रांति के जनक थे। कबीर का व्यक्तित्व एवं कृतित्व हिंदी साहित्य और समाज के लिए अनमोल रत्न है।

3.3.3 प्रेमाश्रयी शाखा की विशेषताएँ :

हिंदी साहित्य की निर्गुण भक्ति काव्य धारा की दूसरी शाखा प्रेमाश्रयी सूफी कवियों की है। जिन्होंने प्रेम गाथाओं के द्वारा एक ऐसे 'प्रेम' के तत्त्व का वर्णन किया जो ईश्वर से मिलाने वाला है। यह प्रेम लोक से अलौकिक प्रेम की ओर उन्मुख होता है। इसमें साधक, बाह्य संसार को भूल कर अपने प्रियतम के रूप में खो जाता है और उसे पाने के लिए नाना प्रकार के प्रयत्न करता है। सूफी काव्य भावपक्ष एवं कलापक्ष, दोनों ही दृष्टियों से अत्यंत सबल है। सूफी काव्य से जुड़े कवियों ने सूफी मत के प्रचार-प्रसार के लिए हिंदू घरों में प्रचलित प्रेम-कहानियों को अपना काव्य-विषय बनाया। सूफी कवि अपनी साहित्यिक साधना से लोकरंजन और लोकमंगल की आवश्यकता की एक साथ पूर्ति करते हैं। इसी कारण उनका साहित्यिक महत्व संत काव्य से भी अधिक माना गया है। इसी साहित्यिक महत्व के आधार पर सूफी काव्य की कुछ महत्वपूर्ण विशेषताएँ निम्नलिखित है-

1) प्रेम का महत्व :

इस काव्य परंपरा के कवियों के संपूर्ण चित्रण का केंद्र 'प्रेम' है। इनकी प्रेम-भावना शृंगारिकता का स्पर्श करती हुई भी उसे लौकिक से अलौकिक बना देती है। इनकी प्रेम भावना संघर्ष एवं साहस से अनुप्राणित है, जो सामाजिक मर्यादा को तथा परंपरा को विशेष महत्व नहीं देती। प्रेमाख्यान काव्यों के नायक, नायिका को प्राप्त करने के लिए सभी बाधाओं को पार कर जाते हैं। साधनात्मक दृष्टि से भी सूफी-काव्य में वैराग्य की अपेक्षा प्रेम का महत्व अधिक है। लौकिक प्रेम (इश्क-मिजाजी) से अलौकिक प्रेम (इश्क-हकीकी) की ओर अग्रसर होने का वर्णन, इन सूफी-काव्यों की प्रेम-भावना पर देशी एवं विदेशी दोनों ही प्रभाव हैं। सूफी काव्य की विशेषता यह है कि साधक स्वयं को प्रेमी तथा परमात्मा को प्रियतमा समझता है। इनका प्रेम कभी-कभी वासना एवं कामुकता का आवेग बन जाता है। यह वासना आगे चलकर निखर जाती है और विशुद्ध प्रेम का रूप ले लेती है।

2) विरह-भावना की प्रधानता :

सूफी काव्यों का प्रेम विरह-प्रधान है। प्रेमी साधक परमात्मा के वियोग में तड़पता है। भारतीय निर्गुण काव्य-साधकों के अनुरूप ही सूफी कवि भी आत्मा की परमात्मा के प्रति मिलनोत्कण्ठा का वर्णन करते हैं। जायसी के 'पद्मावतम से एक वर्णन देखिए -

यह तन जारों छार कै, कहों की 'पवन उड़ाव'।
मकु तेही मारग उड़ि परै, कत धेरै जहाँ पाव ॥

3) इतिहास एवं कल्पना का समन्वय :

सूफी काव्य या प्रेमाख्यान परंपरा का प्रारंभ 'ब्रह्मकथा' एवं 'कथासरित्सागर' से हुआ। पुराणों तथा इतिहास के पात्रों से युक्त यह प्रेमाख्यान मूल रूप से ऐतिहासिक नहीं हैं। इतिहास के साथ इनमें कल्पना का भी मनोहर सामंजस्य है। इन कवियों ने कथानक को गति देने तथा उसे लोकप्रिय बनाने के लिए परंपरा से प्राप्त भारतीय कथानकों की रूढ़ियों का प्रयोग किया है जैसे चित्रदर्शन, स्वप्न-दर्शन, शुक-सारिका संवाद, मंदिर या उद्यान में नायक-नायिका का मिलन, युद्ध, संघर्ष, रूढ़ियों आदि सभी सूफी कवियों की रचनाओं में मिलती हैं।

4) गुरु का महत्त्व :

निर्गुण काव्य-धारा के कबीर एवं अन्य कवियों की भाँति सूफी कवि भी गुरु के सर्वोपरि तथा ईश्वर-प्राप्ति का साधन मानते हैं। जायसी गुरु को मार्गदर्शक स्वीकार करते हुए कहते हैं-

गुरु सुवा जेहि पंथ देखावा।
बिन गुरु जगत को निरगुन पावा॥

सूफी साधक गुरु के निर्देश से प्राप्त सात्त्विक ज्ञान के प्रकाश में मोक्ष के पथ को पाता है अन्यत्र जायसी लिखते हैं-

सैयद अशरम पीर पियारा, जेहि मोहि पन्थ दीन्ह उजियारा।
लेसा हिए प्रेम कर दीया, उठी जोति भा निरमल हीया॥

पद्मावत में (मालिक मोहम्मद) जायसी के प्रिय गुरु (पीर) मानते थे जिन्होंने उन्हें ज्ञान का मार्ग दिखाकर उनके जीवन में प्रकाश डाला।

5) रहस्यवाद :

सूफी कवियों का रहस्यवाद 'भावनात्मक रहस्यवाद' है। इन सूफी कवियों को 'प्रेम की पीर' का कवि कहा गया। इन कवियों ने 'रहस्यात्मकता के माधुर्य भाव' का प्रचार किया, जिसका प्रभाव कबीर एवं कृष्ण भक्ति परंपरा पर स्पष्ट दिखाई देता है। भारतवर्ष में जब सूफी आए तो, उन्हें साधनात्मक रहस्यवाद, हठयोग, तंत्र, रसायन आदि का जाल मिला था। मूलतः हठयोग की अनेक बातों का समावेश सूफियों के रहस्यवाद में मिलता है। सूफियों के रहस्यवाद में प्रेम एवं भावना की गहराई है और साधना की शक्ति है। रमणीय और सुंदर अद्वैती रहस्यवाद के दर्शन पद्मावत में होते हैं। वस्तुतः भावात्मक रहस्यवाद सुफियों का ही लाया हुआ है। सूफी कवि अपने प्रियतम को प्रकृति के विभिन्न रूप में देखते हैं। सूफी रहस्यवाद की विशेषता यही है कि

इसमें संत-कवियों की रहस्य-भावना जैसी शुष्कता एवं निरसता नहीं हैं। सूफी-कवि वेदांत दर्शन की भाँति जगत् को मिथ्या भी नहीं मानते। वह तो प्रेम गाथाओं में अव्यक्त सत्ता को व्यक्त करते हैं।

6) शैतान की कल्पना :

शैतान की अवधारणा सूफी-कवियों की मौलिक देन है। यह शैतान भारतीय दर्शन की 'माया' ही है जो आत्मा-परमात्मा के मिलन में अवरोध उत्पन्न करती है। सूफी-काव्य का शैतान भी खुदा एवं बंदे के मिलन में सबसे बड़ी बाधा है। एक साधक पीर या गुरु की कृपा से शैतान के पंजे से मुक्त हो सकता है। पद्मावत काव्य में राघव चेतन शैतान का प्रतीक है। यहाँ यह स्मरणीय है कि निर्गुण-संत कवि माया की निंदा करते हैं। लेकिन सूफी कवि शैतान को त्यागने योग्य नहीं मानते क्योंकि, शैतान द्वारा उपस्थित किए गए व्यवधानों से साधक के प्रेम के गांभीर्य की परीक्षा होती है तथा उसके प्रेम में उज्ज्वलता और दृढ़ता आती है।

7) प्रबंध-कल्पना :

सूफी परंपरा के काव्य प्रबंधात्मक शैली में रचित हैं। इनमें कथात्मक तत्वों की प्रचुरता है। लौकिक प्रेम कहानियों के माध्यम से अलौकिक प्रेम की अभिव्यंजना के लिए इन कवियों ने प्रबंध काव्यों की रचना की है। सूफी प्रबंधकाव्य भारतीय काव्यशास्त्र के नियमों-आदर्शों की राह से अलग हैं। इन कवियों ने परंपरा से प्राप्त भारतीय कथानकों में रुढ़ियों का खूब उपयोग किया है। सूफी कवियों ने उदयन, विक्रम रत्नसेन ऐतिहासिक एवं अर्ध ऐतिहासिक पात्रों की गाथाएँ ली है। परंपरागत पौराणिक आख्यानों में नल- दमयंती का आख्यान सूफी कवियों को बहुत प्रिय है। ये कवि लौकिक एवं आलौकिक प्रेम-कथाओं को लेकर उनके माध्यम से जीव एवं ब्रह्म के प्रेम की रहस्यात्मक अभिव्यक्ति करते हैं।

सूफी कवियों की शैली मसनवी है। मसनवी शैली में इन कवियों ने भारतीय प्रेम कथाओं को स्वर दिया है। दोहा, चौपाई, झूलना एवं कुण्डलिया इन कवियों द्वारा प्रयुक्त प्रमुख छंद हैं।

8) रस :

रस की दृष्टि से प्रेमाख्यानों में शृंगार की अभिव्यक्ति सर्वाधिक है। प्रेमाख्यानों की रसाभिव्यंजना साहस एवं संघर्ष से अनुप्रमाणित हैं। रस की दृष्टि से इस काव्य की एक विशेषता यह भी है कि इसमें प्रेम को जीवन का सर्वोपरि तत्व मानते हुए त्याग से उदात्त प्रेम का ही प्रतिपादन है। सौंदर्य वर्णन में नायिका के नख-शिख, हाव-भाव के अतिरिक्त उनके अन्य गुणों को महत्व दिया गया है। इन काव्यों की नायिकाएँ रूपवती होने के साथ-साथ बुद्धिमति भी हैं। सूफी - काव्य के नायकों की प्रेम भावना स्थूल कामुकता से ऊपर उठकर साहस, शौर्य, संयम एवं त्याग से अनुप्राणित हैं। अतः इनकी शृंगारिक भावनाओं में उदात्तता का समावेश है। सूफी काव्य में वीर रस भी शृंगार रस का सहायक बन कर ही आया है।

9) चरित्र-चित्रण :

प्रेमाख्यानों का सर्जन सूफी कवियों ने भी भारतीय परंपरा के अनुरूप ही किया है। इन काव्यों का नायक

राजकुमार धैर्यशाली, साहसी, परोपकारी, प्रेमी एवं त्यागशील होता है तथा नायिका रूपगर्विता तथा बुद्धिमानी हैं। नायिका में नायक की अपेक्षा अधिक धैर्य की मात्रा पाई जाती है। इन काव्यों के नायिकाएँ नृत्य-कला एवं संगीत-कला में भी निपुण हैं। नायिका के इन गुणों पर रीझकर ही नायक उन पर सर्वस्व अर्पित करने को आतुर रहता है। नायक-नायिका दोनों प्रेम की कठिन साधना को प्राण देकर भी पूर्ण करना चाहते हैं।

10) भारतीयता का समावेश :

इन कवियों की प्रेम गाथाओं में भारतीय और फ़ारसी कथा-तत्त्वों का अद्भुत सामंजस्य मिलता है। इन्होंने इस्लाम धर्म और हिंदू धर्म का सामंजस्य करके कथानक का निर्माण किया। इनकी रचनाओं में फ़ारसी रहस्यवाद का भारतीय अद्वैतवाद से मेल मिलता है। प्रकृति की समस्त सत्ता में इन्हें ईश्वरीय तत्त्व की उपस्थिति दिखाई देती है। सूफी काव्यों में परमात्मा को प्रियतमा मानना सूफी यों की खोज है। ये कवि 'हुस्ने बुतां के इश्क में खुदा का नूरम देखते थे।' जायसी कहते हैं -

नवो खण्ड नव पौरी औ तहं बज़ केवार।
चारि बसेरे सों चढ़े, सत सों उतरे पार।

यहाँ हठयोग के अनुसार शरीर में आँख, कान, नाक आदि नौ द्वार हैं। दसम द्वार ब्रह्मरंध्र है। शरीर, तरीकत, मारिफ़त और हकीकत ये चार बसेरे हैं। सूफी काव्य में नायक-नायिका भी भारतीय मान्यतानुसार उदात्त चरित्र से युक्त हैं। भारतीय रीति-रिवाजों तथा पतिव्रत धर्म का निर्वाह भी भारतीयता के अनुरूप ही है।

11) तप का महत्त्व :

सूफी प्रेम-साधना में तप के कष्ट को प्रेम का प्रमुख सोपान माना गया है। यहाँ नायक का अनेक कष्ट सहना, उसके धैर्य की परीक्षा, संघर्ष, युद्ध आदि एक प्रकार की तपस्या ही है। पद्मावत में पार्वती रत्नसेन की परीक्षा लेती हैं, तथा अंत में कहती हैं कि यह परीक्षा में तपा हुआ शुद्ध सोना है और प्रेम की आग में तप चुका है -

“निहचय यह प्रेमानल दहा।
कसे कसौटी कंचन लहा।”

जायसी कहते हैं कि, जो इस कसौटी पर खरा नहीं उतरता वह रह जाता है। रत्नसेन का घर छोड़ना जोगी बनना और कष्ट सहना कसौटी पर घिस जाने के समान है।

12) विरह-वर्णन :

सूफी काव्य का प्रधान विषय प्रेम है। जिसके अंतर्गत कवियों ने संयोग का कम, विरह का अधिक चित्रण किया है। सूफी काव्यों का प्रेम विरह प्रधान है। वस्तुतः यहाँ विरह-दशा ही वह मनोभूमि है, जो चित्त की समाधि या प्रिय के प्रति निष्ठा लाती है। इन कवियों ने विरह-वर्णन के अंतर्गत ऋतु-वर्णन, बारहमासा आदि

का विशेष वर्णन किया है। पर कभी-कभी यह विरह वर्णन अतिरंजित एवं वायवीय हो गया है। जैसे विरह के ताप से सूर्य का लाल हो जाना, गेहूँ का पेट फट जाना, कौए का काला पड़ जाना, आँखों से आँसू की जगह खून निकलना आदि। इससे कहीं-कहीं विरह-वर्णन बीभत्स हो जाता है। पद्मावत में नागमती का विरह-वर्णन हिंदी साहित्य की अमूल्य निधि है।

13) धार्मिक एकता और सांस्कृतिक समन्वय :

सूफी-काव्य परंपरा के पूर्व संतों ने भक्ति मार्ग की प्रतिष्ठा कर दी थी। धार्मिक एकता और सांस्कृतिक समन्वय श्रीगणेश कर दिया था। परंतु उन्हें अपने उद्देश्य में सफलता नहीं मिली थी। प्रेमाख्यान परंपरा के कवियों ने किसी संप्रदाय या मतवाद का खंडन नहीं किया। इनकी पद्धति ही मनोवैज्ञानिक थी। शुक्ल जी लिखते हैं, “प्रेम स्वरूप ईश्वर को सामने लाकर सूफी कवियों ने हिंदू-मुसलमान दोनों को मनुष्य के सामान्य रूप में दिखाया और भेदभाव के दृश्यों को हटा कर पीछे कर दिया।” इनकी रचनाओं में इस्लाम की तरफ झुकाव या इस्लाम के प्रचार का कोई संकेत तक नहीं मिलता। इस काव्य परंपरा में कोई सांप्रदायिक आग्रह नहीं है। शुक्ल जी कहते हैं, “कुछ भावुक मुसलमान प्रेम की पीरम की कहानियों को लेकर साहित्य क्षेत्र में उतरे। ये कहानियाँ हिंदुओं के घर की ही थीं। इनकी मधुरता और कोमलता का अनुभव करके उन कवियों ने दिखला दिया कि एक ही गुप्त तार मनुष्य मात्र के हृदयों से होता हुआ गया है जिसे छूते ही मनुष्य के सारे बाहरी रंग-रूप के भेदों की ओर से ध्यान हट एकत्व का अनुभव करने लगता है। जायसी के काव्य में धार्मिक एकता का स्वर अत्यंत मुखर है। केवल एक मुसलमान कवि या सूफी संत नहीं थे, बल्कि वे एक ऐसे दृष्ट थे जिन्होंने हिंदू और मुस्लीम संस्कृतियों के बीच की गहरी खाई को चाटने का प्रयास किया।

14) लोकजागरण :

भक्ति आंदोलन की लोकजागरणवादी भूमिका के निर्माण में सूफी संतों का महत्त्व अविस्मरणीय है। इन कवियों ने जाति-पाँति एवं संप्रदाय की दीवारों की हद को तोड़ा तथा मनुष्यता का नया दर्शन प्रस्तावित किया। इन सूफी संतों का आम जनता ने मुक्त हृदय से स्वागत किया। यही कारण है कि इन्हें भी संत कहाँ गया। कबीर एवं जायसी की परंपरा के सूफी यों ने एक साझी लोक-संस्कृति का निर्माण किया, बताया कि संत सिर्फ हिंदू ही नहीं, मुसलमान भी हो सकते हैं।

15) लोकभाषा :

प्रेमाख्यानों की भाषा प्रायः अवधी व राजस्थानी है। भाषा में अरबी-फारसी के शब्दों का बाहुल्य मिलता है। पूर्वी प्रांत के सभी सूफी कवियों की भाषा अवधी है, जिसका ठेठ देसी रूप जायसी के पद्मावत में मिलता है। अतः पद्मावत ग्रंथ अवधी भाषा में लिखा है। उनकी कविता में पहली बार हिंदी भाषा सहज काव्य प्रवाह में बहने लगती है। दाऊद एवं कुतुबन की रचनाओं से तुलना करने पर लगता है कि अवधी भाषा काव्य-प्रवाह में कुछ रोड़े अटका रही है, पर जायसी की भाषा बिल्कुल आम जनता की भाषा हो जाती है। इन काव्यों

की शैली के संबंध में निश्चित रूप से कुछ कहना कठिन है क्योंकि जहाँ जायसी की शैली में गंभीरता एवं प्रौढ़ता है, वहीं अन्य कवियों में अपरिपक्वता एवं अशक्तता के दर्शन भी होते हैं।

16) प्रकृति-चित्रण :

सूफियों का प्रेम-स्वरूप आलंबन ईश्वर प्रकृति के कण-कण में व्याप्त है। प्रकृति इनके लिए स्पृहणीय एवं आकर्षणपूर्ण है। 'रवि शशि नखत दीपहीं ओही जोती, ईश्वरीय ज्योति के कारण ही सब कुछ प्रकाशमान है। सूफियों के यहाँ प्रेमियों के विरह में प्रकृति भी समान रूप से दुःख महसूस करती है। वह उनके विरह ताप को कम करने की कोशिश करती है।

निष्कर्ष :

निष्कर्ष रूप से देखा जाए तो सूफी-साधक एवं कवि कोमल अनुभूतियों से परिपूर्ण थे। उनकी प्रत्येक चेष्टा समन्वयात्मक है। सूफी रचनाएँ लोकरंजक एवं लोकमंगलकारी हैं। इनके द्वारा जातिगत, धर्मगत एवं वर्गगत द्वेष को मिटाने का सरस प्रयास किया गया है। ऐतिहासिक एवं काल्पनिक प्रेम कथाओं की अपेक्षा लोकगाथाओं पर आधृत प्रेम कथाओं में लोकतत्त्व की मात्रा अधिक है। भारतीय दर्शन के साथ तो वह ऐसी एकरूप हो गई है, कि उसको पृथक् से समझना कठिन है। ये कवि मानवतावादी हैं। प्रेम को व्यापक स्वरूप प्रदान कर इन कवियों ने त्याग की भारतीय मर्यादाओं का पालन किया है। निष्कर्षतः सूफी-काव्य प्रेम की सच्ची साधना है।

3.3.4 जायसी : व्यक्तित्व एवं कृतित्व।

मलिक मोहम्मद जायसी प्रेमाश्रयी शाखा के प्रमुख कवि हैं। इन्हें सूफी काव्यधारा के सबसे सफल कवि भी कहा जाता है। 'पद्मावत' उनकी सबसे महानतम् कृति है। 'पद्मावत' का स्थान हिंदी के सर्वश्रेष्ठ महाकाव्यों में है। जायसी के काव्य में सूफी काव्य की सभी विशेषताएँ मिलती हैं। जायसी को प्रेम 'प्रेम पीर' के प्रचारक भी कहा जाता है।

जीवनवृत्त :

जायसी के जन्मतिथि के संदर्भ में निश्चित रूप से कहना कठिन है। भक्तिकालीन अन्य कवियों के समान जायसी का जीवनवृत्त भी अंधःकारमय है। अनुमान के आधार पर इस विषय के संदर्भ में कुछ कहा जा सकता है। जायसी ने अपनी रचना 'आखरी कलाम' में लिखा है,

“भौ अवतार और नौ सदी।
तीस बस ऊपर कवि वदी।”

अर्थात् जायसी नवी सदी (900) हिजरी में जन्मे थे। तीस वर्ष की आवस्था में उन्होंने 'आखरी कलाम' लिखना आरंभ किया। जायसी ने 'पद्मावत' में शासक शेरशाह सूरी का उल्लेख किया है। इससे यह निश्चित होता है कि जायसी शेरशाह के समकालीन थे।

जन्म :

‘जायस नगर मोर अस्थानू’ के अनुसार मलिक महमद जायसी का जन्म 900 हिजरी को रायबरेली में जायसनगर में हुआ। जायस नगर में जन्म होने के कारण ही इन्हें जायसी कहा गया। जायसी ने अपनी रचनाओं में अन्य किसी स्थान का उल्लेख नहीं किया है।

डॉ. सुधाकर द्विवेदी तथा आचार्य ग्रियर्सन ने निम्नांकित पंक्तियों के आधार पर जायसी का जन्मस्थान जायस माना है,

“जायस नगर मोर अस्थानू,
तहां आइ कवि कीन्ह बखानू ।
तथा
तहा दिवस दस पाहुने आएऊँ

इन्होंने अनुमान लगाया है कि जायसी किसी दूसरे स्थान से आकर यहाँ पर बसे थे, किंतु आचार्य शुक्ल का कहना है कि ये जायस नगर के ही निवासी थे। जायसी ने अपनी रचनाओं में अन्य किसी स्थान का उल्लेख नहीं किया है। उनकी रचनाओं और शोध के आधार पर स. 1549 जन्म माना है। मृत्यु लगभग सदी 949 हिजरी मानते हैं। मृत्यु अमेठी के पास जंगल में स. 1599 में हुई थी।

गुरु :

‘सय्यद अशरफ’ जायसी के गुरु थे। अपने गुरु के बारे में स्वयं जायसी ने लिखा है,

“सय्यद अशरफ पीर हमारा ।
जेहि-मोहि पंथ वीन्ह उजियारा॥

माता-पिता :

जायसी के पिता का नाम मलिक शेख ममरेज या मलिक राजे अशरफ था। सर्व सहमति से मलिक शेख ममरेज को ही जायसी के पिता के रूप में स्वीकार किया गया था। जायसी जब छोटे थे तभी उनके माता-पिता का देहांत हो गया था। माता-पिता की मृत्यु के कारण उनका बचपन साधुओं और फकिरों के संगति में गुजरा। प्राप्त किंवदंतियों के अनुसार उनका विवाह भी हुआ था।

व्यक्तित्व :

जायसी बचपन से अनाथ थे। बचपन में माता-पिता की मृत्यु होने के कारण ये साधुओं और फकिरों की संगति में रहते थे। माना जाता है कि जायसी दिखने में बहुत कुरूप थे। उन्हें एक आँख और एक कान नहीं थी। जहाँ ईश्वर ने उन्हें कुरूप बनाया था वहीं दूसरी ओर मधुर कंठ दिया था। वे अपनी रचनाएँ गाकर सुनाते थे। जायसी कबीर की तरह बहुश्रुत थे। भ्रमण और सत्संग के आधार पर उन्होंने विविध विषयों का गहरा ज्ञान

प्राप्त किया था। उनकी शिक्षा अनियमित थी। वे अत्यंत होशियार और होनहार थे। उन्होंने आँखों से देखकर सुनकर विविध विषयों का ज्ञान प्राप्त किया था। उन्हें भाषाओं का इतिहास, राजनीति आदि विषयों का अच्छा ज्ञान था। हिंदू, ईस्लाम आदि धर्मों की जीवन शैली, रीति-रिवाज आदि बातों का परिपूर्ण ज्ञान था। जायसी सूफी मत के फकीर कवि थे। वे स्वभाव से सरल, उदार एवं मुलायम प्रकृति के व्यक्ति थे। जायसी के गुण विशेषताओं के संदर्भ में डॉ. जयदेव लिखते हैं, “मलिक साहब बड़े सत-चरित्र, कर्तव्यनिष्ठ गुरुभक्त थे। इनकी सरलता, सन्तुष्टता, अनुभवशीलता एवं विलक्षणता इनके काव्य में पूर्ण रूप में प्रकट होती है।”

साहित्य समीक्षा :

जायसी द्वारा रचित ग्रंथों की संख्या को लेकर विद्वानों में मतभिन्नता है। नवनवीन अनुसंधानों के बाद उनके ग्रंथों की संख्या 24 स्वीकार की गयी है। इनमें से पांच ग्रंथ प्रकाशित हुए हैं। ‘पद्मावत’, ‘अखरावट’, ‘आखिरी कलाम’, ‘महरी बाइसी’, ‘चित्रलेखा’ आदि। ‘पद्मावत’ उनकी सर्वश्रेष्ठ रचना मानी जाती है। ‘आखिरी कलाम’ और ‘अखरावट’ का सांप्रदायिक दृष्टि से महत्त्व है, साहित्यिक दृष्टि से कुछ महत्त्व नहीं। ‘आखिरी कलाम’ में सृष्टि के अंत तथा मुहम्मद साहब के महत्त्व का वर्णन है। इसमें बताया गया है कि सृष्टि के अंत में क्या अवस्था होती है तथा उस समय जिब्राईल आदि फरिश्ते क्या करते हैं। यह एक सूफी सिद्धांतों का ग्रंथ है। ‘अखरावट’ में ईश्वर, जीव, ब्रह्मा, सृष्टि निर्माण, गुरु तथा धर्माचार आदि की सैद्धांतिक विवेचना की गयी है। प्राप्त इन सभी रचनाओं में ‘पद्मावत’ उनकी सर्वश्रेष्ठ रचना है।

‘पद्मावत’ :

‘पद्मावत’ सूफी काव्य परंपरा एवं जायसी का सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ है। इसे हिंदी साहित्य का अनमोल रत्न भी कहा जाता है। इसमें राजा रत्नसेन और पद्मावती की लौकिक प्रेम कहानी के द्वारा अलौकिक प्रेम की अभिव्यंजना की गयी है। जायसी ने पद्मावत में लोक-प्रचलित कथा में ऐतिहासिकता का भी सुंदर समन्वय कर दिया है। ‘पद्मावत’ की खास विशेषता यह है कि इसमें प्रेम की साधना और सिद्धि दोनों अवस्थाओं का चित्रण किया गया है। सहिष्णुता, समन्वयात्मकता और संग्राहक बुद्धि का उदय उस युग की एक खास विशेषता है। इस ग्रंथ के बीच-बीच में रहस्यवाद की सुंदर सृष्टि हुई है। इस ग्रंथ का सांस्कृतिक तथा साहित्यिक दृष्टि से महत्त्व है। इसमें सिर्फ प्रेमवर्णन ही नहीं लोकपक्ष भी है।

लोकपक्ष :

कबीर की भर्त्सनामयी वाणी का प्रभाव पंडितों और मुल्लाओं पर तो नहीं पड़ा किंतु साधारण जनता राम और रहिम की एकता मानने लगी थी। मुसलमान हिंदुओं की राम कहानी सुनने के लिए लालायित हो उठे थे। अतः ‘पद्मावत’ उस युग की साधना ही सिद्ध हुई और उसके प्रतिनिधि हुए जायसी। उनका यह उद्घोष चारों ओर गुँज उठा,

“बिरछि एक लागी हुई डारा, एकहि ते नाना प्रकारा।”

“माता के रक्त पिता के बिंदू, उपनै दुवौ तुरक और हिंदू।”

कबीर के समान जायसी भी जन-जीवन के अधिक निकट पहुँचे थे। जायसी ने जहाँ हिंदू घराने की लौकिक प्रेम कहानी के माध्यम से अलौकिक प्रेम कहानी की अभिव्यंजना की वहाँ हिंदू मुस्लिम संस्कृतियों का भी समन्वय किया। उन्होंने हिंदू पात्रों में हिंदू आदर्शों की प्रतिष्ठा दी है। पात्रों का चरित्र-चित्रण हिंदू जीवन से साम्य रखता है। जायसी ने प्रेम की अत्यंत मनोवैज्ञानिक पद्धति के द्वारा बड़ी कोमलता और काव्यमयता के साथ हिंदू-मुस्लिम हृदयों के अजनबीपन को मिटाया।

रहस्यवाद :

जायसी में सूफी रहस्यवाद पूर्ण रूप में पाया जाता है। किंतु वे भारत के कवि थे, उनके रहस्यवाद पर अद्वैतवाद का भी यथेष्ट प्रभाव है। जायसी ने भी अपनी प्रेम कहानी में पद्मावती को परमात्मा और रत्नसेन को आत्मा के रूप में चित्रित किया है। जायसी ने प्रकृति के सभी पदार्थों को ईश्वरीय छाया से उद्भासित कहा है। पद्मावत का प्रेम खंड रहस्यवाद का सुंदर उदाहरण है। रत्नसेन हीरामन तोते के द्वारा पद्मावत के नख-शिख के सौंदर्यमय वर्णन को सुनकर बेहोश हो जाता है। जायसी ने यद्यपि यह दिखाया है कि परमात्मा की ज्योति सर्वत्र व्याप्त है तथापि उन्होंने अपने अंतर को भी परमात्मा के प्रकाश से रहित माना है। उनका यह कथन है कि परमात्मा हृदय में निहित है, केवल उससे साक्षात्कार करानेवाले की आवश्यकता है,

“पिउ हृदय म हैं भेट न होई। को रे मिलाव कहीं केहि रोई॥

जायसी जैसी तीव्र विरह-अनुभूति बहुत कम कवियों में पायी जाती है। उनका विश्वास है कि प्रेम में ही प्रियतम निवास करता है।

“पेमहि माँह विरह सरसा। मेन के घर वधु अमृत बरसा॥

अतः जायसी का रहस्यवाद सूफी रहस्यवाद के अनुकूल है और साथ-साथ उसमें भारतीय अद्वैतवाद की भी झलक है।

पद्मावत का महाकाव्यत्व :

निःसंदेह पद्मावत हिंदी का महाकाव्य है। महाकाव्य के सभी लक्षण पद्मावत में विद्यमान हैं। कथा का पूर्वार्ध लोकप्रचलित और काल्पनिक है तथा उत्तरार्ध ऐतिहासिक। इसका नायक राजकुल से संबंधित है। पूरी कथा 52 सर्गों में विभाजित है। कथावस्तु में वस्तु वर्णन भी अत्यंत सटिक है। इसका प्रधान रस शृंगार है किंतु अन्य रसों का भी समावेश है। इसमें सिर्फ एकांतिक प्रेम कहानी न होकर लोकपक्ष का भी सुंदर समन्वय हुआ है। कथा में स्वाभाविक प्रभाव है। मंगलाचरण, सज्जनप्रशंसा तथा दुर्जन निंदा आदि सभी बातें सम्मिलित हैं।

रस :

पद्मावत का प्रधान रस रसराज शृंगार है। ‘पद्मावत’ में शृंगार के संयोग और वियोग दोनों पक्षों का अच्छा परिपाक हुआ है। संयोग पक्ष की अपेक्षा वियोग पक्ष अधिक प्रभावशाली दिखाई देता है। नागमती के

माध्यम से वर्णित विप्रलम्भ शृंगार इनके अक्षय यश का अलोक स्तम्भ है। जायसी के विरह वर्णन में इतनी व्यापकता, तीव्रता, मार्मिकता और तन्मयता है कि समस्त जगत, जड एवं चेतन उससे द्रविभूत हो जाती है। निम्न काव्य पंक्तियों से जायसी के विरह की व्यापकता का पता चलता है।

“नैनन चली रक्त है धारा, कंथा भीजि भएउ रतनारा।

सूरज बूड़ि उठा हुइ राता, औ मजीठ टेसू बन राता॥

पद्मावत के प्रेम में किसी प्रकार की न्यूनता नहीं है फिर भी नागमती के विरह में एक विशेष तीव्रता और मार्मिकता है। नागमती को पति-वियोग तो था ही साथ-साथ सपत्नी के प्रति ईर्ष्याभाव ने उसे और भी तीव्र बना दिया था। वह विरह में जलकर कोयला हो गयी। उसके शरीर में तोला भर मांस भी नहीं रहा उसमें रक्त तो नाममात्र भी नहीं था। इसका सुंदर वर्णन करते हुए जायसी लिखते हैं,

हाड़ नये सब किगरी, नसै मई सब तांति।

रविं रोंब से धुनि उटे, कहीं विथा केहि भाँति॥

नागमती एक आदर्श हिंदू महिला है। उसमें पति भक्ति पूर्ण रूप से विद्यमान है। उसके प्रेम में ऐंद्रियता की अपेक्षा मानसिक पक्ष की प्रधानता है। उसमें एक महान त्याग है जो उसे बहुत ऊँचा उठाता है,

“मोहि भोग सो काम न बारी, सौंह विस्टि की चाहनि हारी।”

नागमती के विरह वर्णन में बारहमासा का एक विशेष स्थान है। प्रत्येक मास की प्राकृतिक दशा के साथ नागमती के हृदय के शोक और हर्ष की जो अभिव्यंजना की गई है। वह वस्तुतः अनुपम है। नागमती के निम्नांकित शब्दों में कितनी स्वाभाविकता, कितना दैन्य, कितनी उत्कंठा और कितनी प्रेम-निष्ठा है, इसका एक विरह हृदय अनुमान लगा सकता है,

यह तन जारौ छार कै, कहाँ कि पवन उडाय।

मकु तिहि मारग उड़ि परै, कंत घरै जहै पाय।

जायसी को संयोग पक्ष में अधिक सफलता नहीं मिली है। संयोग शृंगार के वर्णन में षट्-ऋतु का वर्णन किया है और उसमें कुछ हास्य विनोद का भी विधान है। समागम के समय के हाव भावों के वर्णन में कहीं तो कोरी छेड़छाड़ है जो फटकार और अश्लीलता की कोटि में पहुँच जाती है।

शृंगार रस के अतिरिक्त अन्य रसों का भी प्रयोग हुआ है। रत्नसेन के सिंहल-गमन, रानियों का विलाप तथा रत्नसेन की मृत्यु के प्रकरणों में करुण रस का अच्छा परिपाक हुआ है। युद्ध वर्णन में वीभत्स का अच्छा उद्रेक है। वीर रस के प्रसंग भी प्रस्तुत हैं। रत्नसेन ने वैराग्य धारण करने पर शांत रस का निर्वाह हुआ है।

‘पद्मावत’ एक घटना प्रधान काव्य है। जायसी ने इसे रसात्मक बनाने के लिए वर्णनात्मक पर अत्यधिक बल दिया है। कहीं-कहीं पर वर्णनात्मकता की वृत्ति इतनी बढी-चढी हुई दिखाई देती है कि पाठक उबने लगता है।

प्रकृति चित्रण :

प्रकृति चित्रण दो प्रकार का होता है – अतः प्रकृति चित्रण और बाह्य प्रकृति-चित्रण। जायसी ने भिन्न-भिन्न प्रकार से प्रकृति का चित्रण किया है। उनकी प्रमुख शैलियों में परिगणन शैली, अतिशयोक्तिपूर्ण शैली, उपमान शैली, और रहस्यात्मक शैली आदि शैलियों का प्रयोग प्रकृति-चित्रण में किया है।

चरित्र चित्रण :

जायसी का चरित्र-चित्रण एकदेशीय है। ‘पद्मावत’ में ‘रामचरितमानस’ जैसी अनेकरूपता नहीं है। तुलसी के राम में जैसे शील, शक्ति और सौंदर्य का समन्वय है, वैसा जायसी में नहीं है। रत्नसेन एक आदर्श प्रेमी है, पद्मावती आदर्श प्रेमिका, नागमती एक आदर्श हिंदू रमणी और गोरा बादल आदर्श वीर है। जायसी ने अन्य सूफी कवियों के समान अपनी कथा को एकांतिक प्रेम कहानी होने से बचा लिया है क्योंकि जायसी ने उसमें लोकपक्ष का भी समावेश कर दिया है। जायसी ने पद्मावत में सात्विक और तामसिक दोनों प्रकार के पात्रों का चित्रण किया है। अल्लाउद्दीन तामसी पात्र है जो कामी और लोभी है। राघवचेतन छली और कृतघ्न है। ‘पद्मावत’ में हिंदू पात्रों का उनकी संस्कृति के अनुरूप बड़ी सहृदयता से चित्रित किया है।

अलंकार :

जायसी ने सादृश्यमूलक अलंकारों का सफल प्रयोग किया है, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा जायसी के प्रिय अलंकार हैं। अनेक स्थलों पर उन्होंने स्वभावोक्ति, अन्योक्ति और रूपकातिशयोक्ति अलंकारों का बहुत सुंदर प्रयोग किया है। इसके अलावा श्लेष, व्यतिरेक, तदगुण, विभावना, संदेह, अनुप्रास तथा निदर्शना आदि अलंकारों का भी सफल प्रयोग किया है। इनके काव्य में उपमानों की इतनी अधिक संख्या है जो शायद ही हिंदी साहित्य के किसी अन्य कवि में मिले।

छंद :

जायसी ने साहित्य में दोहा, चौपाई इन छंदों को अपनाया है और उनका अवधी भाषा में इतना सफल प्रयोग किया है कि वे कदाचित हिंदी की ख्यातनाम रचना ‘रामचरितमानस’ के रचनाकार तुलसीदास को भी पीछे छोड़ गए हैं। इसी कारण ‘पद्मावत’ की शैली को ‘दोहा-चौपाई’ कहा जाता है। छंदों का अवधी भाषा में इतना सफल प्रयोग शायद ही अन्य किसी कवि ने किया हो।

भाषा :

जायसी ने ‘ठेठ अवधी’ की पूर्वीपन के अपनाया है। ‘पद्मावत’ की भाषा ‘ठेठ अवधी’ है। परंतु जायसी की अवधी प्रयोग असंस्कृत है, किंतु भाषा की स्वाभाविकता, सरसता और मनोगत भावों की प्रकाशन सामग्री ने जायसी को अवधी साहित्य क्षेत्र में स्वीकार किया है। जायसी की अवधी में तुलसीदास जैसी साहित्यिकता और पांडित्य नहीं है। जायसी की भाषा प्रसाद और माधुर्य गुण से परिपूर्ण है। जायसी की भाषा में अनेक दोष हैं, फिर भी उन्होंने अवधी को साहित्य क्षेत्र में महत्वपूर्ण स्थान दिलाने का सफल प्रयास किया है।

अतः जायसी के साहित्य में कुछ गुण और दोष पाए जाते हैं फिर भी जायसी को भारतीय साहित्य जगत् एवं संस्कृति में विशिष्ट स्थान प्राप्त है। हिंदू और मुसलमानों में सांस्कृतिक समन्वय स्थापित करने का काम जायसी ने अपने साहित्य के माध्यम से किया है। बाबु गुलाबराय जायसी के संदर्भ में लिखते हैं, “जायसी महान कवि हैं। उनमें कवि के समस्त सहज गुण विद्यमान हैं। उसने सामायिक समस्या के लिए प्रेम की पीर की देन दी। उस पीर को अपनी शक्तिशाली महाकाव्य के द्वारा उपस्थित किया। वह अमर है।” आचार्य रामचंद्र शुक्ल के शब्दों में कहे तो जायसी ने अपनी “आखन देखी” के बात पर जो प्रेम की पीर जगाई वह आज भी भारतीय हृदय को स्पंदित करती है। उनका काव्य भारत की आज्ञा विरासत का सुंदर दस्तावेज है।

3.4 स्वयंअध्ययन के लिए प्रश्न :

प्रश्न 1 : निम्नलिखित वाक्यों में दिए गए पर्यायों में से उचित पर्याय चुनकर वाक्य फिर से लिखिए ।

- ज्ञानाश्रयी शाखा के प्रमुख कवि हैं।
(अ) कबीर (ब) जायसी (क) तुलसीदास (ड) सूरदास
- ‘बीजक’ की प्रामाणिक रचना है।
(अ) जायसी (ब) सूरदास (क) कबीर (ड) तुलसीदास
- संत कबीर की भाषा थी।
(अ) ब्रज (ब) राजस्थानी (क) अवधी (ड) सधुक्कडी (खिचडी)
- संत कबीर का जन्म में हुआ।
(अ) सं. 1955 (ब) सं. 1455 (क) सं. 1655 (ड) सं. 1755
- कबीर का पालन-पोषण ने किया।
(अ) नीरू-नीमा (ब) वीरू तथा भीमा (क) सीमा (ड) धीमा
- कबीर की मृत्यु में हुई।
(अ) वाराणसी (ब) उज्जैन (क) मगहर (ड) काशी
- कबीर के गुरु थे।
(अ) रामानंद (ब) शंकरानंद (क) घनानंद (ड) वल्लभाचार्य
- कबीर के समकालीन थे।
(अ) जहाँगीर (ब) अकबर (क) शहाजहाँ (ड) सिकंदर लोधी
- को ‘वाणी के डिक्टेटर’ कहा जाता है।

- (अ) जायसी (ब) कबीर (क) तुलसी (ड) सूर
10. प्रेमाश्रयी शाखा के प्रमुख कवि हैं।
- (अ) कबीर (ब) घनानंद (क) जायसी (ड) तुलसीदास
11. जायसी का जन्म हिजरी को हुआ।
- (अ) 900 (ब) 1000 (क) 950 (ड) 800
12. जायसी के गुरु का नाम था।
- (अ) सय्यद अशरफ (ब) मुहम्मद (क) अकबर (ड) मुबारक
13. सूफी परंपरा मूलतः देश की है।
- (अ) पाकिस्तान (ब) अफगानिस्तान (क) ईरान (ड) इराक
14. 'पद्मावत' के रचयिता है।
- (अ) जायसी (ब) कबीर (क) सूर (ड) तुलसी
15. 'पद्मावत' में सर्ग है।
- (अ) 55 (ब) 52 (क) 58 (ड) 60
16. 'पद्मावत' का नायक है।
- (अ) रत्नसेन (ब) वीरसेन (क) भीमसेन (ड) तानसेन
17. 'पद्मावत' का प्रधान रस है।
- (अ) वीर (ब) करुण (क) श्रृंगार (ड) रौद्र
18. 'पद्मावत' की भाषा है।
- (अ) राजस्थानी (ब) अवधी (क) ठेठ अवधी (ड) ब्रज
19. नागमती के विरह वर्णन में का विशेष स्थान है।
- (अ) बारामासा (ब) छमासा (क) ग्यारहमासा (ड) पंधरहमासा
20. ज्ञानाश्रयी कवियों ने को प्रधानता दी है।
- (अ) पाश्चात्य विचारों (ब) कल्पना (क) आत्मानुभव (ड) दुःख
21. ज्ञानाश्रयी कवियों ने ज्ञान को माया कहा है।

- (अ) मिथ्या (ब) अपूर्ण (क) पूर्ण (ड) आत्मकेंद्रित
22. कबीर के अनुसार माया को जन्म देती है।
- (अ) प्रेम (ब) ज्ञान (क) कल्पना (ड) वासना
23. ज्ञानाश्रयी कवियों के अनुसार क्षुद्र व्यक्ति में भी का अस्तित्व है।
- (अ) वासना (ब) अहंकार (क) ब्रह्म (ड) अज्ञान
24. सूफी काव्यों का प्रेम..... प्रधान है।
- (अ) विरह (ब) संयोग (क) आत्म (ड) स्वार्थ
25. रस की दृष्टि से प्रेमाख्यानों में की अभिव्यक्ति सर्वाधिक है।
- (अ) वीर (ब) अदभूत (क) श्रृंगार (ड) शांत
26. सूफी परंपरा के काव्य शैली में रचित हैं।
- (अ) वर्णनात्मक (ब) प्रबंधात्मक (क) व्याख्यात्मक (ड) विश्लेषणात्मक
27. पद्मावत ग्रंथ भाषा में लिखा है।
- (अ) खड़ीबोली (ब) ब्रज (क) मगही (ड) ठेठ अवधी

प्रश्न 1 (आ) निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर एक-एक वाक्य में लिखिए।

11. कबीर का जन्मस्थान कौनसा है?
12. कबीर किस शाखा के प्रमुख कवि हैं?
13. कबीर के समय दिल्ली का बादशाह कौन था?
14. प्रेम पीर के प्रचारक कवि किसे कहा जाता है?
15. 'पद्मावत' के रचयिता कौन है?
16. कबीर का पालन पोषण किसने किया?
17. भक्तिकाल का कालखंड कहाँ से कहाँ तक माना गया है?
18. 'निर्गुण भक्तिधारा' के अंतर्गत कौनसी दो शाखाएँ आती हैं?
19. 'कागज मसि छुओ नहीं, कलम गहि नहीं हाथ' यह उक्ति किसकी है?
10. 'पद्मावत' में जायसी ने कौनसे दो छंदों का प्रयोग किया है?

3.5 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ :

- * जुलाहा – कपडे बुननेवाला
- * गायानी – ज्ञानी
- * तत् – तत्त्व
- * आखर – अक्षर
- * द्राविडी – द्रविड प्रदेश से संबंधित (विशेष रूप से आंध्रप्रदेश की तेलगु, तमिलनाडू की तमिल, कर्नाटक की कन्नड से संबंधित)
- * सधुक्कडी – साधुओं की भाषा, जिस भाषा में अलग-अलग भाषाओं का मिश्रण होता है और जो घुमक्कड लोगों द्वारा बोली जाती है तथा सामान्य व्यक्ति जिसे सहजता से समझा है, उसे सधुक्कडी भाषा कहा जाता है।

3.6 स्वयंअध्ययन प्रश्नों के उत्तर :

प्रश्न 1 (अ)

- | | | |
|---------------|-------------------|----------------------|
| (1) कबीर | (2) कबीर | (3) सधुक्कडी (खिचडी) |
| (4) सं. 1455 | (5) नीरू तथा नीमा | (6) मगहर |
| (7) रामानंद | (8) सिकंदर लोधी | (9) कबीर |
| (10) जायसी | (11) 900 | (12) सय्यद अशरफ |
| (13) ईरान | (14) जायसी | (15) 52 |
| (16) रत्नसेन | (17) श्रृंगार | (18) ठेठ अवधी |
| (19) बारामासा | (20) आत्मानुभव | (21) मिथ्या |
| (22) वासना | (23) ब्रह्म | (24) विरह |
| (25) श्रृंगार | (26) प्रबंधात्मक | (27) अवधी |

प्रश्न (आ)

01. कबीर का जन्मस्थान काशी है।
02. कबीर निर्गुण ज्ञानाश्रयी शाखा के प्रमुख कवि है।
03. कबीर के समय दिल्ली का बादशाह सिकंदर लोधी था।

04. प्रेमपीर के प्रचारक कवि जायसी को कहा जाता है।
05. 'पद्मावत' के रचयिता जायसी है।
06. कबीर का पालन-पोषण नीरू तथा नीमा ने किया।
07. भक्तिकाल का कालखंड संवत् 1375 से संवत् 1700 तक माना गया है।
08. निर्गुण भक्तिधारा के अंतर्गत ज्ञानाश्रयी और प्रेमाश्रयी ये दो शाखाएँ आती हैं।
09. 'कागज मसि छुओ नहीं, कलम गहिं नहीं हाथ' यह उक्ति संत कबीर की है।
010. 'पद्मावत' में जायसी ने दोहा और चौपाई इन दो छंदों का प्रयोग किया है।

3.7 सारांश :

1. निर्गुण भक्तिधारा के ज्ञानाश्रयी और प्रेमाश्रयी ये दोन प्रमुख शाखा है।
2. निर्गुण भक्तिधारा में ईश्वर को निर्गुण-निराकार माना है।
3. संत कबीर युगद्रष्टा कवि के रूप में उभरकर आते हैं।
4. 'बीजक' कबीर की प्रामाणिक रचना है।
5. जायसी प्रेमाश्रयी शाखा के प्रवर्तक है।
6. 'पद्मावत' जायसी का प्रसिद्ध महाकाव्य है।
7. जायसी ने सूफी काव्य परंपरा का प्रचार-प्रसार किया है।
8. कबीर तथा जायसी ने लोगों में एकता स्थापित करने का सफल प्रयास किया है।

3.8 स्वाध्याय :

1. ज्ञानाश्रयी और प्रेमाश्रयी शाखा का सामान्य परिचय।
2. कबीर के व्यक्तित्व और कृतित्व पर प्रकाश डालिए।
3. युगद्रष्टा कवि कबीर : समझाइए।
4. जायसी के व्यक्तित्व और कृतित्व का परिचय दीजिए।
5. 'पद्मावत' के महाकाव्यत्व का परिचय दीजिए।

3.9 क्षेत्रीय कार्य :

1. कबीर के समाज सुधार सम्बन्धी दस साखियों का संकलन कीजिए।

2. कबीर और तुकाराम के दस समान विचारोंवाले दोहों-अभंगों को प्राप्त कीजिए।
3. सूफी प्रेम काव्यों की सूची तैयार कीजिए।

3.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए :

1. डॉ. शिवकुमार शर्मा - 'हिंदी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ'
2. आचार्य रामचंद्र शुक्ल - 'हिंदी साहित्य का इतिहास'
3. डॉ. धीरेंद्र वर्मा - 'हिंदी साहित्य का बृहत इतिहास'
4. आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र - 'हिंदी साहित्य का अतीत'
5. डॉ. रमेशचंद्र शर्मा - 'हिंदी साहित्य का समग्र इतिहास'
6. आचार्य रामचंद्र शुक्ल - 'जायसी ग्रंथावली'



सगुण भक्तिधारा और प्रातिनिधिक कवि

अनुक्रम

- 4.1 उद्देश्य
- 4.2 प्रस्तावना
- 4.3 विषय विवेचन
 - 4.3.1 राम भक्तिकाव्यधारा की विशेषताएँ ।
 - 4.3.2 तुलसीदास : व्यक्तित्व और कृतित्व ।
 - 4.3.3 कृष्ण भक्तिकाव्यधारा की विशेषताएँ।
 - 4.3.4 सूरदास : व्यक्तित्व और कृतित्व ।
- 4.4 स्वयंअध्ययन के लिए प्रश्न
- 4.5 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ
- 4.6 स्वयंअध्ययन प्रश्नों के उत्तर
- 4.7 सारांश
- 4.8 स्वाध्याय
- 4.9 क्षेत्रीय कार्य
- 4.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए

4.1 उद्देश्य :

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप,

- ◆ सगुण शाखा की सामान्य विशेषताओं से परिचित होंगे ।
- ◆ भक्तिकाल की सगुण शाखा से परिचित होंगे ।
- ◆ सगुण भक्तिधारा की रामभक्ति शाखा से परिचित होंगे ।
- ◆ रामभक्ति शाखा के प्रमुख गोस्वामी तुलसीदास के व्यक्तित्व से परिचित होंगे ।
- ◆ गोस्वामी तुलसीदास के कृतित्व से परिचित होंगे ।
- ◆ सगुण भक्तिधारा की कृष्णभक्ति शाखा से परिचित होंगे ।
- ◆ कृष्णभक्ति धारा के प्रमुख कवि सूरदास के व्यक्तित्व से परिचित होंगे ।
- ◆ कवि सूरदास के कृतित्व से परिचित होंगे ।

3.2 प्रस्तावना :

भारतीय धर्म साधना में भक्ति की एक सुस्पष्ट एवं सुदीर्घ परंपरा रही है। सामान्यतः ईश्वर के दो रूप माने गये हैं- सगुण एवं निर्गुण। जब परमात्मा को निराकार, अनादि, अगोचर, सर्वव्यापी मानकर उसकी विवेचना की जाती है तब उसे निर्गुण ब्रह्म कहा जाता है और जब वहीं ब्रह्म सगुण-साकार रूप धारण कर नर शरीर ग्रहण कर नाना प्रकार के कृत्य करता है तब उसे सगुण परमात्मा के रूप में जाना जाता है। राम, कृष्ण आदि शरीरधारी परमात्मा के सगुण साकार रूप हैं।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार, “सगुणोपासक भक्त भगवान के सगुण और निर्गुण दोनों रूप ज्ञानमार्गियों के लिए छोड़ देता है।” सगुण भक्ति में जहाँ लीलावतार को आराध्य माना गया है वहीं निर्गुण भक्ति में ब्रह्मज्ञान और योगसाधना को विशेष स्थान दिया गया है। सगुण भक्ति में भगवत् कृपा को विशेष महत्त्व मिला है तो निर्गुण भक्ति ब्रह्मानुभूति पर विशेष बल देती है। सामाजिक उपयोगिता की दृष्टि से सगुण भक्ति को महत्त्वपूर्ण माना जा सकता है। सगुणोपासकों की धारणा है कि भक्त की अनुभूति के लिए, भक्ति के लिए रूपाकार, साकार, मूर्त आधार की आवश्यकता होती है। हिंदी का सगुण संप्रदाय वैष्णव धर्म से पोषण प्राप्त करता है। इस संप्रदाय की दोनों शाखाओं राम-भक्ति धारा और कृष्ण-भक्ति धारा में ईश्वर सगुण है।

सूर सूर तुलसी सशी उडगन केशवदास।

अब के कवि खघोत सत्र, जहाँ तहाँ भरत प्रभास।

यह पंक्ति सूरदास और तुलसीदास की महानता का प्रतीक रेखांकित करती है। जहाँ सूरदास ने भ्रमण

भक्ति के माध्यम से वास्तव्यता और शृंगार का चरम दिखाया (सूर्य की तरह प्रखर) वही तुलसीदास ने रामचरित मानस से समाज को मर्यादित जीवन की चंद्रमा की सौख्य आदर्श दिया।

3.3 विषय विवेचन :

हिंदी साहित्य के इतिहास का द्वितीय चरण भक्ति की प्रवृत्ति से परिपूर्ण रहा है। सर जार्ज ग्रियर्सन ने भक्ति आंदोलन को 'पन्द्रहवीं शती का धार्मिक पुनर्जागरण' कहा है। उनके अनुसार "इस युग में धर्म ज्ञान का नहीं बल्कि भावावेश का विषय हो गया था।" इस कालखंड में भक्तिभाव की प्रधानता रही, साथ ही इस काल के कवियों को भक्त-कवि के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त हुई।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 'धर्म की रसात्मक अनुभूति को भक्ति कहा है।' शुक्ल जी भक्तिभाव का मूल स्रोत दक्षिण भारत को मानते हैं। उनके अनुसार "भक्ति के आंदोलन की जो लहर दक्षिण से आयी उसीने उत्तर भारत की परिस्थिति के अनुरूप हिंदू-मुसलमान दोनों के लिए एक सामान्य भक्ति मार्ग की भावना कुछ लोगों में जगाई।" महाराष्ट्र के प्रसिद्ध संत नामदेव पहले ही इस प्रकार की भक्ति भावना का प्रचार कर रहे थे।

भक्ति का मूल स्रोत दक्षिण भारत रहा है। डॉ. सत्येंद्र के अनुसार भक्ति का उदय द्राविडों में हुआ— "भक्ति द्राविडी ऊपजी लाए रामानंद।" तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों के साथ-साथ धार्मिक परिस्थितियों ने भी भक्ति के प्रसार में योगदान दिया। दक्षिण के आलवार भक्तों ने भक्ति भाव की उच्च स्थिति प्राप्त कर ली थी। आचार्य हजारप्रसाद द्विवेदी ने इन्हीं अलवार भक्तों को ही भक्ति आंदोलन के सूत्रपात का श्रेय दिया है। रामानंद, वल्लभाचार्य जैसे विद्वानों ने अपने सिद्धांतों की स्थापना के द्वारा इस भक्ति भाव एवं अवतारवाद को दृढ़ किया और बाद में सूर-तुलसी ने उसे काव्य रूप प्रदान किया।

सगुणोपासक भक्त कवियों का सारा प्रयत्न इस ओर केंद्रित था कि हिंदू समाज को विघटन और उत्पीड़न से बचाया जाय। इसलिए उन्होंने हिंदू समाज के विभिन्न घटकों को संगठित करने का कार्य किया। उनकी समन्वयवादी विचारधारा के पीछे मूल धारणा यही थी। उत्तर-दक्षिण का भेद समाप्त हो गया और दक्षिण के अनेक आचार्य रामानुज, राघवाचार्य, वल्लभाचार्य जी उत्तर भारत में वृंदावन मथुरा में आकर रहने लगे। इसी प्रकार शैव-वैष्णव का भेद, सगुण-निर्गुण का भेद भी समाप्त होने लगा। तुलसीदास का 'रामचरितमानस' इस दिशा में किया गया सबसे बड़ा प्रयास है।

सगुणोपासक कवियों ने ज्ञान, कर्म और भक्ति में से भक्ति को ही प्रधानता दी। इन कवियों ने ज्ञान की अवहेलना तो नहीं की पर उसे भक्ति जैसा समर्थ भी नहीं बताया। ज्ञान तारक तो है पर वह कष्ट साध्य है। सगुण संप्रदाय की पृष्ठभूमि में भक्ति का समृद्ध साहित्य है। इस साहित्य के प्रमुख आधार ग्रंथ हैं - भगवद्गीता, विष्णु और भागवत पुराण, नारद भक्ति सूत्र और शांडिल्य भक्ति सूत्र। इसके अतिरिक्त दक्षिण के अलवार भक्तों की रचनाएँ भी वैष्णवों की अमूल्य निधि हैं। इन सगुण भक्त कवियों ने एक नवीन भाव क्रांति को जन्म दिया।

4.3.1 राम भक्तिधारा की विशेषताएँ :

सगुण भक्तिधारा में ईश्वर के रूप में राम और कृष्ण माने गये। रामभक्ति के मुख्य प्रवर्तक रामानुजाचार्य और बाद में रामानंद माने जाते हैं। इन्होंने राम के सगुण और निर्गुण दोनों रूपों की उपासना का विधान किया। तुलसी ने दास्यभाव भक्ति की। रामभक्ति शाखा के अनेक कवि हुए, किंतु रामभक्ति काव्य धारा का साहित्यिक महत्व तुलसीदास के महाकाव्य 'रामचरितमानस' के कारण है। उनके ही काव्य की प्रवृत्तियाँ राम काव्य की प्रवृत्तियाँ ही हैं। उनका विवेचन निम्नलिखित है

1. राम का स्वरूप :

रामभक्त कवियों के उपास्यदेव भगवान विष्णु के अवतार श्रीराम हैं। वे परब्रह्म स्वरूप हैं। राम पाप का नाश करने हेतु और धर्मोद्धार के लिए युग में अवतीर्ण होते हैं। राम विष्णु का अवतार हैं और भक्त कवि मानव रूप में उनका साधक हैं। रामभक्ति के अनुरूप श्रीराम में शील, शक्ति और सौंदर्य का समन्वय है। अपनी शक्ति से वे दुष्टों का संहार करते हैं और भक्तों को संकटों से मुक्त करते हैं। इस प्रकार भगवान श्री राम का लोकरक्षक रूप प्रधान है।

व्यापक अकल अनीह अज निर्गुन नाम न रूप।
भगत हेतु नाना बिधि करत चरित्र अनूप॥

2. समन्वयात्मकता :

सगुण भक्तिधारा के राम काव्य का स्वरूप अधिक व्यापक है। राम काव्य में एक विराट समन्वय की भावना है। इसमें न केवल राम की उपासना है बल्कि कृष्ण, शिव, गणेश आदि देवताओं की स्तुति की गई है। यह काव्य हिंदु धर्म के विभिन्न संप्रदायों का समन्वय करने का सफल प्रयास करता है। महाकवि तुलसीदास ने सेतुबंध के अवसर पर श्रीराम द्वारा शिवजी की पूजा करवाई है -

‘शिव द्रोही मम दास कहावा। सोर नर मोहि सपनेहु नहीं भावा॥’

यद्यपि रामभक्ति काव्य में रामभक्ति को श्रेष्ठ माना है। उसकी भक्ति भावना अत्यंत उदार है। राम भक्तों ने भक्ति को सुसाध्य माना है। फिर भी उन्होंने ज्ञान, भक्ति और कर्म के बीच समन्वय स्थापित करने का सुंदर प्रयास किया है। इस काव्य में सगुणवाद तथा निर्गुणवाद में एकरूपता बताई गई है। हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कट्टा है कि “तुलसी का सारा काव्य समन्वय की विराट चेष्टा है।”

3. लोकसंग्रह की भावना :

रामकाव्य लोक कल्याण की भावना की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है। जन साधारण के लिए यह अत्यंत निकट का महसूस होता है। इन्होंने गृहस्थ जीवन की उपेक्षा नहीं की है। राम और सीता के माध्यम से जीवन स्तर को ऊँचा उठाने का प्रयास किया है। राम काव्य का आदर्श पक्ष अत्यंत उच्च है। भगवान श्रीराम आदर्श पुत्र हैं। आदर्श राजा भी हैं। सीता आदर्श पत्नी हैं, कौशल्या आदर्श माता हैं, लक्ष्मण और भरत आदर्श

भाई हैं, हनुमान आदर्श सेवक है और सुग्रीव आदर्श सखा हैं। रामकाव्य में जीवन का मूल्यांकन आचार व्यवहार की कसौटी पर किया गया है। स्वयं भगवान श्रीराम मर्यादा पुरुषोत्तम है। आदर्श की प्रतिष्ठा उनकी अथ और इति है। तुलसीदास ने लिखा है-

दैहिक दैविक भौतिक तापा।

राम राज्य नहीं काहुहि व्यापा।।

1) देहिल ताप 2) दैविक ताप 3) भौतिक ताप आदि रामराज्य में सामना नहीं करता पड़ता। भारतीय दर्शन में इन तीनों को 'को त्रिताप' कहा गया है। तुलसीदास के अनुसार, जब समाज में रामतत्त्व (न्याय, धर्म और मर्यादा) की होत है तो मनुष्य इन तीनों दुखों से मुक्त हो जाता है।

4. भक्ति का स्वरूप :

रामभक्त कवियों ने भक्ति के स्वरूप पर विस्तार से प्रकाश डाला है। इनके अनुसार भगवान राम का चरित्र त्रिलोकातिशायी है। रामभक्त कवि राम के शील, शक्ति और सौंदर्य पर मुग्ध है। यही कारण है कि राम भक्त कवियों ने अपने और राम के बीच सेवक सेव्य भाव को स्वीकार किया है। तुलसीदास के अनुसार-

‘सेवक सेव्य भाव बिनु, भव ने तरिच उरगारि।’

रामभक्त कवियों का भक्ति संबंधी दृष्टिकोण अपेक्षाकृत अधिक उदार है। इन कवियों ने राम भक्ति के साथ-साथ अन्य देवी-देवताओं की भी स्तुति की गई है। रामभक्त कवि ज्ञान और कर्म का अलग-अलग महत्व स्वीकार करते हैं। रामभक्त कवियों की भक्ति में नवधा भक्ति के सभी अंगों का विधान है। ये भक्त कवि विशिष्ट द्वैतवाद से प्रभावित है। इस भक्ति - प्रणाली में जीव भी सत्य है क्योंकि वह ब्रह्मा का अंश है।

5. आदर्श पात्र तथा चरित्र चित्रण :

रामकाव्य के पात्र आचार और लोक मर्यादा का आदर्श प्रस्तुत करते हैं। इनका चरित्र महान एवं अनुकरणीय है। इनमें जीवन की सभी कृतियों का चित्रण किया गया है अतः इनमें सर्वांगिणता है। रामकाव्य में रज, तम और सत तीनों गुणों की अभिव्यक्ति हुई है। राम की रावण पर विजय अर्थात् सत की तम पर विजय है। तुलसी के काव्य में राम नाना रूप में लीला करते हुए पूर्ण ब्रह्म है। महाकवि तुलसीदास के काव्य में राम के नाना रूप में लीला कर रहे हैं। ऐसा चित्रण किया है - निर्गुण संतों में राम ऐतिहासिक न होकर ब्रह्म है, किंतु सगुण भक्ति काव्य में ऐतिहासिक होते हुए भी कालातीत है।

6. काव्य शैली :

सगुण रामभक्ति परंपरा के कवि या तो स्वयं विद्वान थे अथवा विद्वानों की संगति से साहित्य के धर्मोंके संबंधों में पर्याप्त ज्ञान प्राप्त कर चुके थे। इनके द्वारा अलंकार शास्त्र की अवहेलना हुई है। इनका अनेक काव्य शैलियों पर अधिकार था। यही कारण है कि राम काव्य में सभी शैलियों की रचनाएँ मिलती हैं। इस में प्रबंध और मुक्तक, दोनों काव्यरूपों का प्रयोग किया गया है। रामचरित मानस में महाकाव्य, पार्वतीमंगल व जानकी

मंगल में खंडकाव्य, कवितावली व दोहावली में मुक्तक, विनय पत्रिका में प्रबंध मुक्त का मिश्रण, रामललानहछु में गीति काव्य के प्रायः सभी तत्व विद्यमान है।

7. रूपोपासना :

सगुण भक्ति पद्धति में रूपोपासना का विशिष्ट स्थान है। आदि शंकराचार्य ने नाम और रूप को माया जन्म माना है। शतपथ ब्राह्मण में ब्रह्म को अरूप और अनाम कहाँ गया है, परंतु सगुण साधना में भगवान के नाम और रूप आनंद की अक्षय निधि है। नाम और रूप ही भक्ति का आरंभ माना गया है। रामभक्त को भगवान का नाम और रूप इतना विमुग्ध कर लेता है, कि लौकिक छवि उसमें बाधक नहीं बन सकती। आरंभ में सगुण उपासक नामरूप युक्त मूर्ति समक्ष आकर उपासना करता है, परंतु निरंतर भावना, चिंतन एवं गुण कीर्तन वह अपने आराध्य में ऐसा सनिविष्ट हो जाता है, कि उसे किसी भौतिक उपकरण की आवश्यकता ही नहीं रहती।

8. गुरु की महिमा :

रामभक्ति शाखा में निर्गुण संत कवियों के समान सगुण कवियों ने भी गुरु की महिमा गाई है। राम भक्ति के अनुरूप गुरु ब्रह्म का प्रतिनिधि है। महाकवि तुलसीदास के मतानुसार गुरु के बिना ज्ञान की प्राप्ति असंभव है और ज्ञान के अभाव में मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती।

सहज सुहृद गुरु स्वामि सिख जो न करइ सिर मानी,
सो पछिताई अघाइ उर अवसि होई हित हानि।

9. रस :

रामभक्ति साहित्य में रामकथा अत्यंत व्यापक है। उसमें जीवन की विविधताओं का सहज सन्निवेश है। उसमें सभी रसों का समावेश है किंतु सेवक सेव्यभाव की भक्ति होने के कारण निर्वेदजन्य शांत रस की प्रधानता है। राम मर्यादा पुरुषोत्तम है और भक्त कवि भी मर्यादावादी है। अतः इस कारण शृंगार रस का चित्रण सिमित हुआ है। महाकवि तुलसीदास में सभी रसों का सुंदर परिपाक हुआ है। उनके काव्य में शृंगार और शांति रस के साथ-साथ वीर रस का भी प्रभावी निरूपण हुआ है। विभिन्न युद्ध दृश्य चित्रण में वीर रस के साथ ही रौद्र, करुण, भयानक और कहीं कहीं बीभत्स रस की निष्पत्ति हुई है। नारद मोह के प्रसंग में हास्य रस का प्रसंग चित्रित हुआ है। अनेक स्थलों पर अद्भूत रस का निरूपण हुआ है।

10. छंद :

रामकाव्य में रचना भेद, भाषा भेद, विचार भेद, अलंकार भेद के साथ-साथ छंद भेद भी पाया जाता है। वीर गाथाओं के छप्पय, संत काव्य के दोहे, प्रेम काव्य के दोहे, चौपाई और इनके अतिरिक्त कुंडलिया, सोरठा, सवैया, घनाक्षरी, तोमर, त्रिभंगी आदि छंद प्रयुक्त हुए हैं। राम काव्य में मुख्यतः दोहा, चौपाई का प्रयोग हुआ है। तुलसीदास जी ने इनका प्रयोग अधिकारपूर्वक किया है।

11. अलंकार :

रामभक्त कवि पंडित होने हेतु उन्होंने अलंकार शास्त्र की अवहेलना नहीं की है। जहाँ इन कवियों ने विविध छंदों का प्रयोग बड़ी कुशलता से किया है वहाँ अलंकार के प्रयोग में अत्यंत विद्वता प्रदर्शित की है। कवि केशव ने बड़ी मात्रा में शब्दालंकारों का प्रयोग किया है। तुलसी काव्य में सभी अलंकार मिलते हैं किंतु वे उपमा और रूपक के लिए विशेष प्रसिद्ध हैं।

12. भाषा :

रामकाव्य की भाषा अवधी है। कवि केशव ने अपनी रचना राम-चंद्रिका में ब्रज भाषा का प्रयोग किया है। बाद के रसिक संप्रदाय के कवियों ने ब्रज भाषा का प्रयोग किया है। तुलसीदास ने अपनी रचनाओं में अवधी तथा ब्रज दोनों भाषाओं का सफल प्रयोग किया है। रामकाव्य में भोजपुरी, बुंदेलखंडी, राजस्थानी, संस्कृत और फारसी भाषाओं के शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं। तुलसी ने भाषा का परिष्कृत रूप प्रस्तुत किया है।

निष्कर्ष :

संक्षेप में उपरोक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है, कि रामभक्ति शाखा के कवियों ने समय, परिस्थिति और काल के अनुरूप अपना काव्य सृजन किया है। इन कवियों ने उत्कृष्ट काव्य सृजन का परिचय दिया है। कविता इनकी साध्य नहीं साधन है। इनका साध्य रामभक्ति है। अपने साध्य तक पहुँचने के लिए इन कवियों ने जिस साधन को स्वीकार किया है उसे इतना समर्थ और पूर्ण बना दिया है, उसका मानस जनमानस हो गया। इस काव्य में मानव जीवन की विविध दशाओं का सहज, सरल, स्वाभाविक और प्रभावी चित्रण हुआ है। इन कवियों ने एक ओर धर्मरक्षा, लोकहित एवं समाज के उत्थान में योग दिया है तो दूसरी ओर काव्य को उदात्त, उत्कृष्ट एवं लोक मंगलकारी रूप प्रदान करने का स्तुत्य कार्य किया है।

4.3.2 तुलसीदास : व्यक्तित्व और कृतित्व :

गोस्वामी तुलसीदास रामकाव्य परंपरा के श्रेष्ठ कवि हैं। वे इस काव्य परंपरा के तेजस्वी सूर्य हैं। तुलसी का जीवन वृत्त अभी तक अपेक्षाकृत अंधकारमय है। गोस्वामी तुलसीदास के जीवन वृत्त के संबंध में अंतःसाक्ष्य और बहिःसाक्ष्य दोनों मिलते हैं। अंतःसाक्ष्य में तुलसी के अपने ग्रंथ आते हैं और बहिःसाक्ष्य के अंतर्गत गोस्वामी गोकुलनाथ द्वारा लिखित 'दो सो बावन वैष्णवों की वार्ता', नाभादास का 'भक्तमाल', बाबा माधव वेणीदास कृत 'भक्तमाल की टीका' प्रमुख हैं। तुलसीदास के जीवन परिचय के लिए हमें बहिःसाक्ष्यों की अपेक्षा अंतःसाक्ष्य पर अधिक निर्भर करना पड़ेगा। तुलसी का समस्त जीवन मतभेदों से भरा पड़ा है।

1. व्यक्तित्व :

जन्म-तिथि : तुलसीदास के जन्म तिथि के विषय में पर्याप्त मतभेद हैं। गोस्वामी तुलसीदास के जीवन चरित्र का मूल आधार बेनीमाधव दास द्वारा रचित 'गोसाईं चरित' और महात्मा रघुवरदास रचित 'तुलसी चरित्र' है। उक्त दोनों चरित्रों के आधार पर गोस्वामी तुलसीदास का जन्म 1554 विक्रम में तथा मृत्यु 1680 विक्रम

में मानी जाती है। ऐसा मानने पर तुलसी की आयु 126 वर्ष ठहरती है जो असंभव तो नहीं किंतु असामान्य प्रतीत होती है। पं. रामगुलाम द्विवेदी, सर जार्ज ग्रियर्सन और डॉ. माताप्रसाद गुप्त ने तुलसी का जन्म 1589 विक्रम (1532 ई.) में तथा मृत्यु 1680 विक्रम (1623 ई.) में स्वीकार की है।

जन्म स्थान : इनके जन्म स्थान के संबंध में भी मतभेद है। ठाकूर शिवचरणसिंह सेंगर, रामगुलाम द्विवेदी आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने तुलसी का जन्म स्थान 'राजापुर' को माना है। पं. गौरी शंकर द्विवेदी तथा रामनरेश त्रिपाठी, डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी ने तुलसी का जन्म स्थान एटा जिले के 'सोरो' नामक स्थान को माना है।

माता-पिता : उनके जन्म के संबंध में यह किंवदंती प्रचलित है कि उनका जन्म मूल नक्षत्र पर हो जाने से उनके पिता आत्माराम दुबे ने उन्हें त्याग दिया था तथा माता तुलसी का निधन प्रसुतिकाल में हो गया था। तुलसी के बचपन का नाम रामबोला था।

गुरु : गुरु बाबा नरहरिदास ने उन्हें दीक्षा दी थी तथा काशी में शेष सनातन की पाठशाला में उन्होंने शिक्षा प्राप्त की थी। तुलसी ने अपने गुरु का रामचरित-मानस में अनेक स्थलों पर स्मरण किया है। इन्होंने अनेक तीर्थ स्थानों की यात्रा की और अंत में काशी में रहने लगे। राजा टोडरमल, रहीम और मानसिंह तुलसी के अनन्य मित्र थे।

वैवाहिक जीवन :

इनके वैवाहिक जीवन के संबंध में भी मतभेद हैं। जनश्रुति के अनुसार इनका विवाह दीनबंधु पाठक की पुत्री 'रत्नावली' से हुआ था। उनके तारक नाम का एक पुत्र भी हुआ जिसकी मृत्यु हो गई थी। अत्यधिक आसक्ति के कारण तुलसी को रत्नावली से मोठी भर्त्सना, "लाज न आयी आपको दौरे आएहु साथ" भी सुननी पड़ी थी। तुलसी को रत्नावली ने धिक्कारते हुए कहा था -

अस्थि चर्म मय देह मम तामैं ऐसी प्रीति।

तैसी जो श्रीराम महँ होति न तौ भवभीति॥

रत्नावली के इन वचनों से तुलसी पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि वे विरक्त होकर काशी चले गए।

2) कृतित्व :

गोस्वामी तुलसीदास नाम पर अस तक चालीस पुस्तकें प्राप्त हो चुकी हैं। परंतु पं. रामगुलाम द्विवेदी, आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने बारह रचनाओं को प्रामाणिक माना है। ये रचनाएँ इस प्रकार हैं

1) रामचरितमानस 2) विनय पत्रिका 3) कवितावली 4) दोहावली 5) रामलला नहछू 6) गीतावली 7) कृष्ण गीतावली 8) वैराग्य संदीपनी 9) रामाज्ञा प्रश्नावली 10) बरवै रामायण 11) पार्वती मंगल 12) जानकी मंगल।

रामचरित मानस :

गोस्वामी तुलसीदास द्वारा अवधी भाषा में रचित 'रामचरितमानस' राम के जीवन चरित पर आधारित महाकाव्य है। इस ग्रंथ की रचना संवत् 1631 (1574 ई.) में प्रारंभ हुई और तुलसी ने इसे 2 वर्ष 7 मास में ही समाप्त किया। दोहा-चौपाई शैली में लिखे गये इस महाकाव्य में सात कांड हैं - 1. बाल कांड 2. अयोध्या कांड 3. अरण्य कांड 4. किष्किंधा कांड 5. सुंदर कांड 6. लंका कांड 7. उत्तर कांड

'रामचरितमानस' के राम मर्यादा पुरुषोत्तम, लोकरक्षक, शक्ति, शील एवं सौंदर्य के भंडार हैं। रचना कौशल, प्रबंध पदुता, सहृदयता, मार्मिक स्थलों की पहचान के कारण यह हिंदी का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य माना जाता है। तुलसी ने मानस में आदर्श चरित्रों की परिकल्पना की है। महाकाव्य के नायक राम आदर्श चरित्र हैं। समाज के प्रत्येक वर्ग के लिए राम का चरित्र आदर्श व्यवहार की कसौटी है। वे एक आदर्श भाई, आदर्श पुत्र, आदर्श पति, आदर्श मित्र, आदर्श स्वामी, आदर्श शिष्य, आदर्श राजा के रूप में समाज के सामने प्रस्तुत किये गये हैं। रामचरितमानस की विशेषताएँ इसप्रकार हैं

1) स्वांतः सुखाय काव्य : गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरितमानस में अपनी काव्य रचना का उद्देश स्पष्ट करते हुए घोषणा की, "स्वांतः सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा।" काव्य रचना के लिए इन्होंने न तो किसी दरबार का आश्रय लेना उचित लगा और न ही आश्रयदाताओं की झूठी प्रशंसा करने में उन्होंने रुचि दिखायी। तुलसी ने अपने काव्य में अनुभूति की सच्चाई और अभिव्यक्ति के खरेपन को अपनाया।

2) लोकमंगल की भावना : रामचरितमानस में तुलसी केवल कवि के रूप में ही नहीं अपितु एक उपदेशक के रूप में भी सामने आते हैं। इन्होंने लोककल्याण की कामना करते हुए जनता को नैतिकता एवं सदाचार का अविस्मरणीय पाठ पढ़ाया है। तुलसी ने रामराज्य निरूपण के अंतर्गत आदर्श शासन-व्यवस्था की रूपरेखा भी प्रस्तुत की है। तुलसी ने तो कविता का उद्देश्य ही लोकहित स्वीकार किया है - 'कीरति मनिति भूति मल सोई। सुरसरि सम सबव है हित होई॥' अर्थात् वहीं कविता श्रेयस्कर होती है, जो गंगा के समान सबका हित करने वाली हो।

3) भक्ति का स्वरूप : तुलसी ने मानस में दास्य भाव की भक्ति को मुक्ति का साधन मानते हुए कहा है - 'सेवक-सेव्य भाव बिनु भव न तरिअ उरगारि।' दास्य भाव की भक्ति से भक्त अहंकारशून्य होकर उस परमात्मा के महत्त्व से परिचित हो जाता है।

4) समन्वयवादी प्रवृत्ति : तुलसी ने 'रामचरितमानस' में हर दृष्टि में समन्वयवादी प्रवृत्ति को अपनाते हुए लोकनायक होने का परिचय दिया। रामचरित मानसे में तुलसी ने सगुण-निर्गुण, शैव और वैष्णव का, ज्ञान और भक्ति का, राजा और प्रजा का, जनभाषा और संस्कृत का, भाग्य एवं पुरुषार्थ का, द्वैत एवं अद्वैत का समन्वय किया है।

5) अवधी भाषा : गोस्वामी जी का रामचरितमानस अवधी भाषा में ही लिखा गया है। तुलसी ने मानस में प्रसंगानुकूल, रसानुकूल शब्द चयन, पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग किया है।

6) छंद एवं अलंकार योजना : रामचरितमानस में दोहा, चौपाई, सोरठा, सवैया आदि छंदों का सफल प्रयोग हुआ है। तुलसी ने चतुर्मास प्रदर्शन के लिए अलंकार योजना नहीं की है तथापि मानस का काव्य अलंकारों से मण्डित है। उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, विभावना, प्रतीप, दृष्टांत, सांगरूपक अलंकारों का प्रयोग किया है। अलंकार योजना स्वाभाविक एवं अर्थबोध में सहायक रही है।

7) रस योजना : रामचरितमानस में सभी रसों की योजना की है। युद्ध वर्णन में वीर एवं रौद्र रस की सुंदर योजना हुई है तथा शृंगार का मर्यादित चित्र पुष्पवाटिका में चित्रित है। करुण रस के मानस में अनेक प्रसंग हैं। लंकादहन प्रसंग में भयानक और बीभत्स रस का अच्छा प्रयोग हुआ है। सारी राम कथा का पर्यवसान शांत रस में हुआ है। राम के ब्रह्मत्व का प्रसंग या हनुमान के पहाड़ ले जाने के प्रसंग में अद्भुत रस, वात्सल्य रस के वर्णन मानस के बाल कांड में चित्रित है।

रामचरितमानस आदि से अंत तक समन्वय का काव्य है और यही कारण है कि तुलसी लोकनायक बन सके तथा जन जन के प्रिय बन गये।

विनय पत्रिका :

विनय पत्रिका 279 पदों में ब्रजभाषा में लिखा हुआ काव्यग्रंथ है। तुलसी का अवधी और ब्रजभाषा पर समान अधिकार था। तुलसी की भक्ति भावना जानने के लिए विनय पत्रिका को पढ़ना आवश्यक है। इस काव्य का प्रधान रस शांत है। गीति शैली में रचित विनय पत्रिका के पद विभिन्न राग-रागिनियों में निबद्ध हैं। राग केदार, मल्हार, वसंत, रामकली, केदार जैसे प्रमुख रागों का प्रयोग किया गया है। तुलसीदास ने कलियुग से संतुष्ट होकर प्रभु श्री राम के चरणों में अर्पित करने हेतु यह विनय पत्रिका लिखी है। इस काव्य में आत्मनिवेदन, शरणागत वत्सलता, मन की भर्त्सना एवं दैन्य जैसे भावों की सुंदर व्यंजना हुई है। विनय पत्रिका के कुछ प्रसिद्ध पद इसप्रकार हैं -

तू दयाल दीन हौं तू दानि हौं भिखारी ।
हौं अनाथ पातकी तू पाप पुंज भारी ॥

कवितावली :

कवित्त, सवैया छंद में ब्रजभाषा में रचित कवितावली मुक्तक काव्य ग्रंथ है। जिसमें सात कांड हैं। इसे तुलसी की अंतिम रचना माना जाता है। राम कथा से संबंधित कविता लंकाकांड तक है तथा तुलसी के निजी जीवन एवं तद्दुर्गम समाज का चित्रण उत्तरकांड में है। कवितावली में राम के बाल रूप का चित्रण अत्यंत सुंदर है। राम-सीता के विवाह के अवसर पर शृंगार भावना का चित्रण मार्मिक बन पड़ा है। अलंकारों का सुंदर प्रयोग कवितावली की विशेषता है। कवितावली में दिए गए अंतःसाक्ष्य के आधार पर तुलसी के जीवन-वृत्त को जानने में सहायता मिलती है।

तुलसीकृत 'वैराग्य संदिपनी' ग्रंथ में ईश्वर वंदना के अतिरिक्त संत स्वभाव, संत-महिमा और शांति

महिमा का वर्णन किया गया है। 'रामाज्ञा प्रश्न' में राम जन्म से लेकर सीता के पृथ्वी-प्रवेश के आख्यान को विशद किया है। 'रामललानहछू' की रचना लोकगीत-सोहर छंद में हुई है जिसमें राम के उपवीत-संस्कार का वर्णन है। इसका कथानक मुख्यतः वाल्मीकि और अध्यात्म रामायण पर आधारित है। 'पार्वती मंगल' में पार्वती के विवाहोत्सव का वर्णन है साथ ही पार्वती के जन्म, तप आदि का भी संक्षिप्त चित्रण किया गया है। 'कृष्ण गीतावली' में कृष्ण की बाललीला और गोपियों की विरह दशा का वर्णन करनेवाले गीत हैं। 'गीतावली' को 'राम गीतावली' भी कहा जाता है। इस ग्रंथ में माधुर्य भावना का सुंदर दर्शन होता है। यह ग्रंथ राम साहित्य में प्राप्त मधुरा भक्ति के प्रतिनिधित्व का उदाहरण है। 'दोहावली' में विविध विषय पर लिखे तुलसी के दोहे हैं। इसमें युगीन परिस्थितियों का परिचय मिलता है। 'बरवै रामायण' में बरवै छंद में कुछ रामकथा प्रसंग राम-नाम, रामप्रेम का महात्म्य वर्णित है। 'हनुमान बाहुक' ग्रंथ की सीता-त्याग और लक्ष्मण-परित्याग दो घटनाएँ ध्यानाकर्षक हैं। तुलसीदास का पूरा जीवन और काव्य साधना राम के प्रति समर्पित है।

निष्कर्ष : तुलसीदास का कृतित्व भारतीय समाज के लिए एक सांस्कृतिक मेनु की तरह है। उन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से उस मूल्यों को पुनर्जीवित किया, जो तत्कालीन में बिखर रहे थे। इसलिए तुलसीदास हिंदी साहित्य के भक्तिभाव की 'सगुण धारा' के सर्वेपरि कवि है।

4.3.3 कृष्ण भक्तिधारा की विशेषताएँ :

कृष्ण भक्ति धारा के कवियों ने भावात्मकता को ही प्रधानता दी है। संगीत के माधुर्य से उनका काव्य निखर गया है। इनके काव्य का भाव व कला पक्ष दोनों ही प्रौढ़ थे। तत्कालीन आमजनों ने उनका भरपूर रसास्वादन किया। कृष्ण भक्ति साहित्य ने शेकड़ों वर्षों तक भक्तजनों का हृदय मुग्ध किया। महाकवि सूरदास को कृष्ण भक्त कवियों में सबसे ऊँचा स्थान दिया जाता है। सूरदास, कुंभनदास, नंददास, परमानंद दास, कृष्णदास गोविंद स्वामी, छीतस्वामी व चतुर्भुजदास आदि अष्टछाप कवि हैं।

1) कृष्ण की लीलाओं का वर्णन :

कृष्ण भक्त कवियों ने कृष्ण की लीलाओं का वर्णन विशेष रूप से किया है। कवियों ने कृष्ण चरित्र में उत्तरोत्तर धार्मिकता और भक्ति भावना का समावेश किया है। कृष्ण के तीन प्रधान रूप दिखाई देते हैं। धर्मोपदेष्टा ऋषि, नीति विशारद क्षत्रिय नरेश तथा गोपाल कृष्ण एवं गोपीवल्लभ कृष्ण। कवियों ने लोकरंजनकारी कृष्ण लीलाओं का उन्मुक्त गान किया है। उनकी लीला का प्रयोजन लीलानंद के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। लीला का उद्देश्य अखंड आनंद में जीवन की अध्यात्मिक परिपूर्णता की अभिव्यंजना करना है। बालगोपाल की वात्सल्यपूर्ण लीलायें, सख्य रूप में लीलायें तथा माधुर्य भावपूर्ण लीलायें कृष्ण भक्ति काव्य में चित्रित हैं।

लीला कृष्णा जन्म की, अदभुत अरु अनमोल। मथुरा में लेकर जन्म, गोकुल पाई छांव।
शेषनाग छाता बने, वासुदेव के शीश। जमुना वेग अपार कर, चरण छुए घन श्याम।

2) विषय वस्तु में मौलिक उद्भावना :

कृष्ण काव्य का आधार भागवत पुराण है। भागवतकार के श्रीकृष्ण निर्लिप्त है। गोपियों की प्रार्थना पर ही विविध लिलाओं में शरीक होते हैं। भागवत में श्रीकृष्ण को ब्राह्मत्व रूप दिया है। उनका चरित्र अलौकिक रूप से चित्रित किया है। किंतु हिंदी कवियों ने श्रीकृष्ण की बाललीलाएँ और युवा रूप में प्रणय लिलाओं को चित्रित किया है। हिंदी कवियों के श्रीकृष्ण स्वयं गोपियों की ओर उन्मुख होते हैं।

मैं नहीं माखन खायो। ख्याल परै ये सखा सबै मिली मेरें मुख लपटायो॥ (सूरदास)

यहाँ कृष्ण बड़ी चतुराईसे माता यशोदा से कह रहे हैं कि उन्होंने माखन नहीं खाया। पाठक के मन में ममता जगा दिया है।

3) रस चित्रण :

कृष्ण भक्ति काव्य का प्रमुख भक्ति रस है। कुछ कवियों ने संसार, माया, भ्रम, अविद्या, अज्ञान-अंधकार माना है। ऐसे स्थलों पर शांत रस की अभिव्यक्ति हुई है। सूरदास ने श्रीकृष्ण की बाललिलाओं का मार्मिक चित्रण करते हुए वात्सल्य रस को चित्रित किया है। राधा-कृष्ण तथा गोपियों के साथ संवादों में शृंगार रस का मनोहारी चित्रण किया है। संक्षिप्त में कृष्ण साहित्य रस की दृष्टि से भव्य-दिव्य बना है।

ब्रज रज की महिमा अमर, ब्रज रस की है खान,
ब्रज रज माथे पर चढ़े, ब्रज है स्वर्ग समान।

इन दोहों में ब्रज रज को केवल मिही नहीं, बल्कि प्रेम और भक्ति का साक्षात् रस माना गया है।

4) रीति तत्त्व का समावेशन :

कृष्ण भक्ति साहित्य आनंद और उल्लास का साहित्य है। कृष्ण भक्त कवियों ने अपने काव्य में शृंगार वर्णन के साथ-साथ प्रीति तत्त्व का भी समावेशन किया है। काव्य में अलंकार निरूपण एवं नायिका भेद का सुंदर चित्रण भी प्रस्तुत किया गया है। सूरदास और नंददास जैसे महान कवियों ने अपने काव्य में प्रीति तत्त्व का समावेश बखूबी रूप से किया है। सूरदास ने 'साहित्य लहरी' में नायिका भेद एवं अलंकार का वर्णन किया है तथा नंददास ने भी 'रत्नमंजरी' में नायिका भेद का वर्णन किया है।

5) प्रेममयी भक्ति :

कृष्ण भक्त कवियों ने अपने काव्य में प्रेममयी भक्ति भावना की अभिव्यक्ति की है। कृष्ण की प्रेम भरी छवि को अपने काव्य का प्रमुख विषय बनाकर प्रेम तत्त्व का निरूपण किया है। कृष्ण भक्त कवियों ने वात्सल्य, सखा और माधुर्य के क्षेत्र में कृष्ण लीलाओं का गान करते हुए अपनी भक्ति भावना का परिचय दिया है। रसखान की दृष्टि में प्रेम और हरि अभेद्य हैं। क्योंकि प्रेम हरि का रूप है और स्वयं हरि प्रेम-स्वरूप हैं। अतः हरि और प्रेम में उसी प्रकार की अभिन्नता है जिस प्रकार की सूर्य और धूप में है।

प्रेम हरी को रूप है, त्यों हरि प्रेम-सरूप।

एक होइ द्वै यों लसे, ज्यों सूरज अरु धूप॥ (प्रेम-वाटिका - रसखान)

रसखान की पक्तियों में प्रेमवती संभवतः प्रेम भक्ति कर ही मानवी करण है।

6) जीवन के प्रति आवश्यक राग रंग :

कृष्ण काव्यधारा सामंती जड़ताओं का विरोध करते हुए जीवन के प्रति आवश्यक राग व रंग पर विश्वास करती है। इस धारा में एक ओर प्रेम, बाल लीला चित्रण एवं वात्सल्य चित्रण के माध्यम से समाज को सुदृढ़ करने की कोशिश की गई तो दूसरी ओर मानव की स्वतंत्रता के बाधक तत्वों का विरोध किया गया है।

7) प्रकृति चित्रण :

कृष्ण काव्य में भाव की प्रधानता होने के कारण प्रकृति चित्रण आलंबन रूप में कम तथा उद्दीपन रूप में अधिक हुआ है। जहाँ-जहाँ राधा कृष्ण के सौंदर्य का चित्रण किया गया है, वहाँ उनकी ब्रजभूमि का सौंदर्य का निरूपण भी कृष्णभक्त कवियों ने अच्छी तरह से किए हैं।

सुबरन बेलि तमाल सौं, घन सौं दामिनी देह।

तूँ राजति घनस्याम सौं, राधे सरिस सनेह॥ (मतिराम)

अर्थात् सोने की बेल तमाल वृक्ष से और बादल से बिजली का शरीर जिस प्रकार शोभित होता है। हे राधिका! सदृश स्नेह के कारण तू वैसे ही घनश्याम से शोभित होती है। भाव यह है कि तमाल वृक्ष, बादल और कृष्ण, इन तीनों श्याम वर्ण वालों से स्वर्णलता, बिजली और राधिका ये तीनों गौर वर्ण वाली अत्यंत सुशोभित होती हैं।

8) अलंकार और छंद योजना :

सूरदास, मीरा, नंददास, रसखान आदि कृष्ण भक्त कवियों में अलंकारों के मनोहारी प्रवृत्ति दिखाई देती है। इनके काव्य में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, विभावना, असंगति आदि अलंकारों की परम शोभा देखने को मिलती है। सूरदास द्वारा रचित ग्रंथ 'सूरसागर' में भक्ति रस से पूर्ण पदों की प्रधानता है वही नंददास ने 'रूप मंजरी' व 'राग मंजरी' में दोहा चौपाई छंद का प्रयोग किया है। रसखान ने कवित्त और सवैये लिखे हैं।

9) रस योजना :

कृष्ण भक्ति काव्य धारा में कृष्ण की बाल लीला के चित्रण में वात्सल्य रस तथा प्रणय क्रीड़ाओं के चित्रण में शृंगार रस की प्रधानता है। सूरदास, नंददास एवं मीरा के काव्य में रस का प्रयोग मुख्य रूप से दिखाई देता है। सूरदास ने शृंगार एवं वात्सल्य रस का वर्णन अपने काव्य में बखूबी किया है।

10) भाषा शैली :

समस्त कृष्ण भक्ति काव्य में ब्रज भाषा का रूप देखने को मिलता है। कृष्ण भक्ति काव्य की भाषा ब्रज है। कृष्ण भक्ति काव्य धारा के कवि भाषा की दृष्टि से अत्यंत सशक्त माने जाते हैं। सूरदास ने अपने काव्य में ब्रज भाषा का प्रयोग किया है। उनकी भाषा माधुर्य, सरसता, कोमलता आदि गुणों के कारण व्यापक काव्य भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हो चुकी थी।

निष्कर्ष :

कृष्ण काव्य धारा के प्रमुख कवियों में सूरदास, मीरा, नंददास, रसखान जैसे महान कवि थे। उन्होंने अपने काव्य में राधा- कृष्ण की लीलाओं का वर्णन करते हुए जीवन के प्रति आवश्यक राग रंगों को उजागर किया है। इनके काव्य में प्रकृति के चित्रण है। कृष्ण काव्य धारा के कवियों की भाषा ब्रजभाषा है। वे अपने काव्य में अलंकार तथा छंद एवं रस का प्रयोग करते हुए कृष्ण भक्ति को बखूबी दर्शाया है। इस प्रकार कृष्ण काव्य की विशेषताओं में ये सभी तत्व विराजमान हैं।

4.3.4 सूरदास : व्यक्तित्व और कृतित्व :

प्रस्तावना :

सगुण काव्य-धारा में कृष्ण काव्य का महत्वपूर्ण स्थान है। भारतीय धर्म साधना में कृष्ण का विलक्षण व्यक्तित्व रहा है। श्रीकृष्ण को विष्णु के अवतार के रूप में मानकर उनके विविध क्रियाकलापों का वर्णन भागवत पुराण तथा महाभारत में प्रमुख रूप से किया गया है। भागवत पुराण में श्रीकृष्ण की रासलीला एवं बाल लीलाओं का चित्रण हुआ है। सगुणोपासक कृष्ण भक्त कवियों ने कृष्ण की बाल लीलाओं, प्रणय लीलाओं तथा अन्य माधुर्य भावयुक्त क्रीडाओं का चित्रण किया है। संस्कृत कवि जयदेव ने मधुर संगीतात्मक पदावली में 'गीत-गोविंद' नामक ग्रंथ में राधा-कृष्ण की प्रेम लीलाओं का गान कर कृष्ण काव्य को एक नयी दिशा प्रदान की। मध्यकाल में कृष्ण काव्य को समृद्ध बनाने का पूरा श्रेय अष्टछाप के कवियों का है। इन कवियों में सर्वप्रमुख हैं-सूरदास। सूरदास के अतिरिक्त अष्टछाप के अन्य कवि थे - कुंभनदास, परमानंददास, कृष्णदास, छीतस्वामी, गोविंदस्वामी, चतुर्भुजदास और नंददास।

1) जीवन तथा व्यक्तित्व :

जीवनवृत्त :

बाह्य साक्ष्य और अंतःसाक्ष्य का आधार लेकर सूरदास की जीवन झाँकी प्रस्तुत की जा सकती है। उनके जीवन वृत्त को जानने के लिए गोकुलनाथ कृत 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' तथा नाभादास कृत 'भक्तमाल' को आधार बनाया गया है। उनका जीवन वृत्त पूर्णतया ज्ञात नहीं है। उनका जन्म सन् 1478 ई में तथा मृत्यु सन् 1583 ई. में मानी जाती है।

उनके जन्मस्थान के संबंध में भी विवाद है। कुछ विद्वान उन्हें 'सीही' में तो कुछ 'रुनकता' में उत्पन्न

मानते हैं। इनके माता-पिता, परिवार के बारे में कुछ भी पता नहीं है। वे एक निर्धन सारस्वत ब्राह्मण के चतुर्थ पुत्र थे। सूरदास नेत्र विहीन थे। वे जन्मांध थे या बाद में अंधे हुए इस संबंध में विवाद है। उनके काव्य में दृश्यमान जगत् का सूक्ष्म और व्यापक वर्णन है। अतः उनकी जन्मांधता पर विश्वास नहीं किया जा सकता।

सूरदास वल्लभाचार्य के शिष्य थे, पुष्टिमार्ग में कीर्तन करते थे। सूरदास पहले विनय के पद गाते थे। वल्लभाचार्य के आदेश से कृष्ण लीला के पद गाने लगे। उन्होंने लगभग ३ वर्ष की अवस्था में श्रीनाथ जी के मंदिर में कीर्तन करना आरंभ किया था और जिंदगी के अंतिम क्षण तक नियमित रूप से लीला गान में मग्न रहें। अपने 105 वर्ष के सुदीर्घ जीवन काल में उन्होंने लगभग एक लाख पदों की रचना की। सूरदास गायक, संगीतज्ञ, कीर्तनकार के रूप में प्रसिद्ध थे। जन्मजात प्रतिभा, गुणीजनों का सहवास और नीजि अभ्यास के कारण सूरदास को विभिन्न विद्याओं का ज्ञान था। इनकी ख्याति गायक और महात्मा के नाते सर्वत्र फैली। सम्राट अकबर, गोस्वामी तुलसीदास से इनकी भेंट हुई थी। तुलसीदास सूर के लीला पदों से इतने प्रभावित हुए थे कि उन्होंने बाद में सूर की शैली पर भगवान राम की बाल-लीलाओं का वर्णन किया।

2) सूरदास की रचनाएँ :

सूरदास ने श्रीमद्भागवत् के आधार पर कृष्ण लीला संबंधी अनेक पदों की रचना की थी जिनकी संख्या सवा लाख बताई जाती है। उनके जीवन काल में ही इतने असंख्य पद सागर कहलाने लगे थे जो कि बाद में संग्रहित होकर 'सूर सागर' कहलाने लगे। सूरदास के नाम पर 24 रचनाओं का उल्लेख मिलता है। इनमें से तीन रचनाएँ प्रकाशित हुई हैं - साहित्यलहरी, सूरसारावली, और सूरसागर। उनकी एक मात्र प्रामाणिक रचना है - 'सूरसागर'।

'सूरसारावली' में 1103 पद हैं। इसे सूरसागर का सार अथवा अनुक्रमणिका माना जाता है। इसकी प्रामाणिकता विवादास्पद है। 'साहित्यलहरी' 118 पदों की छोटी रचना है। इसे सूरसागर का अंश माना जाता है। यह रीति ग्रंथ है। इसमें नायिका-भेद और रस-वर्णन है।

सूरसागर :

'सूरसागर' सूरदास की एकमात्र प्रामाणिक रचना है। यह ग्रंथ भागवत को आधार बनाकर लिखा है। कुछ विद्वान 'सूरसागर' को भगवान का अनुवाद मानते हैं। लेकिन वह उचित नहीं है। भागवत के कृष्ण शक्ति के प्रतीक हैं। सूर के कृष्ण इन गुणों के साथ-साथ प्रेम और सौंदर्य की प्रतिमूर्ति हैं। इस ग्रंथ में लीला वर्णन है। इस ग्रंथ के सच्चा लाख पदों में से केवल 5000 पद आज उपलब्ध हैं। 'सूरसागर' कृष्णभक्ति साहित्य का गौरव ग्रंथ है।

भावपक्ष :

'सूरसागर' में कृष्णलीला के पद हैं। सूर ने सख्य भक्ति को प्रधानता दी है। सूरदास के सखा भाव में यह विशेषता है कि उसमें एक ओर मनोवैज्ञानिक रूप से मानवीय संबंधों का निर्वाह किया गया है और

भावात्मक की अनुभूति भी की गई है। समस्त सूरसागर का अध्ययन करने पर कृष्ण का चरित्र हमारे सामने इन रूपों में आता है।

- i) अत्यंत मुखर बालक के रूप में।
- ii) चंचल किशोर के रूप में।
- iii) किशोर प्रेमी के रूप में।
- iv) क्रीड़ा कौतुक प्रिय सखा के रूप में।
- v) तरुण नायक के रूप में।
- vi) अति प्राकृत अलौकिक सत्ता के रूप में जो भक्तों की रक्षा करती है।

इसप्रकार सूर ने कृष्ण का चरित्र विविध खूबियों से अंकित किया है और इसमें उन्हें सफलता भी प्राप्त हुई है। सूर की राधा भी हिंदी साहित्य को प्राप्त एक अमूल्य देन है। वह कृष्ण की पत्नी सदृश्य ही है और उसे सूर की अपनी देन ही समझना चाहिए।

सूर के पदों को पाँच भागों में विभाजित किया जाता है। - विनय के पद, बाललीला के पद, सौंदर्य-वर्णन संबंधी पद, मुरली विषयक पद और भ्रमरगीत। इनमें से विनय के पद तो भक्ति-भावना से संबंधित हैं तो उर्वरित कृष्णलीला से संबंधित हैं। सूर का बालवर्णन विश्वसाहित्य में अनूठा कहा जाता है। वात्सल्य वर्णन में सूरदास हिंदी साहित्य में अद्वितीय है। बालक कृष्ण की एक-एक क्रीड़ा और माता यशोदा के हृदय के एक-एक मनोभाव का सूक्ष्म चित्रण किया है। लगता है, सूरदास वात्सल्य रस का कोना-कोना झाँक आए थे। इसलिए कहा जाता है 'सूर वात्सल्य है और वात्सल्य ही सूर है।'।

सूरसागर में शृंगार के दोनों पक्ष संयोग और वियोग का व्यापक वर्णन मिलता है। कृष्ण-गोपियाँ, कृष्ण-राधा के माध्यम से शृंगार वर्णन किया है। 'भ्रमर गीत' सूरसागर का अत्यधिक मार्मिक पक्ष है। इसका मुख्य विषय गोपियों की विरह भावना है। भ्रमर गीत पदावली में विरह सागर उमड़ सा उठा है तथा उसमें कल्पना एवं भावुकता का सहज सामंजस्य है।

सूर ने सूरसागर में प्रकृति चित्रण की विविध प्रणालियों को अपनाते हुए प्राकृतिक दृश्यों का मनोहारी वर्णन किया है। सूर ने प्रकृति का वर्णन इन रूपों में किया है - प्रकृति का विषयात्मक चित्रण, अलंकृत चित्रण कोमल और भयंकर रूप प्रकृति मानव क्रिया-कलाप की पृष्ठभूमि, अलंकारों के रूप में प्राकृतिक दृश्यों का प्रयोग। सूरसागर में श्रीकृष्ण के शैशव से लेकर किशोर अवस्था तक के असंख्य रूप चित्र हैं जिनमें कवि की भावना, कल्पना, कला-कुशलता और शैली की चमत्कारिता एक साथ व्यक्त हुई है।

कलापक्ष :

सूरकाव्य का भावपक्ष के साथ साथ कलापक्ष समृद्ध है। सूरदास के पद गीतिकाव्य के उत्कृष्ट उदाहरण

हैं। उनकी भाषा साहित्यिक ब्रजभाषा है। भाषा परिमार्जित, समृद्ध और प्रौढ़ है। व्याकरण के दोष होते हुए भी भाषा प्रवाहमान है। ब्रजभाषा के साथ साथ संस्कृत, राजस्थानी, गुजराती, पंजाबी आदि भाषा के शब्दों का प्रयोग मिलता है। मुहावरें, कहावतों का प्रयोग स्वाभाविक रीति से हुआ है। शब्दचयन, भावमयता, चित्रात्मकता, सहजता, सरलता, सजीवता, मधुरता आदि सूर की भाषा की विशेषताएँ हैं। उनकी भाषा माधुर्यमयी है।

सूर अलंकार व्यंजना में सफल रहे हैं उनकी उक्तियों में उपमा रूपक, अनुप्रास, यमक, श्लेष, उत्प्रेक्षा, वक्रोक्ति आदि अलंकार दिखाई पड़ते हैं। उनकी भाषा में लाक्षणिकता एवं ध्वन्यात्मकता भी दर्शनीय है। सूरसागर में दोहा, चौपाई, रोला, गीति, लावनी, धनाक्षरी, सवैया आदि छंद भी दृष्टिगोचर होते हैं। सूरकाव्य में राग-रागिनियों का सुंदर समावेश हुआ है।

सूर काव्य के भावपक्ष और कालापक्ष पर विचार करने के बाद हम इस निष्कर्ष पर आते हैं कि 'सूर की कविता, कविता नहीं हृदय की झंकार है।'

4.4 स्वयंअध्ययन के लिए प्रश्न :

प्रश्न 1 अ) निम्नलिखित वाक्यों में दिए गए पर्यायों में से उचित पर्याय चुनकर वाक्य फिर से लिखिए।

- तुलसीदास भक्तिधारा के प्रमुख कवि हैं।
क) शिव ख) कृष्ण ग) गणेश घ) राम
- तुलसीदास का जीवनकाल है।
क) 1532-1623 ई. ख) 1530-1620 ई.
ग) 1500-1580 ई. घ) 1550-1628 ई.
- सूरदास का जन्म स्थान है।
क) पारसौली ख) सीही ग) मगहर घ) सोरो
- रामचरितमानस की रचना भाषा में हुई है।
क) संस्कृत ख) प्राकृत ग) मागधी घ) अवधी
- रामचरितमानस का आधार ग्रंथ है।
क) रामायण ख) महाभारत ग) उपनिषद् घ) पुराण
- अष्टछाप के कवियों की संख्या है।
क) अठारह ख) दस ग) आठ घ) बारह

7. सूरदास की भक्ति प्रकार की है।
क) माधुर्य भाव ख) हास्य भाव ग) सख्य भाव घ) कांताभाव
8. पुष्टि मार्ग के प्रवर्तक हैं।
क) गोकुलनाथ ख) नंददास ग) विठ्ठलनाथ घ) वल्लभाचार्य
9. विनय-पत्रिका ग्रंथ का प्रधान रस है।
क) शृंगार ख) शांत ग) वात्सल्य घ) अद्भुत
10. शृंगार और वात्सल्य रस का सम्राट कवि को कहा जाता है।
क) सूरदास ख) तुलसीदास ग) नंददास घ) केशवदास
11. रामभक्त कवियों के उपास्यदेव भगवान के अवतार श्रीराम है।
अ) कृष्ण ब) ब्रह्मा क) परशुराम ड) विष्णु
12. रामकाव्य की भाषा है।
अ) बघेली ब) अवधी क) ब्रज ड) भोजपुरी
13. रामकाव्य में एक विराट की भावना है।
अ) द्वेष ब) अहंकार क) विद्रोह ड) समन्वय
14. राम की रावण पर विजय अर्थात् सत की पर विजय है।
अ) गुण ब) श्रद्धा क) आत्मा ड) तम
15. कृष्ण भक्ति धारा के कवियों ने को ही प्रधानता दी है।
अ) चरित्र ब) प्रकृति क) भावात्मकता ड) मोह
16. कृष्ण भक्ति काव्य का प्रमुख रस है।
अ) वीर ब) अद्भूत क) शृंगार ड) भक्ति
17. रसखान की दृष्टि में प्रेम और हरि हैं।
अ) अभेद्य ब) अलग क) भ्रम ड) सौंदर्य
18. कृष्ण भक्ति काव्य की प्रमुख भाषा है।
अ) अवधी ब) ब्रज क) बुंदेली ड) संस्कृत

आ) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर एक वाक्य में लिखिए।

1. सूरदास के गुरु का नाम क्या था ?
2. सूरदास का जन्मस्थान कौन सा है ?
3. सूरदास की एकमात्र प्रामाणिक रचना कौनसी है ?
4. सूरदास किस मंदिर में कीर्तन करते थे ?
5. सूरसागर का आधार ग्रंथ कौनसा है ?
6. तुलसीदास के गुरु का नाम क्या था ?
7. तुलसी के साहित्य में कौनसी भावना प्रधान है ?
8. तुलसी के पत्नी का नाम क्या है ?
9. रामचरितमानस में कितने कांड हैं ?
10. विनय पत्रिका की भाषा कौनसी है ?

4.5 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ :

- | | | |
|-------------------|------------------------|---------------------|
| * ऊपजि - पैदा हुई | * वामन - सूक्ष्म, छोटा | * पुष्टि - पोषण |
| * कांता - पत्नी | * अनुग्रह - कृपा | * अस्थि - हड्डिया |
| * कांड - भाग | * पातकी - पापी | * सूरसरि - गंगा नदी |
| * भव - भवसागर | | |

4.6 स्वयंअध्ययन प्रश्नों के उत्तर :

प्रश्न १ अ)

- | | | |
|-----------------|------------------|-----------------|
| (1) राम | (2) 1532-1623 ई. | (3) सीही |
| (4) अवधी | (5) रामायण | (6) आठ |
| (7) माधुर्य भाव | (8) वल्लभाचार्य | (9) शांत |
| (10) सूरदास | (11) विष्णु | (12) अवधी |
| (13) समन्वय | (14) तम | (15) भावात्मकता |
| (16) भक्ति | (17) अभेद्य | (18) ब्रज |

आ) एक वाक्य के प्रश्नों के उत्तर

1. सूरदास के गुरु का नाम वल्लभाचार्य था।
2. सूरदास का जन्म स्थान सीही है।
3. 'सूरसागर' सूरदास की एकमात्र प्रामाणिक रचना है।
4. सूरदास श्रीनाथ जी के मंदिर में कीर्तन करते थे।
5. सूरसागर का आधार ग्रंथ भागवत है।
6. तुलसीदास के गुरु का नाम बाबा नरहरिदास है।
7. तुलसी के साहित्य में 'समन्वय' की भावना प्रधान है।
8. तुलसी के पत्नी का नाम 'रत्नावली' था।
9. रामचरितमानस में सात कांड हैं।
10. विनय पत्रिका की भाषा ब्रज है।

4.7 सारांश :

1. सगुण भक्तिकाव्य में ईश्वर के सगुण साकार और अवतारी रूप का वर्णन किया है।
2. रामभक्ति शाखा के तुलसीदास सर्वश्रेष्ठ कवि रहें।
3. गोस्वामी तुलसीदास ने समस्त विरोधों में सामंजस्य प्रस्थापित किया। उन्होंने समाज में, धर्म में, आचार-व्यवहार में, भक्ति भावना में फैली अनेक विषमताओं को दूर कर उनमें समन्वय लाने का अद्भुत प्रयास किया और उसमें सफल भी हुए। तुलसी लोकनायक थे।
4. सूरदास कृष्णभक्ति शाखा के सर्वश्रेष्ठ कवि रहें।
5. अष्टछाप के कवियों में सूरदास का स्थान सर्वोपरि रहा।
6. 'सूरदास' शृंगार और वात्सल्य रस के सम्राट माने जाते हैं।
7. सगुण भक्त कवियों ने निर्गुण भक्ति शाखा की उपेक्षा नहीं की।

4.8 स्वाध्याय :

1. सगुण भक्ति काव्य की विशेषताएँ स्पष्ट कीजिए।
2. सूरदास के व्यक्तित्व एवं साहित्य का परिचय दीजिए।
3. तुलसीदास के व्यक्तित्व एवं साहित्य का परिचय दीजिए।

4. रामचरितमानस की विशेषताएँ स्पष्ट कीजिए।
5. सूरसागर का भावपक्ष और कलापक्ष विशद कीजिए।

4.9 क्षेत्रीय कार्य :

1. सगुण भक्ति शाखा के तुलसीदास, सूरदास, अष्टछाप के कवियों के प्रसिद्ध पदों का संग्रह कीजिए।
2. मराठी के राम और कृष्ण साहित्य का तुलसीदास और सूरदास के पदों का साथ साथ अध्ययन कीजिए।

4.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए :

1. हिंदी साहित्य की भूमिका - डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी
2. हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास - डॉ. गणपतिचंद्र गुप्त
3. हिंदी साहित्य का इतिहास - डॉ. नगेन्द्र
4. हिंदी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचंद्र शुक्ल
5. हिंदी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ - डॉ. शिवकुमार शर्मा



घटक 1

रीतिकाल

अनुक्रम

1.1 उद्देश्य

1.2 प्रस्तावना

1.3 विषय विवेचन

1.3.1 रीतिकालीन परिस्थितियाँ : राजनीतिक एवं सामाजिक ।

1.3.2 रीतिबद्ध काव्य धारा : सामान्य परिचय, प्रमुख कवि-केशवदास एवं देव ।

1.3.3 रीतिसिद्ध काव्य धारा सामान्य परिचय, प्रमुख कवि बिहारी एवं सेनापति ।

1.3.4 रीतिमुक्त काव्य धारा सामान्य परिचय, प्रमुख कवि घनानंद एवं आलम ।

1.4 स्वयंअध्ययन के लिए प्रश्न

1.5 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ

1.6 स्वयंअध्ययन प्रश्नों के उत्तर

1.7 सारांश

1.8 स्वाध्याय

1.9 क्षेत्रीय कार्य

1.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए

1.1 उद्देश्य :

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- ◆ रीतिकालीन राजनीतिक एवं सामाजिक परिस्थितियों का परिचय प्राप्त कर सकेंगे
- ◆ रीतिकालीन राजनीतिक एवं सामाजिक परिस्थितियों का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- ◆ रीतिबद्ध काव्यधारा की विशेषताओं और रीतिबद्ध कवि केशवदास और देव के जीवन एवं रचनाओं से परिचित होंगे।
- ◆ रीतिसिद्ध काव्यधारा की विशेषताओं और रीतिसिद्ध कवि बिहारी और सेनापति के जीवन एवं रचनाओं से परिचित होंगे।
- ◆ रीतिमुक्त काव्यधारा की विशेषताओं और रीतिमुक्त कवि घनानंद और आलम के जीवन एवं रचनाओं से परिचित होंगे।

1.2 प्रस्तावना :

हिंदी साहित्य के इतिहास का तीसरा चरण रीतिकाल के नाम से जाना जाता है जो हिंदी में उत्तर-मध्यकाल के नाम से भी परिचित है। रीतिकाल का कालखंड संवत् 1700 से सं 1900 के बीच माना जाता है। इस कालखंड का 'रीतिकाल' यह नामकरण हिंदी के इतिहासकार और वरिष्ठ समीक्षक आ. रामचंद्र शुक्ल ने किया है। इस कालखंड का साहित्य ज्यादातर दरबारी संस्कृति और काव्यशास्त्रीय सौंदर्य को केंद्र में रखकर लिखा गया। इस कारण काव्यशास्त्रीय नियमों और शृंगारिक साहित्य का प्राबल्य रहा। इस प्रवृत्तियों के आधार पर ही इस कालखंड के साहित्य की प्रमुखतः रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध और रीतिमुक्त ये तीन काव्यधाराएं विकसित हुई हैं। इस इकाई में हम इन तीनों काव्यधाराओं की सामान्य विशेषता और इन धाराओं के प्रमुख कवियों का सामान्य परिचय जानेंगे। लेकिन किसी भी काल की साहित्यिक गतिविधियों का सही रूप समझने के लिए उस समय की तत्कालीन बाह्य परिस्थितियों के तत्कालीन परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में देखना अनिवार्य है। इस दृष्टि से रीतिकाल की राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियों का अध्ययन करना आवश्यक होगा।

1.3 विषय विवेचन :

1.3.1 रीतिकालीन परिस्थितियाँ :

1.3.1.1 राजनीतिक परिस्थितियाँ :

हिंदी साहित्य में रीतिकाल संवत् 1700 से संवत् 1900 तक स्वीकार किया गया है। इस काल में व्यक्तिवादी, निरंकुश राजतंत्र अस्तित्व में था। रीतिकाल के पूर्व सम्राट अकबर ने अपनी सहिष्णुता की नीति के माध्यम से हिंदू और मुस्लिम, दोनों जाति, धर्मों में पारस्परिक सांस्कृतिक समन्वय के माध्यम से विशाल मुगल साम्राज्य का निर्माण किया गया था। लेकिन आगे चलकर अकबर के बाद जहाँगीर ने राज्य के संबंध

में कोई विशेष योगदान नहीं दिया। इस बात का उल्लेख अनिवार्य बनता है कि, जहाँगीर की सुरा अर्थात् शराब और सुंदरी अर्थात् स्त्री के प्रति अदम्य लोलुपता और असंतुलित लालसा उत्तराधिकारियों को विरासत में अवश्य मिली।

शहाजहाँ में एक ओर तो सहिष्णुता विद्यमान थी, तो दूसरी ओर उसमें सांस्कृतिक तथा कलागत उदारता। उस समय प्रायः सुख, शांति और समृद्धि का काल था। ऐसी विचित्र स्थिति में निरंकुश राजतंत्रीय शासक शहाजहाँ में प्रदर्शन प्रवृत्ति का होना सहज स्वाभाविक है। शायद इसी प्रदर्शन प्रधान प्रवृत्ति का हिंदी साहित्य पर गहरा प्रभाव पड़ा। संवत् 1775 में शहाजहाँ बीमार पड़ा। उसने अपनी राजगद्दी के लिए अपने ही पुत्रों को लडते झगडते देखा था। वे मानों हिंस्त्र पशुओं की तरह एक दूसरे के साथ लडते रहते थे। औरंगजेब के पुत्र दारा की मृत्यु ने मानवता की हत्या का उदाहरण दिल्ली के लाहोरी गेट पर रखा था। एक विशेष बात यह है कि, मुगल वंश में धार्मिक सहिष्णुता और उदारता की भी मानों हत्या हो गई हो। औरंगजेब की साम्राज्य-विस्तार-लिप्सा इतनी बढ़ गई थी कि, जिसके कारण उसकी नींद हराम हो गई थी। जिसके कारण औरंगजेब में अतीव धार्मिक कट्टरता की नीति और अमानुष व्यवहारों के कारण ही अनेक राजाओं के पुत्रों उनके विरोधी हो गए थे। हिंदू जनता भी उनके विरोधी बन गयी थी। औरंगजेब की अतीव राज्यलिप्सा के चलते मराठों तथा सिक्खों से साथ मानों उनकी जातिया दुष्मनी के कटघरे में खड़ा किया था। औरंगजेब का व्यक्तित्व रागात्मक तत्त्वों से सर्वथा अलग प्रकार था। साहित्य, संगीत, कला, सौंदर्य, ऐश्वर्य और विलास के प्रति उसे घोर चिढ़ थी। वेश्यावृत्ति और मदयप्राशन के पूर्ण निषेध संबंधी उसने सरकारी आदेश निकाले थे। लेकिन इनका बंद हो जाना इतना सहज और सरल नहीं था। उस समय अनेक सामंतों के अनेक हरम अर्थात् (इस्लाम धर्म में त्याज्य माना जाता था।) उनके दरबारों में अनेक रक्षिताएँ तथा नर्तकिया थी।

औरंगजेब के निधन के बाद राजनीतिक स्थिति अत्यंत बिकट तथा शोचनीय बन गई थी। राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में इस काल को घोर निराशा और अंधकार का काल माना जाता था। औरंगजेब के उत्तराधिकारी एकदम अयोग्य, असमर्थ, विलासी, पंगु, और नपुसंक लग रहे थे। केंद्रीय शासन की संकल्पना मरणासन्न हो चुकी थी, जिसके चलते अनेक प्रदेशों के शासक स्वतंत्र हो गए थे। आगरा में जाटों, राजस्थान में राजपूत और पंजाब में बंदा वैरागी ने बहादुरशाह ने उपरविवेचितों का जीना मुश्किल किया था। दक्षिण में मराठा शक्ति पूर्णतया अपना सिर उठा चुकी थी। नादिरशाह तथा अहमदशाह अब्दाली के आक्रमणों के कारण मुगल साम्राज्य के रीढ़ की हड्डी टूट चुकी थी। समस्त भारत में फैले वैमनस्य का लाभ उठाते हुए अंग्रेजों ने बक्सर की लड़ाई शाहआलम को पराजित करके मुगल साम्राज्य की नींव को हिला दिया था। मुगल साम्राज्य वंश के नामधारी, नाम-शेष सम्राट अंग्रेजों के हाथों की कटपुतलियाँ बन चुके थे। यह काल राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में दारुण, करुण कहानी प्रारंभ का कालावधि रहा है। सम्राट जहाँदाराशाह के बारे में एक कवि ने लिखा है कि, वह दर्पण और कंघा हाथ में लेकर एक सुंदरी की तरह अपने बालों को संवारने का कार्य करती थी। लालकुँवर वेश्या का उस पर अधिक गहरा प्रभाव था। उनका सारा राज्य कार्य रक्षिता लालकुँवर वेश्या का उन पर अधिक प्रभाव था। वेश्या के अधिकांश सगे संबंधियों को उनके राज्य में उच्च पद पर नियुक्त किया था। उन्होंने जनसामान्य लोगों पर

अनवरत अन्याय, अत्याचार किए थे। नगर के श्रेष्ठ राजमहलों को उन्हें भेंट के रूप में दिए गए थे। सम्राट मुहम्मदशाह को तो इतिहासकारों ने रंगीले की उपाधि से अलंकृत किया था। वह अपना सारा समय नाच, रंग तथ मदिरापान में व्यतीत किया करते थे। उनका मंत्री कमरुद्दीन उनके साथी था। शाह को वेश्या उधमबाई से अनन्य साधारण प्रेम था। उससे उत्पन्न ही उसका बेटा राज्य का उत्तराधिकारी बना था।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि, यह युग घोर नैतिक पतन की पराकाष्ठा का काल माना जाता है। जिसके राजमहलों में वेश्याओं तथा हिजडों की ऐसी तूती बोलती हो उसके नैतिक स्तर का सहज से अनुमान लगाया जा सकता है। देशी राजपुत्रों के हरमों में भी वेश्याओं और रक्षिताओं की कमी नहीं थी।

1.3.1.2 सामाजिक परिस्थितियाँ :

‘जैसा राजा वैसी प्रजा’ कहावत इस युग के लिए यथार्थ लगती है। वैसे देखा जाए तो इस युग को विलास प्रधान युग कहना गलत नहीं होगा। सच कहा जाए तो मुगल वंश के ऐश्वर्य तथा वैभव में विलासिता की प्रधानता तो आरंभ से चली आ रही थी। फिर भी बाबर, हुमायूँ और अकबर ने अपने आपको बहुत नियंत्रित रखा था। हमेशा शराब की नशे में चूर होने वाले नूरजहाँ पर कुर्बान होने वाले जहाँगीर के व्यक्तित्व में विलासिता उग्र रूप में प्रकट हो गई थी। शाहजहाँ की वैभवप्रियता, विलासलिप्सा तथा प्रदर्शन की प्रवृत्ति ने उस काल की सामंतीय जीवन के अनेक पहलुओं पर आपने आप में प्रकाश पड़ चुका था। राज-महलों में लगने वाले रुप-बाजारों का प्रभाव जन-सामान्य पर भी पड़ा हुआ दिखाई देता है। इसका परिणाम तत्कालीन अनेक बहुविध आयामों पर पड़ा हुआ दिखाई देता है। इसका सबसे अधिक प्रभाव पौरुष जीवन पर पड़ा हुआ दिखाई देता है। अभिजात्य संस्कृति के नाम पर नाममात्र विलास तथा प्रदर्शन की प्रवृत्ति अपने जगह पर कायम बनी रही। मनोबल की कमी कारण समाज का बौद्धिक स्तर भी बहुत हीनावस्था की ओर तेजी से जा रहा था। अनेक छोटे-बड़े सामंतों के पास रखेलों को रखने की मानों स्पर्धा चल रही हो। भारतीय समाज व्यवस्था में प्रचलित एक पत्नी व्रत का अनादर करते हुए मुगल सम्राटों ने अपनी तो सीमा कब ही पार की थी। अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँ की अनेक पत्नियाँ विद्यमान थी। उनके राज-महलों में रखेलों तथा परिचारिकाओं की किसी भी प्रकार की कमी नहीं थी। राज महलों में स्त्री केवल मनोरंजन मात्र साधन रही थीं। उसे केवल भोग्या और अपनी सुविधा के लिए साधन के रूप में रखा गया था। इस युग के प्रस्तुत कालखंड को सामंतीय युग की दृष्टि का प्रसार उसके शारीरिक लावण्य और कोमलता तक ही सीमित रखा गया था। स्त्री की अनुपम शक्ति संपन्न अंतरात्मा तक सीमित न रह सकी। सामंतीय जीवन आरंभ से ही जीवन की विसंगतियों से भली-भांति परिचित न हो जाती थी। जीवन के संघर्षों से उसका कोई सीधा-साधा संबंध नहीं हुआ करता था, ऐसी इस युग की भोगवादी परिसंकल्पना रही है। इस युग के कालखंड में सबसे अधिक महत्व यौन संबंधों को प्रदान किया गया था। जिसके कारण ही उस समय के मानव जीवन किसी प्रकार का कोई विशेष संबंध नहीं रह चुका था। मद्यप्राशन और द्यूत-क्रीडा इनके जीवन के अहंम अंग बन गए थे।

रीतिकालीन समाज व्यवस्था में अंध-विश्वास और विविध प्रकार की रुढ़ियों ने अपना ऐसा कब्जा किया था। मानों उसके शिकंजे से तत्कालीन समाज किसी भी प्रकार की उन्नति, विकास नहीं कर सकता था।

तत्कालीन अनपढ़, गंवार समाज में ज्योतिषियों की वाणी और शकुन-शास्त्र हावी हो चुका था। तत्कालीन समाज का अवैज्ञानिक बातों पर काफी विश्वास जमा हो रहा था। जनमा अशिक्षित थी। जिसके कारण परंपरागत दकियानूसी धार्मिक मान्यताओं के चलते तत्कालीन समाज में बाल-विवाह तथा बहु विवाह जैसी दकियानूसी परंपराओं को अवैज्ञानिक पाजामा पहनकर उसका समर्थन किया जा सकता था। इन दिनों दासियों की मांग प्रबल हो रही थी। सामान्य जनता में नागरिकता का पूर्ण अभाव दिखाई देता था। उत्तरी भारत में प्रशासनिक क्षेत्र में जागीरदारों का प्राबल्य अधिक था। वे श्रमिक वर्ग पर अनाचार-अत्याचार किया करते थे। वह वर्ग जागीरदारों के यंत्रणाओं से पीड़ित था। इसी दौरान इस युग की अनेक प्रकार की महामारियों का प्रकोप हुआ था। जिससे सामान्य जनता हाल बेहाल हो चुका था। किसान वर्ग अपनी उपजीविका चलाने के लिए उसके पास यांत्रिक सामग्री का अभाव था। मानव जीवन के अनेक क्षेत्र कला-कौशल तथा व्यापार को भी शासकों की ओर से उनकी उपेक्षा की जाती थी। थोड़े शब्दों में कहा जा सकता है कि, सभ्यता संस्कृति के साथ-साथ इस काल खंड में आर्थिक विपन्नता की कगार पर था।

1.3.2 रीतिबद्ध काव्य धारा का सामान्य परिचय, प्रमुख कवि आ. केशव, आ. देव :

हिंदी साहित्य के रीतिकाल को उत्तर मध्यकाल से भी अभिहित किया जाता है। यह कालखंड लगभग 17 वीं से 18 वीं शती के बीच का रहा है। यह विकसित काव्यधारा इस कालखंड के अंतर्गत काव्य-रचना निश्चित रीति (नियमों), अलंकारों तथा नायिका-भेद को केंद्र में रखकर की जाती थी। इसी कारण ही इस का नामकरण रीतिबद्ध काव्यधारा इस नाम से ही जाना जाता है। इसमें काव्यशास्त्र के नियमों को विशेष महत्त्व प्रदान किया गया था। इसकी प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित प्रकार से रही हैं, उनका सामान्य परिचय दिया जा रहा है।

1.3.2.1 अलंकार प्रधानता -

अलंकार की प्रधानता इस काल के रीति बद्ध काव्य धारा की प्रमुख विशेषता रही है। यह युग प्रदर्शन, चमत्कार प्रधान प्रवृत्तियों का युग रहा है। इसी कारण केवल चमत्कार दिखाने के लिए अलंकारों का प्रयोग हुआ है। केवल चमत्कार के माध्यम से पाठक तथा श्रोताओं का मन पर अधिकार प्राप्त करना इस युग का लक्ष्य रहा है। इस काल के अधिकांश कवियों ने अलंकारों के लक्षण तथा उदाहरणों का रचने का कार्य किया है। अधिकांश कवियों ने संस्कृत के अलंकारशास्त्र का हिंदी में रूपांतर किया है। यह युग प्रदर्शन, चमत्कार तथा रसिकता का रहा है। इसी कारण इस युग में अलंकारों का होना स्वाभाविक रहा है। इसे स्वीकार करना ही होगा कि, अलंकारशास्त्र के ज्ञान के अभाव में उस समय के कवियों को सम्मान प्राप्त होना दूर की बात हुआ करती थी। इसी कारण ही इस युग में अलंकारिकता इतनी मात्रा में बढ़ गई कि, वह साधन नहीं बल्कि साध्य के रूप में सामने आई।

1.3.2.2 शृंगारिकता-

रीतिकाव्य में शृंगार वर्णन की प्रबलता रही है। रीतिकाल में तीन प्रकार के कवियों का निर्माण हुआ है-

रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध तथा रीतिमुक्त। इन तीनों प्रकार के कवियों ने शृंगार का वर्णन किया है। रीतिकालीन कवियों के मुख्य विषय रहे हैं कि- नायिका भेद, नख-शिख, अलंकार आदि के लक्षण प्रस्तुत करना है। इसके सिवा इन उपरविवेचित विषयों के अतिरिक्त उन्होंने अप्रत्यक्ष रूप से शृंगार का भी प्रतिपादन किया है।

विलासिता रीतिकाल की प्रमुख प्रवृत्ति रही है। इसी को आधार, केंद्र में रखकर इस काल के काव्य का सृजन हुआ है। जीवन के प्रति भौतिक दृष्टिकोण था। इस युग के कवि अधिकांश रूप में दरबारी कवि ही रहे हैं। दरबारी परिवेश में ही काव्य सृजन होता रहा। सुरा (मदिरा) तथा सुंदरी इस काल के दरबारी कवियों के सृजन के आधार रहे हैं। इसी कारण रीतिकाव्य में शृंगार के प्रधान अंग रहे हैं। रीतिकाल के काव्य में शृंगार के दोनों पक्षों का सुंदर चित्रण हुआ है। इसमें संयोग शृंगार और वियोग शृंगार का चित्रण हुआ है। संयोग शृंगार में रीतिकालीन कवि सिद्धहस्त दिखाई देते हैं। रीतिकालीन कवियों को संयोग वर्णन में जितनी सफलता मिली है, उतनी वियोग पक्ष के अंतर्गत नहीं। संयोग वर्णन में षट्क्रतु पद्धति का वर्णन मिलता है। वियोग वर्णन में बारहमासा पद्धति का चित्रण मिलता है।

रीतिकालीन कवियों ने शृंगार वर्णन भोगपरक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया है। प्रेम के स्तरीय उच्च रूप का वर्णन इसमें नहीं है। वह शारीरिक सौंदर्य तक मर्यादित अथवा सीमित नहीं है। इसमें नारी के शरीर का वर्णन किया गया है। इसका अवलोकन करने पर पता चलता है कि, इस काल के कवियों ने नारी को केवल भोग तथा विलास की वस्तु माना था। रीतिकालीन शृंगार कवि शृंगार वर्णन में रसिकता को आधार मानकर उन्होंने अपनी अभिरुचि को वरीयता प्रदान की थी। इस काल के काव्य में अश्लीलता, वासनात्मकता का प्राबल्य अधिक पाया जाता है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि, शृंगार काल का काव्य संयोग शृंगार का बादशाह रहा है।

1.3.2.3 भक्ति तथा नीति -

रीतिकाल में शृंगार की प्रधानता के साथ-साथ कम पैमाने पर भक्ति तथा नीति की अनेक सुक्तियाँ पाई जाती हैं। रीतिकालीन कवियों की भक्ति भी शृंगारिकता का ही अंग रहा है। इसमें विषुद्ध भक्ति जैसा अभाव पाया जाता है। अपनी इसी प्रवृत्ति के कारण रीति कवियों ने नायक-नायिका के बार-बार हरि, हरि और राधिका शब्दों का प्रयोग किया है। इसी परिप्रेक्ष्य में रीतिकालीन कवियों को भक्ति-परंपरा की श्रेणी में स्थान देना भ्रामक और गलत है। हाँ, इस बात की ध्यान देना अनिवार्य होगा कि, रीतिकालीन कवियों का मुख्य प्रयोजन अपने आश्रयदाताओं को रिझाना ही था। उनके रिझने पर ही कवि अपनी रचना को सफल और योग्य मानते थे।

1.3.2.4 वीर रस की कविता -

शृंगार रस के साथ-साथ इस काल में भी कम पैमाने पर वीर रस की भी कविताओं का लेखन हुआ है। इस श्रेणी में भूषण, पद्माकर, देव आदि कवियों ने अपनी ओजस्वी भाषा में वीर रसात्मक काव्य का सृजन किया है। इन कवियों की कविताओं में राष्ट्रीयता का स्वर प्रधानता में पाया जाता है। हाँ, इस काल का वीर काव्य रीतिकालीन परंपरागत शृंगारिकता के प्रभाव मुक्त पाया जाता है।

1.3.2.5 स्त्री चित्रण-

रीति काल में स्त्री के प्रति कोई उदात्त दृष्टिकोण नहीं था। स्त्री को केवल भोग विलास की वस्तु माना जाता था। रीति कालीन कवियों ने अपने आश्रय दाता राजाओं की कृपा दृष्टि प्राप्त करने हेतु स्त्री को विलासात्मकता के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया था। इस प्रकार का चित्रण करते हुए उन्होंने स्त्री के रंगीले, भडकीले, चित्र बनाकर अपने स्वामी को खुश करने का कार्य किया था। स्त्री के अन्य रूपों जैसे, गृहिणी, जननी, देवी, भगिनी, माता आदि रूपों को अनदेखा किया था। रीतिकालीन कवियों ने स्त्री के प्रति गहरी आसक्ति प्रदर्शित की है। उन्होंने स्त्री के आत्मिक सौंदर्य को बिल्कुल नहीं देखा था।

1.3.2.6 प्रकृति चित्रण -

रीतिकालीन कवियों ने प्रकृति के दोनों रूपों अर्थात् आलंबन और उददीपन का चित्रण किया है। इन कवियों ने प्रकृति का चित्रण नायक नायिका की मानसिक अवस्था के अनुकूल प्रस्तुत किया है। संयोग में प्रकृति का मनोमुग्धकारी रूप है, तो वियोग में विदग्धकारी। प्रकृति का उददीपन रूप में किया गया चित्रण मुख्यतः षटक्रतु तथा बारहमासा पद्धति का चित्रण हुआ है। रीतिकालीन काव्य में प्रकृति चित्रण प्रधानता: आलंबन रूप में हुआ है। रीति काल में आश्रय रूप में अथवा स्वतंत्र रूप में प्रकृति चित्रण कम ही हुआ है। इसका कारण यह भी रहा है कि, यह कवि सब के सब दरबारी कवि रहे हैं। इसी कारण उनके पास विस्तीर्ण प्रकृति के रूप में विहार करने के लिए उनके पास अवकाश न के बराबर था। इसी कारण रीतिकाव्य में प्रकृति के संश्लिष्ट चित्रण का अभाव है। हाँ, रीतिकालीन कवियों में सेनापति को प्रकृति-चित्रण में विशेष सफलता मिली हुई है।

1.3.2.7 प्रतियोगिता की भावना -

रीतिकालीन कवि दरबारी कवि रहे हैं। उस काल में बादशाहों के राजमहलों में उर्दू तथा फारसी कवियों के दंगल हुआ करते थे। राजदरबार में अपने आपको सर्वात्कृष्ट सिद्ध करने की होड़ में प्रतियोगिता की भावना को बढ़ावा देने का कार्य किया है।

1.3.2.8 हिंदी गद्य साहित्य का निर्माण-

रीतिकाल में गद्य लेखन का कार्य भक्तिकाल की तुलना में अधिक हुआ है। इस काल में प्राप्त ब्रज तथा राजस्थानी का गद्य निश्चय ही समृद्ध तथा प्रचुर मात्रा रहा है। खड़ी बोली गद्य के प्रारंभिक निर्माता इंशा अल्ला खाँ, सदासुखलाल, पं.सदल मिश्र और रामप्रसाद निरंजनी आदि लेखक रीति युग की देन कही जा सकती है।

1.3.2.9 विभिन्न मुखी साहित्य -

रीतिकालीन साहित्य में विभिन्नता पाई जाती है। इसमें विविधता दिखाई देती है। इस काल में वर्ण्य-विषय की दृष्टि से विषयों में वैविध्य पाया जाता है। इस काल में प्रायः संगीतशास्त्र, पाकशास्त्र, राजनीति, कामशास्त्र, सामुद्रिक शास्त्र तथा ज्योतिषी आदि का निरूपण मिलता है।

1.3.2.10 लक्षण ग्रंथों का निर्माण-

लक्षण ग्रंथों का निर्माण इस काल की महत्वपूर्ण उपलब्धि कही जा सकती है। इस युग के कवि एक ओर थे, तो दूसरी ओर आचार्य रहे। इस काल के रीतिमुक्त कवियों को छोड़कर अन्य सभी कवियों ने (रीतिबद्ध तथा रीतिसिद्ध) लक्षण ग्रंथों का निर्माण किया है। यों कहा जा सकता है कि, काव्यांगों का वर्णन करनेवाले ग्रंथों का सृजन किया गया है। लेकिन मौलिकता के अभाव में इन ग्रंथों से भारतीय काव्यशास्त्र को कोई लाभ नहीं हुआ।

1.3.2.11 ब्रज भाषा की प्रधानता-

इस युग के साहित्य की भाषा ब्रज भाषा रही है। इसके प्रमुख दो कारण रहे हैं, उसमें से एक तो यह है कि, ब्रज तो मध्यदेशीय भाषा थी और दूसरी और प्रकृति से भी मधुर थी। साथ ही ब्रज में कोमल रसों की सुंदर अभिव्यक्ति की अपार क्षमता भी रही है। तत्कालीन ब्रज भाषा में विशेष निखार, प्राजलता, प्रौढ़ता और माधुर्यता आ गई है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि, यह युग ब्रज भाषा के विकास और उत्कर्ष का युग रहा है।

1.3.2.12 जीवन दर्शन-

रीति काव्य में जीवन के बारे में भौतिक और भोगवादी दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति हुई है। इस काल में काव्य का सृजन करनेवाले कवियों ने जीवन तथा जीवन के यथार्थ रमणीय स्वरूप का चित्रण किया है। जीवन के संतुलित दृष्टिकोण का इसमें बिल्कुल स्थान नहीं है। रीतिकालीन कवियों का जीवन-दर्शन एक विशिष्ट परिधि में बंदिस्त रहा है। उनमें जीवन के व्यापक दर्शन को स्थान नहीं मिला है। इसी कारण इस काल के काव्य में जीवन के विविध उतार-चढ़ाव के बिंदुओं को इसमें किसी भी प्रकार का स्थान नहीं है।

1.3.2.13 मनोवैज्ञानिक चित्रण-

रीतिकाव्य में चित्रित आयामों का अध्ययन करने पर प्राप्त निष्कर्षों इस प्रकार प्रस्तुत किए जा सकते हैं। इस काल के काव्य में स्त्री-पुरुषों के यौन संबंधों की वर्णन प्राप्त होता है। रीतिकाल में समाज में विलासिता और कामोत्तेजना की प्रवृत्तियाँ कगार पर थी। इसीकारण उसका प्रतिबिंब तत्कालीन समाज में पाया जाता है। मनोवैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य में इसका अध्ययन करने पर इस बात को स्पष्टता के आधार पर संकेत प्राप्त होता है कि, इस काल के काव्य में मनोवैज्ञानिक आयाम पाया जाता है।

संक्षेप में कह सकते हैं कि रीतिकालीन काव्य की विशेषताओं का अध्ययन करने इन आयामों के दर्शन होते हैं। इसमें शृंगारिकता, अलंकारिकता, भक्ति तथा नीति, वीर रस, प्रकृति चित्रण, नारी चित्रण, जीवन दर्शन, मनोवैज्ञानिक चित्रण, काव्य रूप आदि विविध आयामों की चर्चा इस काल के कवियों ने अपने काव्य के माध्यम से की है।

रीतिबद्ध काव्यधारा प्रमुख कवि :

रीतिबद्ध काव्यधारा के अंतर्गत आने वाले कवियों ने संस्कृत काव्यशास्त्र को आधार मानकर उनके नियमों

के आधार पर कविता लिखी। अर्थात् छंद, रस, अलंकार, नायिका भेद आदि को आधार मानकर काव्य के अंगों के लक्षणों को बताया और उदाहरण के लिए कविता लिखी। इसलिए उन्हें 'आचार्य कवि' भी कहा जाता है।

1. आ. केशवदास का सामान्य परिचय -

रीतिबद्ध काव्य धारा के प्रवर्तक और हिंदी के प्रथम आचार्य के रूप में आचार्य केशवदास जी का नाम उल्लेखनीय माना जाता है। आ. केशवदास जी ने किसी नए मौलिक सिद्धांत का निर्माण नहीं किया लेकिन संस्कृत काव्यशास्त्र को आधार बनाकर काव्यांगों की सटीक समीक्षा की जिससे वे हिंदी में प्रथम आचार्य बने। उनके जीवन एवं साहित्य का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है-

आ. केशवदास का जीवन परिचय :

आचार्य केशवदास के जीवन को लेकर विद्वानों काफी मतभेद है। अधिकांश विद्वानों के मतानुसार इनका जन्म संवत् 1612 में हुआ और उनकी मृत्यु संवत् 1674 में हुई ऐसा मानते हैं। केशवदास का जन्म एक संस्कारी और संपन्न ब्राह्मण कुल में हुआ। उनके पिताजी का नाम काशीनाथ था जो संस्कृत भाषा और ग्रंथों के प्रकांड पंडित थे। उनके परिवार के सभी सदस्य संस्कृत के विद्वान थे। उनके घर में आम बातचीत भी संस्कृत भाषा में होती थी। इस तरह केशवदास को विरासत में ही पांडित्य मिला था। लेकिन उन्होंने अपने वंशजों की तरह संस्कृत भाषा में कविता न लिखकर जनभाषा में काव्य लिखा जिससे उनके मन में हीन भावना जागी हुई थी- “भाषा बोलीन जान हि, जिन के कुल के दास, भाषा कमी हो मंद मति, ते ही कुल केशव दास।” इस तरह उन्होंने अपने कुल में खुद को मतिमंद माना। लेकिन वस्तुतः केशवदास का ज्ञान क्षेत्र विपुल था। वे विभिन्न शास्त्रों के ज्ञाता थे। वे स्वभाव से बहुत ही विनम्र और शांत थे। उनमें स्वाभिमान अत्यंत प्रबल था। स्वभाव से स्पष्टवक्ता और निर्भिक थे। वे राजा इंद्रजीत सिंह के दरबार में राजकवि थे। लेकिन हिंदी साहित्य जगत् में उन्हें जितना सम्मान और आदर मिलना चाहिए था, उतना मिल न सका। समीक्षकों ने बहुत ही रूक्षता से उनकी कविता की समीक्षा करते हुए उनकी कविता को कठिन काव्य का प्रेत और हृदयहीन कवि तो किसी ने दुरूह कवि कहा।

आ. केशवदास की रचनाओं का परिचय :

आचार्य केशव के जीवन परिचय को लेकर विद्वानों में एकमत नहीं, उसी तरह उनके साहित्य को लेकर भी एकमत नहीं है। लेकिन उनकी प्रामाणिक रचनाओं के नाम इसप्रकार हैं-

- | | | |
|-----------------|------------------------|-----------------|
| १. रसिक प्रिया | २. कविप्रिया | ३. रामचंद्रिका |
| ४. छंद माला | ५. वीरसिंह देव चरित | ६. रतन बावणी |
| ७. विज्ञान गीता | ८. जहाँगीर जस चंद्रिका | ९. नख-शिख आदि । |

‘रसिकप्रिया’, ‘नख-शिख’ और ‘कविप्रिया’ काव्यशास्त्र पर आधारित ग्रंथ है। ‘छंदमाला’ में मात्रिक और वार्णिक छंदों का विवेचन किया गया है। ‘रामचंद्रिका’ इस रचना में भगवान राम के जीवन को आधार

बनाकर महाकाव्य लिखा गया है। आ. केशव की अक्षय कीर्ति का आधार 'रामचंद्रिका' इस महाकाव्य को माना जाता है। यह रचना हिंदी साहित्य में सर्वाधिक चर्चित और प्रसिद्ध रही है। 'वीरसिंह देव चरित', 'रतनबावणी', 'जहाँगीर जस चंद्रिका' आदि ग्रंथों में संबंधित राजा-महाराजाओं की वीरगाथा तथा यशोगान किया गया है। उनका 'विज्ञानगीता' एक आध्यात्मिक ग्रंथ है जिस में मोह और विवके नामक राजाओं का प्रतिकात्मक चित्रण है। मोह पर विवके की विजय इस ग्रंथ का उद्देश्य है। इन ग्रंथों के वर्ण्य विषय के आधार पर कहा जा सकता है कि आचार्य केशव दास संसार के अनेकविध विषयों के ज्ञाता थे।

आ. केशवदास का आचार्यत्व :

आचार्य केशवदास संस्कृत के प्रकांड पंडित थे। उन्होंने संस्कृत के काव्यशास्त्रों के नियमों पर आधारित काव्य के विभिन्न अंगों की गहराई से विवेचना की और उसके उदाहरणों के लिए कविता की रचना की। संस्कृत के साथ उनका ब्रजभाषा पर भी प्रचंड अधिकार था। अलंकारों और छंदों के वे प्रकांड ज्ञात थे। इसके अतिरिक्त उन्हें भूगोल, ज्योतिषशास्त्र, संगीतशास्त्र, राजनीति और धर्मनीति आदि का भी पर्याप्त ज्ञान था। साथ ही उनमें तर्क की शक्ति भी असामान्य थी। उनके काव्यों में आए संवादों से उनकी तर्कशक्ति को समझा जा सकता है। जैसे- सुमति-विमति संवाद, सवन-बाणासुर संवाद, रावण-हनुमान संवाद आदि विशेष प्रसिद्ध हैं। 'रामचंद्रिका' में रावण-हनुमान के संवादों में बौद्धिकता एवं तार्किकता का सुंदर वर्णन है। हिंदी साहित्य में संवाद लेखन में आ. केशवदास का नाम अक्षय कीर्ति का आधार बना है।

आ. केशवदास रीतिकाल के आचार्य और अलंकारवादी कवि थे। इसकारण उनकी कविताओं में अलंकारों की भरमार देखने मिलती है। उसके साथ ही उन्होंने अपने अक्षर पांडित्य को दिखाने के लिए काव्य में कठिन एवं क्लिष्ट शब्दों की भरमार की है इसलिए उनकी कविता को कठिन काव्य का प्रेत कहा जाता है। उन्होंने 'रामचंद्रिका' ग्रंथ में श्लेष अलंकार का जरूरत से ज्यादा प्रयोग किया है। एक-एक पद्य खंडमें तीन-तीन अर्थ भर दिये हैं। ऐसी स्थिति में पाठक काव्य का रसानंद लेने के बजाए कवि के बौद्धिक चमत्कार में उलझकर रह जाता है। इसकारण वरिष्ठ समीक्षक आ. रामचंद्र शुक्ल ने कहा है, 'केशव कठिन काव्य के लेखक है।'

आ. केशवदास काव्य की भाषाशैली :

आ. केशवदास की भाषा मूलतः ब्रज है। लेकिन उन्होंने संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, अवधि, बूँदेली, अरबी, फारसी, तुर्की शब्दों का भी प्रयोग किया है। केशव संस्कृत के प्रकांड पंडित होने के कारण उनकी कविता संस्कृत शब्दावली से भरी है। केशव की रचना में मात्रिक और वार्णिक दो ही प्रकार के छंद मिलते हैं। केशव ने इतने अधिक छंदों का प्रयोग किया है कि उसके पूर्व अन्य किसी कवि ने इतना प्रयोग नहीं किया। 'रामचंद्रिका' में पूरे ५८ छंदों का प्रयोग किया है। वे अलंकारवादी कवि होते हुए भी काव्य में रस को भी पर्याप्त महत्त्व देते थे। इसकारण हिंदी साहित्य में आ. केशवदास जी को प्रथम आचार्य कवि, प्रबंधकार माना जाता है।

2. देव का सामान्य परिचय -

रीतिकाल के रीतिबद्ध काव्यधारा के प्रतिभाशाली कवियों में कवि देव का नाम विशेष उल्लेखनीय है। कवि देव में कवि और आचार्य इन दोनों का सुंदर समन्वय मिलता है, जिससे रीतिबद्ध काव्यधारा में उनका योगदान अतुलनीय माना जाता है। उन्होंने हिंदी कविता को समृद्ध किया और हिंदी काव्यांगों की भी सटीक विवेचना की।

कवि देव का जीवन परिचय -

कवि देव का जन्म इटावा, उत्तर प्रदेश में संवत् 1703 में हुआ था। इनका पूरा नाम देवदत्त है। कवि देव जाति से कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। इनका देहांत संवत् 1824 माना जाता है। कवि देवदत्त अपनी जीविका चलाने के लिए आजम शाह, कुशल सिंह और राजा भोगीलाल के दरबार में कवि के रूप में कार्यरत रहे। इनके गुरु का नाम हितहरिवंश था। वे किसी भी राजा के दरबार में स्थायी रूप में नहीं रहे और भारत भर में भ्रमण करते रहे।

कवि देव का साहित्य परिचय -

कवि देव ने कवि और आचार्य के रूप में हिंदी साहित्य को समृद्ध किया। इनके ग्रंथों की संख्या 72 बताई जाती है। इनके साहित्य को काव्यशास्त्रीय ग्रंथ और अन्य ग्रंथ इन दो भागों में विभाजित किया जाता है। आ. रामचंद्र शुक्ल जी ने 'हिंदी साहित्य का इतिहास' ग्रंथ में उनकी रचनाओं की जानाकारी दी है, वह इसप्रकार है-

१. भाव विलास	२. शब्दरसायन	३. अष्टयामी	४. सुखसागरतरंग
५. भवानीविलास	६. रागरत्नाकर	७. प्रेमतरंग	८. प्रेमपच्चीसी
९. कुशलविलास	१०. जगदर्शन पच्चीसी	११. अष्टायाम	१२. तत्त्वदर्शन पच्चीसी
१३. देवचरित्र	१४. आत्मदर्शन पच्चीसी	१५. जाति विलास	१६. देव माया प्रपंच
१६. प्रेमचंद्रिकाह	१७. सुजान विनोद		

कवि देव का आचार्यत्व -

कवि देव ने काव्यांगों का निरूपण करते हुए लक्षण ग्रंथ अर्थात् काव्यशास्त्रीय ग्रंथों की भी रचना की। उन्होंने उल्लेखनीय काव्यशास्त्र ग्रंथ लिखकर अपने आचार्यत्व को सिद्ध किया। उनके काव्यशास्त्रीय ग्रंथों 'शब्द रसायन' ग्रंथ विशेष उल्लेखनीय हैं। इसमें कविता का स्वरूप, शब्द की शक्तियाँ, नवरस, नायिकाभेद, रीति गुण आदि का विस्तार से विवेचन किया गया है। उनके काव्यशास्त्रीय ग्रंथों पर 'काव्यप्रकाश', 'साहित्यदर्पण', 'रसतरंगिनी' और 'रसमंजरी' इन ग्रंथों का प्रभाव दिखाई देता है। 'भावविलास' इस ग्रंथ में रस के भेदों, नायक-नायिका भेद का मार्मिक वर्णन है। काव्य के गुण और दोषों को लेकर कवि देव ने काव्यशास्त्रीय मीमांसा की

है, जिसे हिंदी साहित्य में महत्वपूर्ण माना जाता है! उन्होंने संस्कृत के छंद ग्रंथों के आधार पर 'पिंगलशास्त्र' की रचना की है। लेकिन वरिष्ठ समीक्षक रामचंद्र शुक्ल ने कवि देव के ग्रंथों की अधिकता को देखकर उनके आचार्यत्व प्रश्नचिन्ह लगाया है। उनके मतानुसार कवि देव ने अपने पूर्ववर्ती संस्कृत ग्रंथों को ही आधार बनाकर कवित्वों को इधर-उधर करके दूसरे कर्म में लिखकर नए ग्रंथों की रचना की है।

कवि देव के काव्य की विशेषता -

कवि देव विविध विषयों के ज्ञाता थे। भारतभर में भ्रमण करने के कारण उन्हें लोक व्यवहार का अच्छा ज्ञान था। उनकी घुमक्कड़ी वृत्ति के कारण उन्हें भारतभर की विभिन्न संस्कृति, रीति-रिवाज, खान-पान, वेशभूषा आदि का अच्छा ज्ञान था जो उनकी कविताओं में दिखाई देता है। उनकी कविताओं में संपूर्ण काव्यांगों का विस्तार से विवेचन हुआ है। उनकी कविताओं में शृंगार रस का प्रमुख रूप से प्रयोग हुआ है। नायिका भेद में उन्होंने शृंगार रस का अनुपम प्रयोग किया है। देव ने संयोग, वियोग शृंगार के साथ-साथ नायिका के गंभीर प्रेम को भी सुंदर विवेचन किया है। नववधु के विदाई के समय माता-पिता और सखियों की ओर से शील और आचरण संबंधी नसीहतों को नववधु गंभीरता से सुनती है। इस दृश्य को साकार करते हुए कवि देव लिखते हैं-

“गौने के चार चली दुलही, लोगन भूषन भेष बनाए।

सील सयान सखीन सिखायो, बडे सुख सासुरे हू के सुनाए।

बोलियों बोल सदा हंसि कोमल, जे मनभावन के मन भाए।

यों सुनि औछे उरोजन पै अनुराग के अंकुर से उठि जाए।”

कवि देव की कविताओं में प्रेम की अनुभूति की तीव्रता दिखाई देती है। लेकिन उनका प्रेम विषयजन्य नहीं बल्कि सात्विक है। उनके दाम्पत्य प्रेम में सात्विक प्रेम उच्च कोटि का है जो हृदय से जन्मा है, इसमें वासना उल्लेख नहीं। इसीकारण कवि देव ने दाम्पत्य प्रेम में राधा-कृष्ण के शुद्ध प्रेम को दाम्पत्य प्रेम का आधार माना है। उनकी कविताओं में रूप सौंदर्य, भाव सौंदर्य, नायिका सौंदर्य, प्रकृति सौंदर्य का अनुपम वर्णन मिलता है। उनकी कविताओं में सौंदर्य का चित्रण मौलिक है। कवि देव ने प्रकृति का चित्रण प्रमुख रूप से उद्दीपन रूप में किया है। देव की कविताओं में काव्यांगों का सटीक विवेचन हुआ है। इसमें नायिका भेद, काव्य गुण-दोष, प्रयोजन, रस, राति आदि का संस्कृत ग्रंथों के आधार पर विवेचन है। उनकी कविता का प्रमुख स्वर शृंगारिक है लेकिन आगे चलकर उनकी कविता में भक्ति एवं वैराग्य का भी भाव दिखाई देता है। कवि देव ने अपनी कविताओं में तत्सम, तद्भव, प्राकृत, अपभ्रंश, फारसी और उत्तर भारत की बोलियों के शब्दों का प्रयोग किया है। उन्होंने अनुप्रास, यमक आदि अलंकारों का प्रमुख रूप से प्रयोग किया है लेकिन अन्य अलंकारों का भी समुचित प्रयोग किया है। भाव और भाषा की दृष्टि से कवि देव अत्युच्च कोटि के कवि रहे हैं। इसकारण रीतिबद्ध काव्यधारा में कवि देव का नाम विशेष उल्लेखनीय रहा है।

1.3.3 रीतिसिद्ध काव्य धारा सामान्य परिचय, प्रमुख कवि बिहारी एवं सेनापति । :

रीतिकाल में रीतिसिद्ध काव्यधारा भी अपना अलग महत्त्व रखती है। वैसे रीतिबद्ध और रीतिसिद्ध काव्यधारा में कोई विशेष अंतर नहीं है। लेकिन रीतिसिद्ध काव्यधारा के कवियों ने केवल कविताएं लिखी, उन्होंने कोई भी लक्षणग्रंथ नहीं लिखा और नहीं अपना आचार्यत्व का प्रदर्शन किया। रीतिबद्ध कवियों ने संस्कृत के काव्यग्रंथों को आधार बनाकर कविता लिखी और उसे स्पष्ट करने के लिए लक्षण ग्रंथ भी लिखे। लेकिन रीतिसिद्ध कवियों ने संस्कृत काव्यग्रंथों के आधार मानकर लक्षणग्रंथ नहीं लिखे बल्कि वे इससे अलग रहकर कविता लिखते रहे। लेकिन इनकी कविताओं में काव्यरीति को ध्यान में रखा गया था और उसके आधार पर काव्य रचना होती थी, इसलिए उसे रीतिसिद्ध काव्यधारा कहा जाता था। अर्थात् जिन्होंने लक्षण ग्रंथ नहीं लिखे, लेकिन उनकी रचना पूर्ण रूप से रीतिबद्ध थी, उन्हें रीतिसिद्ध कवि कहा जाता है। रीति की जानकारी होने के बावजूद उन्होंने रीति का निरूपण या समीक्षा नहीं की। रीतिसिद्ध काव्यधारा की प्रमुख विशेषताएं इसप्रकार हैं-

1.3.3.1 शास्त्रीयता का प्रयोग :

रीतिबद्ध कवियों की तरह ही रीतिसिद्ध कवि संस्कृत काव्यशास्त्र के ज्ञाता थे। उन्होंने अपनी कविता में काव्यांगों की शास्त्रीय नियमों का पालन करके कविता लिखी थी लेकिन उन्होंने कोई लक्षण ग्रंथ लिखकर पांडित्य प्रदर्शन नहीं किया। उन्होंने अपनी कविता में नायक-नायिका भेद, रस, छंद, काव्य के गुण-दोष, छंद, अलंकार आदि का शास्त्रीय विवेचन करके ग्रंथ लिखने के बजाए इनके शास्त्र पर आधारित अच्छे-अच्छे मौलिक उदाहरण अपने कविता में लिखे हैं। इसकारण इनकी कविता शास्त्र के निरूपण में दबकर बोझिल नहीं बनी बल्कि शास्त्रीयता के सरस उदाहरणों के कारण सुबोध बनी है। उन्होंने काव्यशास्त्र, नीतिशास्त्र, आयुर्वेद, राजनीति शास्त्र, दर्शन, गणित, ज्योतिष आदि शास्त्रों के सैद्धांतिक पक्ष से ज्यादा उसके लोकोपयोगी पक्ष का विवेचन किया। अपनी कविताओं इन शास्त्रों के सटीक और सुबोध उदाहरण देकर उन्होंने अपने शास्त्रीय ज्ञान का भी परिचय दिया है।

1.3.3.2 राजाश्रय और राजा का गुणगान :

रीतिसिद्ध कवि किसी न किसी राजा के दरबार में राजकवि के रूप में कार्यरत थे। अपनी जीविका को चालने के लिए उन्हें राजाश्रय में रहना पड़ता था। इसकारण वे आश्रित राजा के रुचि को ध्यान में रखकर उसकी प्रशंसा में कविता लिखते थे। कवि बिहारी, कवि ठाकुर, कवि सेनापति आदि कवियों की कविता इस बात का प्रमाण है। इसमें कवि बिहारी का नाम शीर्षस्थ है। कवि बिहारी जयपुर के राजा जयसिंह के दरबारी कवि थे। उन्होंने अपने “नहिं पराग, नहिं मधुर मधु, नहिं विकास इहिं काल, अली कलि ही सो बिंध्यो, आगे कौन हवाल” इस एक दोहे से राजा को अपने कर्तव्य का ध्यान दिलाया था। राजा इस दोहे से इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने कवि बिहारी को आगे से हर एक दोहे के लिए एक सुवर्ण मुद्रा इनाम के रूप में देना शुरू किया था। राजाश्रय में रहने वाले इन कवियों ने राजा की अभिरुचि, शूरता, पराक्रम, राजा की सत्ता, समाज जन, संस्कृति, लोक-व्यवहार आदि का अपनी कविताओं में वर्णन किया है। इसकारण उन्हें राजदरबार और समाज में बहुत बड़ी प्रतिष्ठा मिलती थी।

1.3.3.2 शृंगार का चित्रण :

रीतिकालीन काव्यधाराओं में शृंगार रस का चित्रण एक प्रमुख प्रवृत्ति रही है। रीतिसिद्ध कवियों ने भी शृंगार के चित्रण को अपनी कविताओं में महत्वपूर्ण स्थान दिया है। रीतिसिद्ध कविता ही शृंगार के उच्च कोटि के उदाहरणों के लिए हिंदी साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान रखती है। रीतिसिद्ध कवियों ने लोक-व्यवहार की अच्छी समझ होने के कारण शृंगार रस के संयोग और वियोग इन दोनों पक्षों का यथार्थवादी वर्णन अपनी कविताओं में किया है। दाम्पत्य जीवन के शृंगार चित्रण के विभिन्न रूपों का वर्णन इनके काव्य में दिखाई देता है। शृंगार के चित्रण में कवि बिहारी को बहुत सफलता मिली है। उन्होंने संयोग और वियोग शृंगार के जो रूप सामने लाए हैं, उतने सहज और स्वाभाविक रूप हिंदी साहित्य में दुर्लभ हैं। नायक-नायिका के विभिन्न हावभावों, चेष्टाएं और अंगप्रत्यांग का शृंगारिक वर्णन स्वच्छंदता से इन कवियों ने किया है। इसलिए शृंगार के बिना इनकी कविता पूरी ही नहीं सकेगी। शृंगार का विलोभनीय चित्रण रीतिसिद्ध की प्रमुख विशेषता है इसके बिना उनकी कविता बेजान और अधूरी प्रतीत होगी।

1.3.3.4 सौंदर्य का चित्रण :

रीतिसिद्ध कवि सौंदर्यवादी रहे हैं। राजाश्रय में रहने के कारण उन्होंने हमेशा से राज दरबार की सुंदरता और भव्यता को अनुभव किया था। समाज में आदर का स्थान होने के कारण वे हमेशा संपन्न लोगों के सान्निध्य में रहते थे। इसकारण नारी सौंदर्य के उत्कृष्ट उदाहरण उनकी कविता में मिलते हैं। नायिका के अंग-प्रत्यांग का वर्णन उन्होंने स्वच्छंदता के साथ किया है। साथ ही नायिका के हाव-भाव, उसकी नजाकतों का सूक्ष्म नरीक्षण उनकी कविताओं में दिखाई देता है। इस दृष्टि से कवि बिहारी की कविता उच्च कोटि की है। साथ ही दाम्पत्य जीवन के वर्णन में इन कवियों की दृष्टि आंतरिक भाव से ज्यादा नायिका की शारीरिक सुंदरता पर ज्यादा टिकी है। कुछ कवियों ने नायिका के आंतरिक भावों का भी सुंदर वर्णन किया है।

1.3.3.5 प्रकृति सौंदर्य का चित्रण :

रीतिसिद्ध कवियों ने प्रकृति की सुंदरता का चित्रण स्वतंत्र रूप से नहीं किया है। लेकिन नायक-नायिका के प्रेमपूर्ण क्रिया-कलापों का वर्णन करते हुए उन्होंने प्राकृतिक सुंदरता का आधार लिया है। अर्थात् इनकी कविता में प्रकृति का चित्रण उद्दीपन रूप में आता है। इस दृष्टि से कवि सेनापति, कवि पद्माकर की कविताएं विशेष उल्लेखनीय रही हैं। कवि बिहारी ने भी शृंगार रस की पुष्टि के लिए प्रकृति का बहुत ही मादक एवं उद्दीपक रूप साकार किया है। जैसे : वसंत ऋतु में मोहक मंद हवा के प्रवाह का चित्रण करते हुए कवि बिहारी लिखते हैं- “रनित भृंग घंटावली, झरत दान मधु नीर, मंद-मंद आवत चल्यो, कुंजर-कुंज समीर।” इस तरह रीतिसिद्ध कवियों ने शृंगार रस को मजबूत बनाने के लिए प्रकृति का सुंदर चित्रण किया है।

1.3.3.6 भक्ति और नीति का चित्रण :

रीतिसिद्ध कवियों की कविताओं में शृंगार रस की भले ही प्रधानता हो लेकिन वे लोक व्यवहार को भी महत्व देते थे। इसकारण इनकी कविताओं में भक्ति एवं नीति का चित्रण दिखाई देता है। उन्होंने दाम्पत्य प्रेम के चित्रण

करते हुए आत्मा-परमात्मा के आध्यात्मिक प्रेम का महत्त्व बताया है। सात्विक प्रेम के चित्रण में वे कृष्ण एवं राधा के प्रेम का भक्तिमयता से करते हैं। साथ ही वे दरबारी कवि होने के कारण नीतिशास्त्र की उन्हें अच्छी समझ थी। लोक व्यवहार को लेकर उन्होंने अनेक नीतिपरक दोहों की रचना भी की है।

1.3.3.2 विभिन्न शास्त्र और दर्शन का वर्णन:

रीतिसिद्ध कवि बहुज्ञाता थे। उन्हें लोक जीवन से जुड़े अधिकांश शास्त्रों का ज्ञान था। शृंगार के चित्रण के साथ-साथ उन्होंने आध्यात्मिक, भक्ति, नीतिशास्त्र, दर्शनशास्त्र आदि विभिन्न विषयों पर भी कविता लिखी है। शास्त्रों के वर्णन में उन्हें गहरी रुचि रही है। कवि बिहारी ने भक्ति और नीति के साथ दर्शनशास्त्र पर भी गहराई से लेखन किया है। संसार, संसार की नश्वरता, जीवन की क्षणभंगुरता, ईश्वर का अस्तित्व, उसकी अनंतता आदि पर रीतिसिद्ध कवियों ने दार्शनिक लेखन किया है।

1.3.3.8 मुक्तक छंद का प्रयोग :

रीतिसिद्ध कवियों ने प्रमुख रूप से मुक्तक काव्य का प्रयोग किया है। दोहों के लघु आकार और गहन अर्थ स्पष्ट करने की दृष्टि से मुक्तक काव्य प्रवाही होता है। मुक्तक काव्य के कारण रीतिसिद्ध कवियों ने दोहा, सोरठा, सवैया, कवित्त आदि आकार में छोटे होने वाले छंदों का प्रमुख रूप से प्रयोग किया है। इसमें भा दोहा और सोरठा का सबसे ज्यादा प्रयोग हुआ है। क्योंकि ये छंद कम शब्दों में ज्यादा आशय बताने के लिए उपयोगी होते हैं। इसीकारण बिहारी के दोहों के संदर्भ में कहा जाता था कि, उनमें 'गागर में सागर' भरने की क्षमता है। कवि बिहारी ने अपना संपूर्ण साहित्य मुक्तक काव्य प्रकार में ही लिखा है।

1.3.3.9 अलंकारों का प्रभावी प्रयोग :

रीतिसिद्ध कवियों को अलंकारों के प्रति गहरा लगाव रहा है। इन कवियों ने अलंकारों का बहुत ही ज्यादा मात्रा में कविता में प्रयोग किया है। इस प्रवृत्ति को देखकर ही मिश्रबंधुओं ने इस कालखंड को 'अलंकार काल' नाम दिया था। काव्य की कलात्मकता को बढ़ाने के लिए उन्होंने विभिन्न अलंकारों का प्रभावी प्रयोग किया है। इस दृष्टि से कवि बिहारी को अलंकारों के सर्वोत्कृष्ट कवि माना जाता है। कविता में चमत्कार पूर्ण प्रभाव निर्माण करने के लिए इन कवियों ने अलंकारों का बहुत ही सुझ-बूझ के साथ प्रयोग किया है।

1.3.3.10 ब्रजभाषा का कलात्मक प्रयोग :

रीतिसिद्ध कवियों ने ब्रजभाषा का कलात्मक और सुमधुर प्रयोग अपनी कविताओं में किया है। कविताओं में ब्रजभाषा का ऐसा सुंदर प्रयोग हिंदी साहित्य में अन्य जगहों में शायद ही हुआ होगा। उनकी शृंगारिक एवं सकुमार भावों की अभिव्यक्ति के लिए ब्रजभाषा ही सबसे ज्यादा उपयोग और प्रभावी थी। विद्वान रीतिसिद्ध काव्य को ब्रजभाषा की दृष्टि से सबसे उन्नत काल मानते हैं। इस दृष्टि से बिहारी की कविता बहुत ही सरस बनी हुई है। रीतिसिद्ध काव्यधारा में ब्रजभाषा का कलात्मक और मनमोहक रूप उसकी प्रमुख उपलब्धि मानी जाती है।

रीतिसिद्ध कवि बिहारी और आलम का सामान्य परिचय :

1. बिहारी का सामान्य परिचय-

बिहारी हिंदी साहित्य के लोकप्रिय कवि है। उन्हें केवल रीतिकाल तक सीमित करते हुए उनके साहित्य का मूल्यांकन करने पर यह कहा जा सकता है कि, वे समस्त हिंदी साहित्य के लोकप्रिय कवि है। उन्हें रीतिकालीन प्रणय-भावना और श्रृंगार भावना की अभिव्यक्ति करने वाले प्रतिनिधि के रूप में जाना जाता है। वे हिंदी साहित्य के श्रृंगारी कवि है। वे कई राजाओं के आश्रय में रहे थे। अनेक राजाओं ने उनके दोहों पर मंत्रमुग्ध होकर उन्हें वार्षिक वेतन में किसी भी प्रकार की कसर नहीं छोड़ी थी। मिर्जा राजा जयसिंह उनके सर्वाधिक आश्रयदाता राजा रहे। राजा जयसिंह मझली रानी के काफी दीवाने हो गए थे। वे अपना राज-काज के कर्तव्यों की ओर उनका ध्यान नहीं था। उसी समय बिहारी ने एक दोहा लिखकर राजा के पास भेज दिया जिससे राजा जयसिंह अपने कर्तव्य के प्रति जागृत हो गए, वह बहुचर्चित दोहा इस प्रकार रहा है-

“नहिं पराग, नहिं मधुर मधु, नहिं विकास इहिं काल,
अली कलि ही सो बिंध्यो, आगे कौन हवाला।”

इसी दोहो ने उन्हें काफी प्रसिद्धी के कगार पर खड़ा किया। इसी दोहे से राजा कर्तव्यदक्ष बन गए। उन्होंने आगे चलकर बिहारी को अपने दरबार में दरबारी कवि के रूप में स्थान दिया और राजा जयसिंह के अनुरोध पर ही बिहारी ने सतसई लिखने का कार्य किया। जयसिंह ने के प्रत्येक दोहे पर उन्हें सोने की एक-एक अशर्फी पुरस्कार के रूप में प्राप्त हुआ करती थी।

बिहारी जीवन परिचय -

बिहारी का जन्म ग्वालियर में सवन्त 1652 में हुआ था। उनका ब्राह्मण जाति में जन्म हुआ था। उनका बचपन बुंदेलखंड में व्यतीत हुआ। इनके पिता का नाम केशवराय था। वे निम्बाई संप्रदाय के महंत नरहरिदास के शिष्य थे। बिहारी का अध्ययन करने वाले कुछ विद्वान केशवराय और केशवदास को एक ही मानते हैं। कहा जाता है कि, बाल्यावस्था में जब बिहारी आठ साल के थे, तब बिहारी के पिता ने उन्हें ग्वालियर से ओरछा छोड़ा था। वे ओरछा से वृंदावन चले गए। उन्होंने अपनी इच्छा के अनुसार अनेक स्थानों पर भ्रमंती की। साहित्य के साथ-साथ उन्होंने संगीत का भी गहरा अध्ययन किया। बिहारी का जीवन बुंदेलखंड, मथुरा, आग्रा तथा जयपुर में व्यतीत हुआ। उनकी जीवनसंगिनी अर्थात् उनकी पत्नी की मृत्यु होने पर वे संसार से विरक्त हो गए उनका सवन्त 1720 में वृंदावन में स्वर्गवास हुआ।

बिहारी का साहित्य संसार-

कवि बिहारी ने एक मात्र रचना “बिहारी सतसई” जिसके माध्यम से वे हिंदी साहित्य में अजरामर हो चुके हैं। इस रचना में 713 दोहे हैं। यह एक मुक्तक रचना है। हिंदी साहित्य में सर्वश्रेष्ठ दस काव्य ग्रंथों का चयन किया जाए तो इसमें सर्वप्रथम स्थान पर बिहारी सतसई को दिया जाता है। सतसई का प्रमुख विषय श्रृंगार रस

का है। राधा-कृष्ण को आधार मानकर बिहारी ने शृंगार वर्णन प्रस्तुत किया है। बिहारी ने अलंकार, रस, भाव, नायिका-भेद, ध्वनि, वक्रोक्ति, रीति, गुण आदि काव्य के अंग-उपांगों को आधार मानकर सुंदर, मनोहारी दोहों की रचना की है। 'बिहारी सतसई' प्रमुख रूप से शृंगार प्रधान रचना है। इसमें प्रमुख रूप से संबंधित नख-शिख, ऋतु-वर्णन नायक- नायिका भेद, के साथ शृंगार के दोनों पक्षों का प्रभावी चित्रण हुआ है।

इसके सिवा भक्ति, नीति, वैराग्य और अन्य सामान्य विषयों से संबंधित दोहे हैं। "बिहारी सतसई" हिंदी साहित्य की अनमोल निधि है। इस ग्रंथ पर अब तक दर्जनों टीकाएँ लिखी जा चुकी हैं। सतसई में रीतिकालीन कविता के संपूर्ण लक्षण और गुण विद्यमान हैं। बिहारी ने सतसई के माध्यम से "गागर में सागर" भरने की कहावत चरित्रार्थ होती है।

बिहारी काव्य का भावपक्ष-

बिहारी प्रेम के कवि है। असल में वे शृंगारी कवि रहे हैं। इसलिए उन्हें रीतिकालीन शृंगार भावना के प्रतिनिधि कवि रहे हैं। बिहारी सतसई का प्रमुख विषय प्रेम तथा शृंगार का वर्णन से संबंधित रहा है। बिहारी ने राधा-कृष्ण के माध्यम से शृंगार वर्णन किया है। यहाँ राधा सामान्य नायिका के रूप में चित्रित है, तो कृष्ण भी एक सामान्य नायक के रूप में ही है। राधा-कृष्ण की प्रेम की लीलाओं का सूक्ष्म तथा मनोवैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य में उनका चित्रण प्रस्तुत किया गया है। शृंगार वर्णन की कोई भी स्थिति बिहारी की सूक्ष्म नजरों नहीं छूट सकी। नायिका के नख-शिख वर्णन में बिहारी का मन खूब रमा है। बिहारी ने अपने दोहों में राधा और कृष्ण के दोनों के रूप सौंदर्य का अनुपम वर्णन प्रस्तुत किया है।

बिहारी ने अपने दोहों में शृंगार के दोनों पक्षों का वर्णन प्रस्तुत किया है। हाँ, संयोग वर्णन के दोहों में बिहारी को जितनी सफलता मिली है, उतनी वियोग वर्णन में नहीं मिल सकी। संयोग वर्णन में उनका मन अधिक रमा है। वियोग में उतना नहीं है। उन्होंने अतिषय तन्मयता से संयोग वर्णन किया है। संयोग पक्ष की कोई भी स्थिति उनकी नजरों से नहीं छूट सकी। संक्षेप में कहा जा सकता है कि, वियोग शृंगार में उनका अनुभूति कम रही होगी। इसी कारण उनका विरह-वर्णन असफल तथा हास्यास्पद हो गया है। उनका वियोग वर्णन अतिशयोक्तिपूर्ण कोटि के अंतर्गत आता है।

बिहारी का शृंगार वर्णन वासनात्मक तथा अश्लील रहा है। प्रेम का कोई विशिष्ट उच्च रूप नहीं है। बिहारी की दृष्टि शारीरिक सौंदर्य तक की सीमित रही है। उन्होंने अपने दोहों में आत्मिक सौंदर्य का वर्णन नहीं किया है। बिहारी ने भक्ति तथा नीति संबंधी दोहे भी लिखे हैं, इसी आधार पर उन्हें भक्त कवि और नीतिकार नहीं की श्रेणी नहीं प्रदान की जा सकती है। इनकी भक्ति तथा नीति भी शृंगारिकता का अंग है। भक्त को जिस प्रकार का हृदय मिलना चाहिए, वैसा बिहारी को प्राप्त नहीं हुआ है। इसी परिप्रेक्ष्य बिहारी शृंगारी कवि है। संक्षेप में बिहारी प्रेम तथा अनुराग के कवि है।

बिहारी का कला पक्ष-

'बिहारी सतसई' मुक्तक रचना है। मुक्तक के सभी गुण अपने भव्यतम रूप में सतसई विद्यमान हैं। भाषा की

समाहार शक्ति और समाज व्यक्ति दर्शनीय है। उनके एक-एक दोहे भाव से भरे हैं। इसलिए कहा जाता है कि, 'बिहारी सतसई' एक ऐसी मीठी रोटी है, जिसको जिधर से भी तोड़ो उधर से मीठी ही लगती है।

बिहारी के काव्य का भाषा पक्ष-

बिहारी ने शुद्ध ब्रज भाषा का प्रयोग किया है। चलती हुई साहित्यिक ब्रजभाषा प्रयोग उन्होंने अपने दोहों में किया है। शब्द-विन्यास तथा वाक्य-विन्यास सुव्यवस्थित है। नाद-सौंदर्य इनकी भाषा का सहज गुण है। बुंदेलखंडी तथा पूर्वी हिंदी का उनकी भाषा पर प्रभाव है।

बिहारी के काव्य का अलंकार पक्ष-

बिहारी अलंकारवादी नहीं थे। फिर भी उन्होंने स्वच्छंद रूप से अलंकारों का प्रयोग किया है। एक ही दोहे में अनेक अलंकारों के दर्शन होते हैं। उन्होंने अपने दोहों में परंपरागत अलंकारों का प्रयोग किया है। सादृश्यमूलक अलंकारों को में उपमा, रूपक उत्प्रेक्षा आदि का प्रयोग अत्याधिक रूप से किया है। बिहारी को सबसे प्रिय अलंकार के रूप में रूपक अलंकार प्रिय रहा है।

बिहारी के काव्य का छंद पक्ष-

बिहारी सतसई में केवल दो ही छंदों का प्रयोग किया है। वे हैं- दोहा तथा सोरठा। सोरठा छंद रचना दोष रहित है। दोहा छंद बिहारी का प्रिय छंद रहा है।

सतसई की महत्ता-

बिहारी सतसई हिंदी की श्रेष्ठ रचना है। हिंदी के दस श्रेष्ठ ग्रंथों इसे स्थान दिया जाता है। सर्वप्रियता के परिप्रेक्ष्य में तुलसीदास विरचित रामचरितमानस के बाद इसे दूसरा स्थान दिया जाता है। हिंदी में सूरदास, तुलसीदास के बाद सर्वाधिक आलोचनाएँ बिहारी सतसई पर लिखी गई हैं।

2. सेनापति :

रीतिकालीन हिंदी साहित्य में कवि सेनापति का महत्वपूर्ण स्थान है। वे भक्ति काल और रीतिकाल के संधिकालीन कवि माने जाते हैं। उनके काव्य में जहाँ एक ओर भक्ति भावना का प्रभाव दिखाई देता है, तो वहाँ दूसरी ओर रीति परंपरा की अलंकारिकता तथा श्रृंगारिकता भी स्पष्ट रूप से दिखाई देती है।

सेनापति का जीवन परिचय-

सेनापति का जन्म लगभग सोलहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में उत्तर प्रदेश के अनूपशहर (जिला बुलंदशहर) में हुआ। वे जाति से कान्यकुब्ज ब्राह्मण रहे। उनके पिता का नाम गंगाधर और पितामह का नाम परशुराम दीक्षित था। उन्हें सेनापति नाम से ही जाना जाता था। उनके जीवन के बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त नहीं होती। लेकिन उनकी असाधारण प्रतिभा के कारण वे साहित्य में अजरामर बन गए हैं।

सेनापति की प्रमुख रचनाएँ-

कवि सेनापति की प्रमुख कृति कवित रत्नाकर है। जिसे काव्य कल्पद्रुम नाम से पहचाना जाता है। प्रस्तुत ग्रंथ में उनके उत्कृष्ट कवित्त संकलित है।

सेनापति के काव्य की विशेषताएँ :

सेनापति के काव्य की प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार प्रस्तुत की जा सकती है

1. शृंगार रस की प्रधानता -

सेनापति के काव्य में शृंगार रस का सुंदर और प्रभावशाली चित्रण पाया जाता है। नायक-नायिका के प्रेम, मिलन-विरह की विविध चेष्टाओं का प्रभावी चित्रण उन्होंने प्रस्तुत किए है। शृंगार रस को आधार मानकर शृंगार रस की विविध चेष्टाओं का सुंदर चित्रण के माध्यम से सेनापति ने नायक-नायिका की अनेक प्रतिमाओं को साकार बनाया है।

2. वीर रस प्रभावी चित्रण -

यथार्थ में सेनापति शृंगारी कवि रहे हैं। शृंगार रस के साथ- उन्होंने वीर रस के ऐसे चित्रण प्रस्तुत किए है, जिसका आस्वाद लेने पर पाठकों के अंतस्थ में वीर रस की नदिया बहने लगती है।

3. प्रकृति और ऋतु वर्णन-

सेनापति के काव्य में प्रकृति तथा विभिन्न ऋतुओं का अत्यंत सजीव मनोहरी चित्रण मिलता है। सेनापति ने अपने काव्य में चित्रात्मकता आ गई है।

4. अलंकारों का प्रयोग -

सेनापति के काव्य में अलंकारों का सुंदर प्रयोग हुआ है। विशेषकर श्लेष अलंकारों का प्रयोग किया है। जिससे उनके काव्य में अर्थ-गांभीर्यता आ गई है।

5. भाषा-शैली-

सेनापति के काव्य की भाषा ब्रजभाषा रही है। जो सरल, मधुर तथा प्रवाहपूर्ण रही है। जिसकी तुलना संध रुपसे बहने वाली नदी की मझधार के साथ की जा सकती है।

6. रीति परंपरा का प्रभाव -

सेनापति के काव्य में नायिका-भेद, शृंगारिक वर्णन तथा रीति-ग्रंथों के सिद्धांतों का पालन सुंदर ढंग से किया गया है। जिसके कारण सेनापति रीतिबद्ध कवि श्रेणी में स्थान अर्जित करते हैं।

सारांश-

इस प्रकार कवि सेनापति रीतिकाल के प्रमुख कवि रहे हैं। जिनके काव्य में शृंगार, प्रकृति-वर्णन तथा भक्ति का सुंदर समन्वय मिलता है। उनकी रचना कवित्त रत्नाकर हिंदी साहित्य की अमूल्य धरोहर है।

1.3.4 रीतिमुक्त काव्य धारा सामान्य परिचय, प्रमुख कवि घनानंद एवं आलम :

सत्रहवीं सदी कि साहित्य में रीतिबद्ध काव्यप्रणयन की प्रवृत्ति धीरे-धीरे बलवत हो गई लेकिन इसके समानांतर काल में रीतिमुक्त काव्यों की भी रचना हुई है। इस काल में कुछ ऐसे भी कवि दिखाई देते हैं, जिन्होंने रीति के बंधन से मुक्त होकर साहित्य सृजन किया है। इनमें केशव, मतिराम, तथा चिंतामणि जैसा कोई लक्षण ग्रंथ लिखा न कि, बिहारी जैसी रीतिबद्ध रचना लिखी। इन रीतिमुक्त कवियों की संख्या पचास से भी अधिक है, इस श्रेणी में घनानंद, आलम, बोधा तथा ठाकुर आदि कवियों के नाम जोड़े जाते हैं। जिन्होंने प्रबंध काव्य लिखे हैं।

रीतिमुक्त आयाम की उत्पत्ति -

रीतिकाल में काव्य अत्यधिक शास्त्रीय और कृत्रिम हो गया था। नायिका-भेद, अलंकार और दरबारी संस्कृति के प्रभाव के कारण भावां की स्वाभाविकता समाप्त हो रही थी। इसके विरोध में कुछ कवियों ने स्वतंत्र तथा भावप्रधान काव्य की रचना की, जिससे रीति-मुक्त धारा का विकास हुआ। रीतिकाल हिंदी साहित्य का वह काल है, जिसमें इस काल के कवियों ने कोई भी लक्षण-ग्रंथ नहीं लिखा न कि, लक्षण ग्रंथों से प्रभावित होकर काव्य रचना की है। इनके काव्यों में भावपक्ष की प्रधानता दिखाई देती है। इनकी शैली में अलंकारों के अनावश्यक बोझ से भी आक्रांत नहीं हुई है। रीतिमुक्त काव्य की सामान्य प्रवृत्तियाँ निम्नलिखित प्रकार से प्रस्तुत की जा सकती है, वह इस प्रकार है -

रीतिमुक्त काव्य की सामान्य प्रवृत्तियाँ :

2.3.4.1 स्वाभाविकता-

स्वाभाविकता रीतिमुक्त काव्य धारा की महनीय विशेषता कही जा सकती है। रीतिमुक्त काव्यधारा के कवियों ने रीतिकाल की पूर्ववर्ती सभी नियमों के बंधनों से मुक्त होकर काव्य लेखन किया। दरबारी रूढ़ियाँ, काव्यशास्त्र के नियमों का बंधन आदि के बोझ को उन्होंने त्यागकर अपनी स्वाभाविक अनुभूति को कविता के माध्यम से अभिव्यक्त करने की कोशिश की है। प्रस्तुत काव्य धारा में कृत्रिमता का कोई भी नामोनिशान नहीं है। यह काव्य धारा बिल्कुल सहज बहनेवाली हवा की भांति अपना रूप धारण करती है, जिसकी तुलना प्राकृतिक उपादानों के साथ की जा सकती है। रीतिसिद्ध कवियों ने अपना पांडित्य प्रदर्शन दिखाने की कोशिश नहीं की न कि कविता में वे चमत्कार पूर्ण प्रदर्शन करना चाहते थे। उन्होंने समाज में जो अनुभव किया उसे स्वाभाविक रूप में कविता में अभिव्यक्त करना उनका मुख्य उद्देश्य था। इसलिए स्वाभाविकता उनकी कविता की प्रमुख विशेषता रही है।

2.3.4.2 भावप्रधानता-

रीतिमुक्त कवि किसी राजा के दरबार के अधीन नहीं थे, जिसके कारण उन्हें राजा को खुश करने के लिए भावों से ज्यादा चमत्कारपूर्ण प्रदर्शन के लिए अलंकारों का प्रयोग करना पड़े। उन्होंने कविता में चमत्कार पूर्ण अभिव्यक्ति से ज्यादा अनुभूत भावों की अभिव्यक्ति को प्रमुखता दी है। इसकारण भावप्रधानता रीतिमुक्त काव्य धारा की असाधारण विशेषता कही जा सकती है। इसलिए इन कवियों ने अलंकारों की तुलना में भावों को अधिक वरीयता दी गई है। जिसके कारण इस काल की कविताओं में मानव जीवन से संबंधित विविध भावों के दर्शन होते हैं।

2.3.4.3 व्यक्तिगत अथवा निजी अनुभूति-

रीतिमुक्त कवियों ने अपने जीवन के अनुभवों के आधार पर काव्य में भावों को अभिव्यक्त किया है। इसकारण इनकी कविताओं में व्यक्तिगत अथवा निजी अनुभूति की विशेषता दिखाई देती है। कवियों निजी अनुभूतियों को जबरदस्त और बेबाकी के साथ अभिव्यक्ति दी गई है। इसी कारण इस धारा की कविताओं में निजी प्रेम, पीडा तथा अनुभूति के दर्शन होते हैं। इस दृष्टि से कवि घनानंद की कविता सरस बनी है। उन्होंने अपनी प्रेमिका सुजान के विरह में लिखी कविता उनके व्यक्तिगत पीडा कवि घनानंद की कविता सरस बनी है। उन्होंने अपनी प्रेमिका सुजान के विरह में लिखी कविता उनके व्यक्तिगत पीडा को प्रभावीरूप से साकार करती है- “घनानंद मीत सुजान बिना, सबही सुख साज समाज टरै, तब हार पहाड़ से लागत है, अब आनि के बीच पहाड़ परै।” प्रेम की यह गहरी वेदना आत्मपरक ही कही जा सकती है। यह कोई बिनावटी या अकृत्रिम भाव नहीं है।

2.3.4.4 प्रेम का स्वच्छंद चित्रण और विरह की प्रबल अभिव्यक्ति -

रीतिकालीन कवियों ने समाज को जैसे अनुभूत किया उसे स्वच्छंद और बेबाकी से स्पष्ट किया है। इसकारण प्रेम की अनुभूति को उन्होंने बहुत ही स्वच्छंद और उन्मुक्त भाव व्यक्त किया है। प्रेम के संयोग पक्ष को उन्होंने जितनी मजबूती से और स्वच्छंद तरीके से अभिव्यक्त किया है उसी तरह विरह तथा करुणा का सुंदर चित्रण हुआ है। विरह व्यथा की अपनी प्रबल अभिव्यक्ति का चित्रण करते समय उसमें मार्मिकता के भी दर्शन होते हैं। इस संदर्भ में कवि घनानंद की कविता विशेष उल्लेखनीय है। रीतिमुक्त कवि अपनी प्रेम और विरह अनुभूति में इतने सहज, स्वाभाविक और स्वच्छंद वृत्ति के थे उन्हें कविता करने के लिए विशेष परिश्रम नहीं लेना पड़ता न पांडित्य प्रदर्शन की जरूरत रही है। इस संदर्भ में कवि घनानंद का एक दोहा है- ‘लोग हैं लागि कवित्त बनावत, मोहिं तो मेरे कवित्त बनावत।’ अर्थात् लोग कविता बनाते हैं लेकिन मुझे तो कविता ने ही बनाया है। कविता लिखी नहीं जाती बल्कि वह प्रेम का स्वच्छंद प्रवाह है।

2.3.4.5 सरल भाषा का सुंदर प्रयोग-

रीतिमुक्त कवियों ने अनुभव को सहज अभिव्यक्ति की है। इसकारण उनकी भाषा में कृत्रिमता या दिखावटीपन नहीं है। कवियों बहुत ही सरल और सहज भाषा का प्रयोग अपनी कविताओं में किया है। इन

कवियों ने संस्कृत काव्यशास्त्र के ज्ञान का पांडित्य प्रदर्शन नहीं किया बल्कि सहज और स्वाभाविक अभिव्यक्ति को महत्व देने के कारण इनकी कविता में अलंकार का बोझ नहीं है। किसी को खुश करने के लिए इन्होंने कविता न लिखने के कारण कृत्रिमता से आई अलंकारयुक्त भाषा नहीं है। वे अपने भावों एवं प्रेमानुभूतियों के संयोग और वियोग पक्ष को भावुकता से लिखते हैं। इसकारण इनकी भाषा बहुत ही सहज और सरल लगती है।

2.3.4.6 प्रकृति सौंदर्य का मनभावक चित्रण-

रीतिमुक्त कवि प्रेमानुभूति एवं भावाभिव्यक्ति में स्वच्छंदी थे। इसकारण उन्होंने प्रकृति की सुंदरता को जिस रूप में देखा, उसे उसी भावमयता और स्वाभाविकता से कविता में चित्रित किया है। इसकारण प्रकृति के विविध मनभावक दृश्य उनकी कविता में साकार हुए हैं। विविध ऋतुओं में प्रकृति के बदलते मनभावक रूप को उन्होंने अपनी कविताओं में साकार करने की कोशिश की है। इन कवियों ने विरहानुभूति के चित्रण में प्रकृति के सौंदर्य को अपनी विरह वेदना की व्याकुलता को व्यक्त करने की दृष्टि से भी चित्रित किया है। जैसे- 'कारी कूक कोकिला कहाँ की बैर काढति री, कूक कूक अबही करेजौ किनाकोरि लैं।' अर्थात् विरह में भा कोयल की कूक उन्हें प्रेम के बिछोह की वेदना को बढ़ता ही। इसतरह रीतिमुक्त कवियों ने प्रकृति की सुंदरता को भी अपनी कविता में व्यक्त किया है।

संक्षेप में कह सकते हैं कि रीतिमुक्त काव्यधारा के कवियों ने काव्य को कृत्रिम बंधनों से मुक्त किया। उन्होंने अपनी कविताओं में भावों की सच्ची अभिव्यक्ति को महत्व प्रदान किया है। हिंदी कवियों ने मानवीय संवेदनाओं स्थापित कर दिया। यों कहा जा सकता है कि, रीतिमुक्त काव्य धारा ने आधुनिक काव्य के विकास का मार्ग प्रशस्त किया।

रीतिमुक्त प्रमुख कवि :

1. घनानंद-

घनानंद के नाम को लेकर विद्वानों में एकमत का अभाव है। आनंद, आनंदघन तथा घनानंद ये तीन नाम एक ही कवि के रूप में बहुत समय तक प्रचलित रहे हैं। इनका जन्म संवत् 1674 के आसपास हुआ था। इनका निधन सं. 1796 नादिरशाह में हुआ। उनकी जाति कायस्थ बताई जाती है। वे दिल्ली के मुगल बादशाह मुहम्मदशाह के मीर मुंशी थे। एक दिन कुचक्रियों ने बादशाह से कहा कि मीर मुंशी बहुत अच्छा गाते हैं। बादशाह के अनुरोध पर उन्होंने बादशाह के अनुरोध को अस्वीकार किया। इस पर लोगों ने कहा था कि, ये अपनी प्रेमिका सुजान के कहने पर निश्चित ही गा सकते हैं। इस समय सुजान को दरबार में बुलाया गया। घनानंद ने अपनी प्रेमिका के सामने ही और बादशाह की ओर पीठ करके श्रवणीय गायन किया। ये सब देखकर सब दंग हो गए। बादशाह एक ओर उनके गायन से प्रसन्न हुए तो दूसरी ओर उनकी ओर पीठ की थी। इसलिए नाराज भी हो गए। इस बात को लेकर इन्हें शहर से निकाल दिया गया। वहां से चलते-चलते वे अपनी सुजान को भी साथ लेकर चले गए। विराग उत्पन्न होने पर वे वृंदावन चले गए। आगे चलकर वे निम्बार्क संप्रदाय में दीक्षित हो गए।

घनानंद का रचना संसार—

घनानंद ने अपने जीवन में सुजान सागर, विरह लीला कोकसार, रस कलिवल्ली और कृपाकांड नामक रचनाओं का सृजन किया है। इसके सिवा उन्होंने फुटकर कवित्त सवैयों के संग्रह डेढ़ सौ से लेकर चार सौ कवित्तों तक मिलते हैं कृष्ण-भक्ति के बारे में उनका एक बहुत बड़ा ग्रंथ छतरपुर के राज पुस्तकालय में प्राप्त होता है। इस रचना में प्रिया प्रसाद, ब्रज व्यवहार, वियोग बेली, कृपाकंद निबंध गिरिगाथा, भावना प्रकाष आदि अनेक विषय मिलते हैं।

घनानंद की कविता का भावपक्ष—

घनानंद प्रमुख रूप से शृंगार रस के कवि है। वियोग शृंगार में उनका मन अधिक रम गया था। उनका प्रेम एकनिष्ठ और अंतर्मुखी रहा है। इसी कारण उन्होंने अत्यंत सूक्ष्म से सूक्ष्म भावनाओं का मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया है। उस में विभाव पक्ष का इतना चित्रण नहीं हुआ है। वे भावुक कवि रहे हैं। उनका वियोग वर्णन अत्यंत स्वाभाविक तथा मनोरम रहा है। उनकी नायिका तो न घड़ी के पैँडुलम की भांति है, वह न ही उसके पास गुलाब की शीशी विरह-ताप से बीच से बीच में सूख जाती है। इनका प्रेम फारसी काव्य-पद्धति तथा सूफी पद्धति दोनों से प्रभावित रहा है। इनके रचनाओं में सूजान शब्द का प्रयोग यदि मिल भी जाता है, तो वह केवल संयोगमात्र रहा है।

घनानंद की कविता का कलापक्ष—

कलापक्ष के अंतर्गत भाषा, अलंकार, छंद, काव्य-गुण अर्थात् व्यंजना-शक्ति प्रयोग आदि बातें आ जाती हैं। घनानंद की कविता में ब्रजभाषा का चलतापन पाया जाता है। वह अन्य किसी भी कवि की कविताओं में नहीं पाया जाता है। इनकी साहित्यिक ब्रजभाषा सहज माधुर्य विद्यमान रहा है। नंददास आदि कवियों द्वारा गढ़ी गई ब्रजभाषा का उत्तराधिकारी घनानंद रहा है। घनानंद की भाषा की एक अपूर्व लाक्षणि मूर्तिमत्ता तथा प्रयोग-वैचित्र्य की छटा रीतिकाल के बाद छायावादी कालखंड में पाई जाती है। प्रेम रस के अवतार घनानंद ने ब्रजभाषा काव्य में एक नवीन परंपरा स्थापित की है। घनानंद जब साहित्य सृजन कर रहे थे, तब उनके सामने एक ओर विद्यापति और सूर द्वारा चलाई गई जिसके अंतर्गत भगवान की लीलाओं का गान गीति काव्य में हुआ है। घनानंद की कविताओं में स्वरलहरी के साथ भक्ति-भावना का समावेश रहा है। ब्रजभाषा काव्य की दूसरी परंपरा कृष्ण के स्मरण के बहाने से कविता-चातुर्य दिखलाने वाले रीति-कवियों द्वारा चलाई गई थी।

इनकी दृष्टि रीतिबद्ध हो गयी। इन्होंने गीतिपद्धति को छोड़कर कवित्त और सवैया-पद्धति को अपनाया जिसमें आलंकारिकता की प्रधानता थी। घनानंद उपरविवेचित दोनों प्रकार की काव्य धाराओं से अलग प्रकार की राह पर चलनेवाले मालूम पड़ते हैं। उन्होंने न तो सूरदास की तरह कृष्ण-लीला वर्णन अपनाया और न शृंगार की अभिव्यक्ति की लिए रस, नायिका-भेद अलंकार और पिंगलादि काव्यों के अंगों को आधार मानकर साहित्य की सेवा की है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि, घनानंद कविता के सहज मार्ग के यात्री रहे। बोधा, आलम, ठाकुर आदि

रीतिकालीन कवि और भारतेन्दु, सत्यनारायण कविरत्न कविरत्न प्रेमचंद आदि भी इस पथ के यात्री बने हैं। भक्तिकाव्य में ब्रजभाषा काव्य में स्थान सूरदास का है, रीतिकाल के ब्रजभाषा काव्य में वही स्थान को घनानंद ने अर्जित किया है।

2. आलम-

आलम नाम के हिंदी साहित्य में दो नाम के कवि रहे हैं। उनमें से एक तो सोलहवीं शताब्दी के अंतिम चरण में हुए, जिन्होंने 'माधवानंद कामकंदकला' नामक रचना का सृजन किया था। दूसरे आलम औरंगजेब के पुत्र मुअज्जिशाह के राज्याश्रित कवि रहे। आलम के परिप्रेक्ष्य में दूसरे आलम की चर्चा की जा रही है। इनका रचना काल संवत् 1740 से सं. 1760 तक माना जाता है। आलम जाति से ब्राह्मण रहे, पर शेख नाम की रंगरेजिन के प्रेम में फंसकर इन्होंने उससे विवाह किया और बाद में उनके साथ विवाह कर लिया और उन्होंने इस्लाम धर्म का स्वीकार कर लिया। इनकी प्रेम कथा भी बड़ी रोमांचकारी रही है।

आलम का साहित्य संसार-

आलम के नाम पर 'आलम केलि' नाम से रचना प्रसिद्ध रही है। प्रस्तुत रचना में शेख भणित्ती के साथ कुछ रचनाएँ मिलती हैं। वे इनकी पत्नी की रहीं हैं। आलम अथवा शेख नाम पर जो कविताएँ प्राप्त होती हैं, वह इनकी अपनी रहीं हैं। इससे इस बात का पता चलता है कि, उनकी पत्नी भी कवयित्री रहीं हैं।

आलम के काव्य की समीक्षा-

आलम प्रेमोन्मत्त कवि रहे हैं। वे अपनी तरंग के अनुसार साहित्य सृजन करते रहे। इसी कारण इनकी रचनाओं में हृदय तत्त्व की प्रधानता पाई जाती है। प्रेम की पीर या इश्क का दर्द इनके एक-एक वाक्य में भरा पाया जाता है। उत्प्रेक्षाएँ भी एक अलग अंदाज और अनूठे रूप में प्रस्तुत की हैं। शब्द-वैचित्र्य, अनुप्रास आदि प्रवृत्ति के कारण इनका विशेष दर्शन नहीं होता। शृंगार रस की उन्मादमयी उक्तियाँ इनकी रचना में मिलती हैं। उसका आस्वाद लेनेवाले श्रोता तथा वाचक रस विभोर हो जाते हैं। वे फारसी के ज्ञाता रहे फिर भी उन्होंने भारतीय काव्य-परंपरा का पालन सुंदर रूप से प्रस्तुत किया है।

1.4 स्वयंअध्ययन के लिए प्रश्न :

प्रश्न 1. निम्नलिखित प्रश्नों के सही विकल्प चुनिए।

- रीतिकाल में किस बादशाह में सांस्कृतिक सहिष्णुता और कलात्मक उदार वृत्ति थी?
अ. औरंगजेब ब. तैमूर क. शहाजहाँ ड. चंगेजखान
- लक्षणग्रंथ और उदाहरण के लिए कविता लिखने वाले कवि को क्या कहा जाता था?
अ. आचार्य कवि ब. कवि क. दरबारी कवि ड. स्वच्छंद कवि
- हिंदी साहित्य में आचार्य कवि के रूप में रीतिबद्ध काव्य के प्रवर्तक किसे कहा जाता है?

- अ. बिहारी ब. केशवदास क. आलम ड. घनानंद
4. रीतिकाल में किस कवि के दोहों के लिए गागर में सागर भरने की क्षमतावाला बताया गया है?
- अ. बिहारी ब. केशवदास क. आलम ड. घनानंद
5. रीतिकाल में किस कवि ने अपनी प्रेमिका सुजान के विरह में उच्च कोटि की कविता लिखी है?
- अ. बिहारी ब. केशवदास क. आलम ड. घनानंद

प्र 1 ब : निम्नलिखित प्रश्नों के सही विकल्प चुनकर रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

- रीतिकालीन साहित्य में काव्य की धाराओं का विकास हुआ।
अ. तीन ब. दो क. पाँच ड. चार
- रीतिकाल में लक्षण ग्रंथ और कविता दोनों लिखने वाले कविकाव्यधारा में आते हैं।
अ. रीतिमुक्त ब. रीतिबद्ध क. रीतिसिद्ध ड. रीतिहस्त
- रीतिकाल में संस्कृत काव्यशास्त्र को जाननेवाले पर लक्षण ग्रंथ न लिखकर केवल कविता लिखने वाले कविकाव्यधारा में आते हैं।
अ. रीतिमुक्त ब. रीतिबद्ध क. रीतिसिद्ध ड. रीतिहस्त
- रीतिकाल में संस्कृत काव्यशास्त्र की रूढ़ियों के सभी बंधनों को त्यागकर स्वच्छंद कविता लिखने वाले कविकाव्यधारा में आते हैं।
अ. रीतिमुक्त ब. रीतिबद्ध क. रीतिसिद्ध ड. रीतिहस्त
- रीतिकालीन कवि को राजा जयसिंह एक दोहा लिखने के लिए एक सुवर्ण मुद्रा देता था।
अ. घनानंद ब. बिहारी क. आ.केशवदास ड. आलम

1.5 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ :

- * **शहाजहाँ :** एक मुगल बादशहा थे। भारत में पाँचवे मुगल सम्राट थे जिनका कार्यकाल सन् ई. 1628 ई. से 1658 तक रहा है। उन्होंने अपनी बेगम मुमताज की याद में ताजमहल बनाया है।
- * **मुहम्मदशाह रंगीला :** एक मुगल बादशाह जो अपना सारा समय नाच, रंग तथा मदिरापान में व्यतीत किया करते थे। इसलिए इतिहासकारों ने उसे रंगीले की उपाधि दी।
- * **रीतिकाल :** हिंदी साहित्य में संवत् 1700 से 1900 का कालखंड रीतिकाल के नाम से जाना जाता

है। इसे उत्तर मध्यकाल भी कहा जाता है। इसमें काव्य की रचना में 'रीति' अर्थात् काव्यशास्त्र के नियमों की प्रधानता रहती थी।

- * **रीतिबद्ध** : रीतिकाल में संस्कृत काव्यशास्त्रों के नियमों जैसे रस, छंद, अलंकार और नायिका भेद के नियमों का पालन करके अपनी कविता में लक्षण ग्रंथ और उसके उदाहरण स्वरूप कविता लिखने की काव्यधारा को रीतिबद्ध कहा जाता है।
- * **रीतिसिद्ध** : रीतिकाल में काव्यशास्त्र के नियमों के आधार पर लक्षणग्रंथ न लिखने वाले लेकिन नियमों की पूरी जानकारी रखने वाले और उन नियमों का इस्तेमाल करके अपनी कविता लिखने वाले कवि या काव्यधारा को रीतिसिद्ध कहा जाता है।
- * **रीतिमुक्त** : रीतिकाल में जिन कवियों ने दरबारी परंपरा, काव्यशास्त्र के नियमों और पारंपारिक साहित्यिक रूढ़ियों को त्याग करके स्वतंत्र और स्वच्छंदता से कविता लिखी, उस काव्यधारा को रीतिमुक्त कहते हैं।
- * **लक्षण ग्रंथ** : लक्षण ग्रंथ वह साहित्यिक या समीक्षात्मक किताबें होती हैं जिसमें काव्य या साहित्य के सभी नियमों, उनके अंगों जैसे काव्य के गुण-दोष, शब्दशक्ति, रस, छंद, अलंकार आदि के सिद्धांतों की समीक्षा की जाती है। जैसे: आ. केशवदास जी का 'रसिकप्रिया' यह ग्रंथ लक्षण-ग्रंथ है।

1.6 स्वयंअध्ययन प्रश्नों के उत्तर :

प्रश्न 1 अ के उत्तर -

- | | |
|---------------|------------------|
| 1. क. शहाजहाँ | 2. अ. आचार्य कवि |
| 3. ब. केशवदास | 4. अ. बिहारी |
| 5. ड. घनानंद | |

प्रश्न 1 ब के उत्तर -

- | | |
|-----------------|-----------------|
| 1. अ. तीन | 2. ब. रीतिबद्ध |
| 3. क. रीतिसिद्ध | 4. अ. रीतिमुक्त |
| 5. ब. बिहारी | |

1.7 सारांश :

1. रीतिकाल की राजनीतिक परिस्थिति घोर नैतिक पतन की पराकाष्ठा का काल माना जाता है। जिसके

राजमहलों में वेश्याओं तथा हिजडों की ऐसी तूती बोलती हो उसके नैतिक स्तर का सहज से अनुमान लगाया जा सकता है। देशी राजपुत्रों के हरमों में भी वेश्याओं और रक्षिताओं की कमी नहीं थी।

2. यथा राजा तथा प्रजा की उक्ति के अनुसार इस कालखंड की सामाजिक स्थितियाँ भी पतनशील थी। सामान्य जनता में राष्ट्रीय चेतना का अभाव था। किसान, श्रमिकों का शोषण था। समाज में सामंत, जागीरदारों और जमींदारों का प्राबल्य था। सभ्यता संस्कृति के साथ-साथ इस काल खंड में समाज आर्थिक विपन्नता की कगार पर था।

3. रीतिबद्ध काव्यधारा में संस्कृत काव्यरूढियों का पालन करते हुए लक्षण ग्रंथ और उदाहरण स्वरूप कविताएं लिखी गईं। इसमें शृंगारिकता, अलंकारिकता, भक्ति तथा नीति, वीर रस, प्रकृति चित्रण, नारी चित्रण, जीवन दर्शन, मनोवैज्ञानिक चित्रण, काव्य रूप आदि विविध आयामों की चर्चा इस काल के कवियों ने अपने काव्य के माध्यम से की है। आ. केशव और देव इस धारा के प्रमुख कवि माने जाते हैं।

4. रीतिकाल में रीतिसिद्ध काव्यधारा भी अपना अलग महत्त्व रखती है। वैसे रीतिबद्ध और रीतिसिद्ध काव्यधारा में कोई विशेष अंतर नहीं है। लेकिन रीतिसिद्ध काव्यधारा के कवियों ने केवल कविताएं लिखी, उन्होंने कोई भी लक्षणग्रंथ नहीं लिखा और न अपने आचार्यत्व का प्रदर्शन किया। कवि बिहारी, कवि सेनापति इस काव्यधारा के प्रमुख कवि माने जाते हैं।

5. रीतिकाल हिंदी साहित्य का वह काल है, जिसमें इस काल के कवियों ने कोई भी लक्षण - ग्रंथ नहीं लिखा न कि, लक्षण ग्रंथों से प्रभावित होकर काव्य रचना की है। इनके काव्यों में भावपक्ष की प्रधानता दिखाई देती है। कवि घनानंद, कवि आलम इस काव्यधारा के प्रमुख कवि माने जाते हैं।

1.8 स्वाध्याय :

प्र 1. लघुत्तरी प्रश्न.

1. रीतिकाल की राजनीतिक परिस्थिति स्पष्ट कीजिए।
2. रीतिकाल की सामाजिक परिस्थिति स्पष्ट कीजिए।
3. आ. केशवदास का संक्षिप्त परिचय लिखिए।
4. कवि देव का संक्षिप्त परिचय लिखिए।
5. कवि बिहारी का संक्षिप्त परिचय लिखिए।
6. कवि सेनापति का संक्षिप्त परिचय लिखिए।
7. कवि घनानंद का संक्षिप्त परिचय लिखिए।
8. कवि आलम का संक्षिप्त परिचय लिखिए।

प्र 2. दीर्घोत्तरी प्रश्न :

1. रीतिकाल की राजनीतिक और सामाजिक परिस्थिति का वर्णन कीजिए।
2. रीतिबद्ध काव्यधारा की विशेषताओं को स्पष्ट कीजिए।
3. रीतिसिद्ध काव्यधारा की विशेषताओं को स्पष्ट कीजिए।
4. रीतिमुक्त काव्यधारा की विशेषताओं को स्पष्ट कीजिए।

1.9 क्षेत्रीय कार्य :

1. रीतिकाल के अन्य कवियों की जानकारी संकलित करके उनके साहित्य पर आधारित परियोजना बनाए।
2. रीतिकाल की शृंगारपरक कविताओं का संकलन करके उसपर परियोजना बनाए।
3. रीतिकालीन कवियों और उनके साहित्य पर आधारित प्रश्नमंजुषा प्रतियोगिता के लिए वस्तुनिष्ठ प्रश्न बनाए।

1.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए :

1. शुक्ल रामचंद्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, लोकभारती प्रकाश, महात्मा गांधी मार्ग, प्रयागराज उ.प्र.-२११००१, सं. २२ वां, २०२३ ई.
2. शर्मा, रमेशचंद्र डॉ., हिंदी साहित्य का इतिहास, विद्या प्रकाशन, सी, ४४९, गुजैनी-कानपुर-२२, सं. २००२ ई.
3. नगेंद्र डॉ., रीतिकाल की भूमिका, नैशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, सं. १९५३ ई.



आधुनिक काल की काव्यधारा

अनुक्रम

- 2.1 उद्देश्य
- 2.2 प्रस्तावना
- 2.3 विषय विवेचन
 - 2.3.1 आधुनिक कालीन परिस्थितियाँ : राजनीतिक एवं सामाजिक
 - 2.3.2 द्विवेदी युगीन काव्यधारा : सामान्य परिचय, प्रमुख कवि- मैथिलीशरण गुप्त एवं श्रीधर पाठक
 - 2.3.3 छायावादी काव्यधारा : सामान्य परिचय, प्रमुख कवि- जयशंकर प्रसाद एवं महादेवी वर्मा
 - 2.3.4 प्रगतिवादी काव्यधारा : सामान्य परिचय, प्रमुख कवि- नागार्जुन एवं गजानन माधव मुक्तिबोध
- 2.4 स्वयंअध्ययन के लिए प्रश्न
- 2.5 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ
- 2.6 स्वयंअध्ययन प्रश्नों के उत्तर
- 2.7 सारांश
- 2.8 स्वाध्याय
- 2.9 क्षेत्रीय कार्य
- 2.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए

2.1 उद्देश्य :

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- ◆ हिंदी साहित्य के आधुनिक काल की पृष्ठभूमि के इतिहास से परिचित होंगे।
- ◆ हिंदी साहित्य के आधुनिक काल को प्रभावित करने वाली राजनीतिक स्थितियों से परिचित होंगे।
- ◆ हिंदी साहित्य के आधुनिक काल को प्रभावित करने वाली सामाजिक स्थितियों से परिचित होंगे।
- ◆ हिंदी साहित्य के आधुनिक काल की द्विवेदी युग की कविताओं की विशेषता, कवि मैथिलीशरण गुप्त और श्रीधर पाठक से परिचित होंगे।
- ◆ हिंदी साहित्य के आधुनिक काल की छायावादी युग की कविताओं की विशेषता, कवि जयशंकर प्रसाद और महादेवी वर्मा से परिचित होंगे।
- ◆ हिंदी साहित्य के आधुनिक काल की प्रगतिवादी युग की कविताओं की विशेषता, कवि नागार्जुन और गजनान माधव मुक्तिबोध से परिचित होंगे।

2.2 प्रस्तावना :

हिंदी साहित्य का इतिहास आदिकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल और आधुनिक काल इन चार पड़ावों से गुजरता है। हिंदी साहित्य के आधुनिक काल की शुरुवात सन् 1843 ई. से मानी जाती है। आधुनिक काल में हिंदी साहित्य के स्वरूप, संरचना, भाषा और उद्देश्य को लेकर काफी परिवर्तन हुआ। रीतिकाल में राजा-सामंतों तक के सीमित होने वाला हिंदी साहित्य आधुनिक काल में जन-जन तक पहुँच गया। 'कला जीवन के लिए' इस उदात्त उद्देश्य से साहित्य लिखने के कारण इसमें राष्ट्रीय चेतना और आम व्यक्ति के जीवन को स्थान मिला। इस कालखंड में हिंदी साहित्य कविता की एक निश्चित परिधि से बाहर निकलकर गद्य की विभिन्न विधाओं में विकसित हुआ। ब्रज और अवधि के स्थान पर खड़ी बोली का साहित्य में प्रयोग होने लगा। स्वाधीनता आंदोलन और सामाजिक-धार्मिक सुधारों के प्रयासों के कारण समाज में राष्ट्रनिष्ठा और जन चेतना निर्माण हुई। साहित्य मनोरंजन और कल्पना लोक से बाहर निकलकर आम आदमी के जीवन की सच्चाई अर्थात् सामाजिक यथार्थ से जुड़ गया। हिंदी साहित्य के आधुनिक कालीन साहित्य को छह चरणों में विभाजित किया गया है, जो 'भारतेन्दु युग', 'द्विवेदी युग', 'छायावादी युग', 'प्रगतिवादी युग', 'प्रयोगवादी युग' और 'नई कविता' नाम से जाने जाते हैं। इस इकाई में आधुनिक काल को प्रभावित करने वाली राजनीतिक एवं सामाजिक स्थितियों का विवेचन किया गया है। साथ ही आधुनिक हिंदी साहित्य के द्विवेदी युग, छायावादी युग और प्रगतिवादी युग की विशेषताओं के साथ इन युग के दो-दो प्रतिष्ठित कवियों का संक्षिप्त विवेचन किया गया है।

2.3 विषय विवेचन :

2.3.1 आधुनिक कालीन परिस्थितियाँ : राजनीतिक एवं सामाजिक :

किसी भी काल के निर्माण के पीछे तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक और सांस्कृतिक

परिस्थितियों का योगदान होता है। आधुनिक काल की जिन काव्यधाराओं का हमें अध्ययन करना है, उनकी प्रवृत्तियों को समझने के लिए हमें तत्कालीन परिस्थितियों का अध्ययन करना जरूरी होता है। हिंदी साहित्य के आधुनिक कालीन काव्यधाराओं का अध्ययन और उनकी विशेषताओं समझने के लिए तत्कालीन राजनीतिक और सामाजिक स्थितियों का अध्ययन करना जरूरी है। 'हिंदी साहित्य के इतिहास' (1929 ई.) इस ग्रंथ में आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी ने आधुनिक काल की शुरुआत सन् 1843 ई. से मानी है। यह कालखंड भारत में अंग्रेजी शासन, मुद्रण कला के विकास, ईसाई मिशनरी द्वारा शिक्षा प्रसार का कालखंड है। जिससे भारतीय समाज में राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक चेतना निर्माण हुई थी। इन परिस्थितियों ने हिंदी साहित्य को गहराई से प्रभावित किया और उसमें व्यापक परिवर्तन हुआ। आधुनिक काल को प्रभावित करने वाली राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियों का विवेचन इसप्रकार है-

2.3.1.1 आधुनिक कालीन राजनीतिक परिस्थिति :

आधुनिक कालखंड की शुरुआत सन 1843 ई. से मानी जाती है, जो भारत में अंग्रेजी हुकूमत के शोषणकारी व्यवस्था के खिलाफ जनचेतना जागृत होने का काल है। अंग्रेजों ने सन् 1849 ई. में सिक्खों को पराजित किया और सन् 1856 ई. को अवध को भी अपने कब्जे में लिया। अंग्रेजों की इस दमनकारी प्रवृत्ति के खिलाफ देशी रियासतों में असंतोष निर्माण हुआ और सन् 1857 ई. में कुछ देशी रियासतों मिलकर अंग्रेजों की मनमानी और शोषणकारी रवैये खिलाफ स्वाधीनता की क्रांति की। अंग्रेजों ने पहले ही इस एक मामूली विद्रोह का नाम दिया लेकिन यह भारत के आजादी की पहली जंग थी। सन् 1857 ई. इस जंग के बाद भारतीय जनमानस में अंग्रेजों के गुलामी के खिलाफ गुस्सा फूट पड़ा और वे अपनी स्वाधीनता के महत्त्व को समझने लगे। भारत में हुए इस विद्रोह के कारण भारत से ईस्ट इंडिया कंपनी का शासन खत्म किया गया और आगे से भारत अंग्रेजों का उपनिवेश बन गया। इसके बाद भारतीयों का खोया हुआ विश्वास वापस लाने के लिए अंग्रेजों ने अपनी आर्थिक, शैक्षिक और प्रशासनिक नीतियों को बदला। उन्होंने लोगों में भारत हितैषी की छवि बनाई। इस कालखंड में भारतेन्दु और तत्कालीन कवियों ने फिर भी भारतीय स्वाधीनता और देशभक्ति की प्रखर राष्ट्रवादी चेतना को अपने साहित्य के माध्यम से प्रस्तुत किया। भारतेन्दु जी ने 'अंधेर नगरी' नाटक के जरिए अंग्रेजों के राज में सुख है लेकिन भारत का धन विदेशों में जाने की बात को बिना डरे कहा।

अंग्रेजों ने अपनी पूँजीवादी व्यवस्था को केंद्र में रखकर भारत के संसाधनों को लूटने का काम किया। भारतीय समाज ग्रामीण परिवेश का होने के कारण उसकी सभी जरूरतें गाँवों में ही कुटीर उद्योग से पूरी होती थी। इसकारण राजनीति, धर्म और व्यापार के अनुसार महत्त्वपूर्ण शहरों की रचना की गई थी। लेकिन अंग्रेजों ने अपने माल को भारतीय बाजारों में बेचने के लिए यहाँ के छोटे-छोटे उद्योगों पर आधारित स्वयंपूर्ण अर्थ व्यवस्था को नष्ट किया। सन् 1885 ई. में भारतीय काँग्रेस पार्टी की स्थापना हुई और भारतीय राजनीतिक नेतृत्व में गतिशीलता आई। सन् 1920 ई. में महात्मा गांधी का भारतीय राजनीति में प्रवेश हुआ और उनके नेतृत्व में भारत के स्वाधीनता का संघर्ष शुरू हुआ। महात्मा गांधी जी ने अंग्रेजों की पूँजीवादी नीतियों के खिलाफ चरखा आंदोलन, स्वदेशी जैसी मुहीम चलाकर भारतीय अर्थव्यवस्था को स्वयंपूर्ण और पुनर्स्थापित करने का

प्रयास किया। लॉर्ड कॉर्नवालिस ने बंगाल, बिहार और उड़ीसा में जमींदारी प्रथा की शुरुआत की जिसे बाद में बंबई, उत्तर प्रदेश और मध्यप्रदेश में भी लागू किया गया। सर थॉमस रो ने जमीन को व्यक्तिगत संपत्ति में बदलने के कारण भारत में जमींदारी प्रथा का उदय हुआ। अंग्रेजों के साथ अब जमींदार भी गरीब किसान और मजदूरों के शोषण बने। दोनों के जुल्म के कारण भारतीय किसानों की हालत बद से बदतर हुई। आधुनिक काल के साहित्य में किसान की इस दुर्दशा का वर्णन होने लगा। प्रेमचंद लिखित 'गोदान' (1936 ई.) भारतीय किसान की दुर्दशा का सटीक वर्णन आने के कारण ही उसे 'कृषक जीवन का महाकाव्य' कहा जाता है।

अंग्रेजों ने प्रशासन व्यवस्था में काफी बदलाव किए। पंचायतों का स्थान अब कचहरियों ने लिया था। नई अर्थव्यवस्था के कारण गाँव की जातिप्रथा, पंचायत के कानून आदि के बंधन शिथिल हो गए। समाज में राष्ट्रवादी चेतना जागृत हुई और अर्थव्यवस्था के नए रूपों ने समाज में नए वर्गों का निर्माण किया। अंग्रेजों के शासन काल के कारण भारत में शिक्षा व्यवस्था, यातायात व्यवस्था, वित्तीय संस्था, प्रशासन आदि में पर्याप्त बदलाव आए। मुद्रण कला के आविष्कार ने भारत में पुनर्जागरण के लिए महत्वपूर्ण योगदान दिया। भारतीय राजनेताओं ने प्रेस की सुविधाओं का लाभ उठाकर भारत की संपूर्ण जनता को राष्ट्रीय आंदोलन के लिए एकजुट किया। हिंदी के भारतेन्दु, द्विवेदी कालीन साहित्यकारों ने पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से तत्कालीन भारत की समस्या, किसानों की दुर्दशा आदि पर प्रकाश डाला। साथ ही भारतीय समाज को धार्मिक एवं सामाजिक सुधारों से परिचित करके राष्ट्रीय चेतना निर्माण करने का प्रयास किया। समाज में लोकतांत्रिक मूल्यों के महत्व को समझाने के प्रयास किए। सन् 1936 ई के बाद अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर साम्यवाद और मार्क्सवाद ने क्रांति की। रूसी क्रांति और मार्क्सवाद के नए तत्त्वज्ञान ने दुनिया को प्रभावित किया। कार्ल मार्क्स के पूँजीवादी व्यवस्था के खिलाफ निर्माण हुए 'मार्क्सवाद' को हिंदी साहित्य में 'प्रगतिवाद' के रूप में ग्रहण किया गया। हिंदी में सन् 1936 के बाद 'प्रगतिवादी' काव्यधारा में शोषितों और मजदूरों की आवाज को प्राथमिकता दी गई। आगे भारतीय स्वाधीनता आंदोलन की व्यापकता और निरंतर प्रयास के कारण दि. 15 अगस्त, सन् 1947 ई. को भारत अंग्रेजों की गुलामी से आजाद हुआ। आजादी मिली लेकिन 'भारत-पाक विभाजन' की घटना ने भारत ने जनमानस को झकझोर दिया। आगे हिंदी साहित्य में इस दुःखद घटना की विभीषिका पर विपुल साहित्य लिखा गया। आगे डॉ. बाबासाहेब अंबेडकर जी की अध्यक्षता में गठित घटना समिति ने भारत का संविधान (कानून) बनाया और 26 जनवरी, सन् 1950 ई. से उसे लागू किया गया। भारत एक स्वतंत्र लोकतांत्रिक गणराज्य बन गया।

संक्षेप में कह सकते हैं कि आधुनिक काल के साहित्य में उपरोक्त सभी राजनीतिक घटनाओं में प्रभावित किया है। अंग्रेजी हुकूमत के देशी रियासतों के कार्य में दखलअंदाजी, छल-कपट से उन पर कब्जा करना, इसके खिलाफ सन् 1857 ई. की आजादी की पहली जंग होना, उसके बाद भारत से ईस्ट इंडिया कंपनी की सत्ता बरखास्त होकर भारत का अंग्रेजों का उपनिवेश बनना, सन् 1885 ई. को भारतीय कांग्रेस की स्थापना, सन् 1920 ई. को म. गांधी का भारतीय राजनीति में प्रवेश और आगे स्वाधीनता आंदोलन का नेतृत्व करना, अंग्रेजों द्वारा भारतीय कुटीर उद्योग को ध्वस्त करना, जमींदारी प्रथा की स्थापना, म. गांधी जी का चरखा, असहयोग,

सत्याग्रह, स्वदेशी द्वारा स्वाधीनता की मुहिम को व्यापक बनाना, भारतीय राजनीति का साम्यवादी और मार्क्सवादी विचारधाराओं से प्रभावित होना, सन् 1947 ई. में भारत को आजादी मिलना और सन 1950 को भारत स्वतंत्र गणराज्य बनना आदि आधुनिक काल की राजनीतिक घटनाओं का प्रभाव हिंदी के आधुनिक साहित्य पर पड़ा है।

2.3.1.2 आधुनिक कालीन सामाजिक परिस्थिति :

हिंदी साहित्य का आधुनिक काल राजनीतिक दृष्टि से बहुत ही उथल-पुथल का कालखंड रहा है। इसका परिणाम तत्कालीन भारतीय समाज पर भी हुआ। सन् 1857 ई. जंग ने भारतीय समाज को स्वाधीनता के प्रति सचेत किया और भारतीय जनता में राष्ट्रवाद की चेतना जागृत हुई। यही से धीरे-धीरे भारतीय स्वाधीनता आंदोलन ने जोर पकड़ा। अंग्रेजों के हिसाब से सन् 1857 ई. की जंग कुछ नाराज रियासतों का विद्रोह था लेकिन इससे इंग्लैण्ड की राजसत्ता भी प्रभावित हुई थी। उन्होंने भारत से ईस्ट इंडिया कंपनी का शासन हटाया और भारत का अंग्रेजों का उपनिवेश बनाया। भारत उपनिवेश बनने के बाद अंग्रेजों ने अपनी शैक्षिक, आर्थिक, प्रशासनिक नीतियों में काफी बदलाव किए जिसके कुछ सकारात्मक परिणाम भारतीय समाज में देखने मिले। औपनिवेशिक प्रभाव और शिक्षा के प्रचार-प्रसार के कारण भारतीय समाज में आधुनिकता आई। भारतीय समाज में अंग्रेजों की नई आर्थिक नीतियों के कारण विभिन्न वर्गों में परिवर्तित हुआ। नई प्रशासनिक व्यवस्था के कारण भारतीय ग्रामीण समाज का पंचायती कानून, जाति एवं वर्णव्यवस्था पर आधारित समाज की संरचना और उसके बंधन शिथिल हुए। शिक्षा से समाज में जागृति आने लगी और लोग राष्ट्रीय स्वाधीनता का मूल्य समझने लगे। राजनीतिक आंदोलनों के साथ-साथ कुछ सामाजिक संगठनों ने भी सामाजिक एवं धार्मिक सुधारों के प्रयास द्वारा भारतीय समाज में प्रगतिशील विचार निर्माण करने का प्रयास किया। इसमें राजा राममोहन राय के 'ब्रह्म समाज' (1828 ई.), केशवचंद्र सेन के 'प्रार्थना समाज' (1867 ई.), स्वामी विवेकानंद के 'रामकृष्ण मिशन' (1867 ई.) आदि सामाजिक संगठनों ने भारत के पुरानी रूढ़ियों, परंपराओं और अंधविश्वासों से भारतीय समाज को बाहर निकालने के कारगर प्रयास किए। इन सामाजिक संगठनों के कारण समाज में सत्य, अहिंसा, प्रेम, सदाचार, नैतिकता जैसे मानव कल्याणकारी मूल्यों का प्रचार हुआ। तो रामकृष्ण मिशन जैसी धार्मिक संगठनों ने समाज सुधार के साथ-साथ आध्यात्मिक एवं दार्शनिक विचारों को भी समाज में फैलाया। 'ब्रह्म समाज' जैसी संगठनों ने सती, बाल विवाह, केशवपन जैसी अमानुष प्रथाओं पर रोक लगाई और विधवा पुनर्विवाह, अछूतोद्धार, जातिभेद निर्मूलन जैसे रचनात्मक कार्य को बढ़ावा दिया। इससे भारतीय समाज काफी प्रभावित हुआ, खासकर महिलाओं की स्थिति में परिवर्तन आने लगा। लेकिन अंग्रेजों की नई अर्थनीतियों के कारण भारत में जमींदारी प्रथा का उदय हुआ और बहुसंख्यक भारतीय किसान एवं मजदूर वर्ग के शोषण का कुचक्र शुरू हुआ। भारतीय समाज में साम्यवाद और मार्क्सवादी विचारधारा का व्यापक प्रभाव दिखाई देने लगा। सर्व हारा वर्ग के प्रतिनिधि बनकर बहुत से साहित्यकार अपने साहित्य के माध्यम से किसान-मजदूरों का पक्ष लेकर उनके नारकीय जीवन को प्रस्तुत करने लगे।

ईसाई मिशनरियों ने अपने धर्म प्रसार के उद्देश्य से भारतीय समाज को शिक्षित करने का प्रयास किया,

जिससे भारतीय समाज आधुनिक जीवन से परिचित होने लगा। मुद्रण के विकास से समाचार पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से भारतीय समाज का व्यापक स्तर पर प्रबोधन होने लगा। इसकारण भारतीय समाज का बौद्धिक विकास होने में सहायता मिली। अंग्रेजों ने स्कूल-कॉलेज निर्माण करने के कारण भारतीय समाज की नई सुशिक्षित पीढ़ी आगे जाकर भारतीय स्वाधीनता आंदोलन का नेतृत्व करने लगी। अंग्रेजी साहित्य के प्रभाव स्वरूप भारतीय साहित्य दरबारी और सामंती बंधनों से आजाद हुआ। 'काव्य जीवन के लिए' की धारणा मजबूत हुई। अंग्रेजी साहित्य के अनुवाद के कारण हिंदी साहित्य में प्रभाव स्वरूप गद्य और गद्य की विभिन्न विधाओं का विकास हुआ।

संक्षेप में कह सकते हैं कि सन् 1857 ई. की जंग के बाद भारतीय समाज अंग्रेजों की औपनिवेशिक प्रभाव से प्रभावित हुआ और अंग्रेजी शिक्षा व्यवस्था के कारण आधुनिकता से परिचित हुआ। इससे भारतीय समाज परंपरागत मानसिकता से ऊपर उठा और उसमें व्यक्ति स्वातंत्र्य की भावना दृढ़ होने लगी। इस कालखंड में अनेक सामाजिक संगठनों ने सामाजिक सुधारों के आंदोलन चलाकर भारतीय समाज में राष्ट्रवादी चेतना को प्रबल बनाया। नारी शिक्षा को बढ़ावा देने से उनकी स्थिति में भी काफी बदलाव आया। अंग्रेजी शिक्षा पद्धति, मुद्रण का विकास, समाचार पत्रों का बढ़ता प्रचलन और अंग्रेजी साहित्य के प्रभाव स्वरूप भारतीय समाज का बौद्धिक विकास हुआ। इस बौद्धिक चेतना के कारण ही भारतीय समाज में नवजागरण की स्थितियाँ निर्माण हुईं और राष्ट्रीय चेतना व्यापक बनी। स्वाधीनता की आस में प्राचीन इतिहास, साहित्य का पुनर्मूल्यांकन होने से भारतीय समाज का सांस्कृतिक पुनरूत्थान हुआ और ये सभी स्थितियाँ आधुनिक हिंदी साहित्य के विकास के लिए पोषक बनीं।

2.3.2 द्विवेदी युगीन काव्यधारा : सामान्य परिचय, प्रमुख कवि- मैथिलीशरण गुप्त एवं श्रीधर पाठक :

हिंदी साहित्य के आधुनिक काल में सन् 1900 से 1920 ई. तक का कालखंड 'द्विवेदी युग' के नाम से जाना जाता है। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी जी के हिंदी कविता, खड़ीबोली का परिष्कार, भाषा का मानकीकरण, 'सरस्वती' पत्रिका का संपादन के जरिए आधुनिक हिंदी कविता का प्रचार एवं प्रसार, गद्य विधाओं के विकास का प्रयास आदि को उल्लेखनीय कार्य को ध्यान रखते हुए उनके नाम के आधार पर इस कालखंड को 'द्विवेदी युग' कहा जाता है। इस कालखंड में हिंदी काव्यधारा रीतिकाल की प्रवृत्तियों से पूरी तरीके से मुक्त हुई। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी जी ने हिंदी कविता की जड़ता और रूढ़िवादियों को खत्म करके विकास और स्वच्छंदता की ओर बढ़ाया। उन्होंने 'सरस्वती' (1903 ई.) इस पत्रिका के माध्यम से खड़ी बोली में साहित्य लिखने के लिए रचनाकारों को प्रोत्साहन दिया। लगभग 17 वर्षों तक उन्होंने 'सरस्वती' पत्रिका का संपादन करके हिंदी कविता, गद्य के विकास के लिए कार्य करते रहे। 'कवि कर्तव्य' नाम के निबंध के द्वारा उन्होंने हिंदी कविता की भाषा, शैली, छंद योजना, विषय वस्तु के संदर्भ में व्यापक मार्गदर्शन किया जिससे हिंदी कविता को नई दिशा मिली। कविता और गद्य की भाषा एक ही होने की बात पर बल दिया और हिंदी साहित्य में खड़ी बोली को प्रतिष्ठित करने का श्रेय भी आचार्य द्विवेदी जी को ही दिया जाता है। आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी जी के कार्य से उन्हें युग प्रवर्तक साहित्यकार माना जाता है। उन्होंने भारतेंदु युग में जागृत हुई कविताओं की

प्रवृत्तियों को विकसित करते हुए नवजागरण का संदेश दिया। इसकारण डॉ. नगेंद्र ने हिंदी साहित्य के द्विवेदी युग को 'जागरण सुधार काल' कहा है। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के निर्देशन में इस युग में मैथिलीशरण गुप्त, श्रीधर पाठक, गयाप्रसाद 'स्नेही', लोचनप्रसाद पाण्डेय, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', नाथूराम शर्मा शंकर, राय देवीप्रसाद पूर्ण, रामनरेश त्रिपाठी, गोपालशरण सिंह, रामचरित उपाध्याय आदि कवियों ने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। मैथिलीशरण गुप्त लिखित 'साकेत', अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' लिखित 'प्रियप्रवास' आदि इस युग के कालजयी महाकाव्य लिखे गए। हरिऔध के 'प्रिय प्रवास' को आधुनिक हिंदी का पहला महाकाव्य माना जाता है।

2.3.2.1 द्विवेदी युगीन काव्यधारा की विशेषताएँ :

आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी जी ने 'सरस्वती' पत्रिका के माध्यम से हिंदी कविता और खड़ी बोली को विकसित करने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया। रीतिकाल में हिंदी कविता नख-शिख वर्णन, सामंत के चरित काव्य और ब्रजभाषा की पारंपरिकता जड़ता में अटकती हुई थी। आचार्य द्विवेदी ने हिंदी कविता को इस रूढ़िबद्धता और जड़ता से मुक्ति दिलाई। भाषा, शैली, छंद विधान, शिल्प विधान को लेकर उन्होंने अनुशासनपूर्वक कार्य करने की प्रेरणा देने से द्विवेदी युग में नवजागरण का संदेश मिला। भारतेंदु काल में विकसित हो रही हिंदी कविता और गद्य को नए आयाम देने से हिंदी कविता में नई विशेषता विकसित हुई। द्विवेदी युगीन काव्यधारा की विशेषताओं का संक्षिप्त विवेचन इसप्रकार है-

2.3.2.1.1 देश-प्रेम और राष्ट्रीयता की भावना :

द्विवेदी युगीन काव्यधारा की पहली महत्त्वपूर्ण विशेषता देशप्रेम और राष्ट्रनिष्ठा से युक्त कविता लिखना। इस युग की कविताओं में राष्ट्रीयता की भावना का जोरदार अभिव्यक्ति हुई। सन् 1857 ई. की आजादी की पहली जंग से भारतीय जनमानस स्वाधीनता और देश की आजादी की भावना से जागृत हो गया था। इसकारण द्विवेदी युगीन कवियों ने प्राचीन भारत के गौरवमयी इतिहास का पुनर्उत्थान करके कविताओं के माध्यम से भारतीय जनता में स्वतंत्रता के प्रति चेतना जागृति की। द्विवेदी युगीन कविताओं में देशप्रेम, राष्ट्रीयता, देश के लिए आत्मबलिदान जैसी भावनाओं की अभिव्यक्ति होने लगी। मैथिलशरण गुप्त की कविता इस दृष्टि से प्रखर राष्ट्रीयता की भावना का उदाहरण थी। उनकी 'भारत-भारती' इस काव्य-संग्रह पर अंग्रेज सरकार ने प्रतिबंध लगाया था। नाथूराम शर्मा 'शंकर' नवीन देश भक्ति की अभिव्यक्ति करते हुए देश पर अपने प्राणों का बलिदान देने की भावना से लिखते हैं- "देशभक्त वीरों मरने से नेक नहीं डरना होगा/ प्राणों का बलिदान देश की वेदी पर करना होगा।" इस प्रकार द्विवेदी युगीन कविताओं में राष्ट्रीयता की भावना प्रमुख विशेषता रही।

2.3.2.1.2 आदर्शवाद और नैतिकता पर बल :

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने साहित्य में आदर्शवाद और नैतिकता को लेकर बहुत ही आग्रही थे। साहित्य में इसका उल्लंघन होने पर वे किसी भी साहित्यकार की रचना को 'सरस्वती' पत्रिका में छापने से साफ मना कर देते थे। महाप्राण निराला की 'जूही की कली' इस कविता पर उन्होंने अश्लीलता का आरोप लगाकर

छापने से इनकार किया था। स्वामी दयानंद सरस्वती के आर्य समाज प्रभाव के चलते आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी जी ने इस कालखंड की कविताओं में ब्रह्मचर्य का महत्त्व, नैतिकता, आदर्शवाद, कर्म निष्ठा, भारत की प्राचीन संस्कृति के प्रति गौरव की भावना आदि को कविता में बढ़ावा दिया। रीतिकालीन काव्य की शृंगार प्रधानता द्विवेदी काल में जरा भी नहीं दिखाई देती। राधा-कृष्ण के वर्णन में जहाँ रीतिकाल में शृंगार के आलंबन स्वरूप का वर्णन था वह द्विवेदी युग में बदल गया। मैथिलीशरण गुप्त के 'प्रियप्रवास' में राधा सामाजिक दायित्व से युक्त लोक सेविका के रूप में उभरी है। इस प्रकार द्विवेदी युगीन काव्यधारा में आदर्शवाद और नैतिकता पर बल दिया गया।

2.3.2.1.3 इतिवृत्तात्मकता का प्रयोग :

द्विवेदी युगीन कविता रीतिकाल के मुक्तक शैली से मुक्त हुई। मुक्तक शैली की जगह इतिवृत्तात्मकता काव्य की विशेषता बन गई। 'इतिवृत्त' का अर्थ है कथा। द्विवेदी काल में शृंगार पर पाबंदी आने से मुक्तक शैली में कविता लिखना कम हुआ। कविता में अब इतिवृत्तात्मकता का प्रयोग होने लगा। प्रबंधात्मक रचनाएँ अधिक मात्रा में लिखी जाने लगी। भारत के प्राचीन धर्मग्रंथों की आदर्श कथाओं को कविता का विषय बनाकर प्रबंध काव्य लिखने की परिपाठी शुरू हुई। इसकारण इस युग में मैथिलशरण गुप्त जैसे कवियों ने 'साकेत', 'जयद्रथ वध', 'पंचवटी', 'यशोधरा', 'द्वार' जैसे प्रबंध काव्य लिखे। तो अयोध्यासिंह उपाध्याय ने 'प्रियप्रवास', 'वैदेही वनवास' जैसे प्रबंध काव्य लिखकर इतिवृत्तात्मक शैली का परिचय दिया। रामनरेश त्रिपाठी ने 'मिलन', 'पथिक', 'स्वप्न' जैसे खंड काव्य लिखे। इसप्रकार द्विवेदी युगीन काव्यधारा में इतिवृत्तात्मकता एक प्रमुख विशेषता बनी।

2.3.2.1.4 समाज सुधार का स्वर :

द्विवेदी युगीन कविताओं में समाज सुधार का स्वर गूँज उठता है। अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार-प्रसार, मुद्रण कला का विकास आदि के कारण भारतीय समाज की बौद्धिक चेतना का विकास हो रहा था। इस कालखंड में विविध सामाजिक संगठनों की ओर से भारतीय समाज में व्याप्त सती प्रथा, बाल विवाह, केशवपन, अंधविश्वास जैसी कुरीतियों दूर करने के पूरजोर और प्रभावी प्रयास हो रहे थे। इसका प्रभाव द्विवेदी युगीन रचनाकारों पर भी हुआ। उन्होंने अपनी कविताओं के माध्यम से सामाजिक सुधार का स्वर बुलंद किया। उन्होंने इन कुरीतियों और धार्मिक रूढ़ियों को अपनी कविताओं का विषय बनाकर उनके भयावह परिणामों से समाज को सचेत किया। साथ ही भारत की उज्ज्वल परंपरा, संस्कृति का यशगान करते हुए उन्होंने भारत की वर्तमान दूर्दशा को जनमानस को परिचित किया। किसान, मजदूर, नारी की दयनीय स्थितियों को कविता के माध्यम से स्पष्ट किया। जैसे- नारी की असहाय और दयनीय स्थिति का वर्णन करते हुए पं. मैथिलीशरण गुप्त जी कहते हैं- 'अबला जीवन हाथ तुम्हारी यही कहानी/आंचल में दूध और आंखों में पानी।' इस प्रकार द्विवेदी युगीन कविताओं में सामाजिक चेतना और सुधार का स्वर बुलंद था।

2.3.2.1.5 कविता के अनेक रूपों का सूत्रपात :

द्विवेदी युगीन काल कविता के अनेक रूपों को लेकर प्रयोगशील कालखंड रहा। रीतिकालीन जड़ता और

रूढिवादिता को छोड़कर स्वच्छंदता को अनुसरण इस काल की कविताओं ने किया था। इस कारण द्विवेदी युगीन काल में कविता के विभिन्न रूप दिखाई देते हैं। कविता में इतिवृत्तात्मक शैली अपनाने के कारण इस काल में प्रबंध काव्य और खंड काव्य अधिक मात्रा में लिखे गए। साथ ही मुक्तक शैली कम हुई थी लेकिन प्रगीतात्मक मुक्तक रचनाएँ भी विपुल मात्रा में लिखी गई। 'प्रगीत' लिखने की परंपरा का सूत्रपात द्विवेदी युग में ही हुआ, जिसका विकास 'छायावादी' युग में दिखाई देता है। मैथिलीशरण गुप्त के 'कुंकवि कीर्तन' और रामचरित उपाध्याय जी के 'कन्हैया' कविता में प्रगीतात्मक मुक्त शैली दिखाई देती है। इस प्रकार द्विवेदी युगी काव्यधारा में कविता के विविध रूप देखने मिलते हैं।

2.3.2.1.6 प्रकृति चित्रण :

द्विवेदी युगीन काव्यधारा में प्रकृति का चित्रण बहुत ही मर्यादित और संयत स्वरूप में किया गया। रीतिकालीन कविताओं में प्रकृति का जो आलंबन और उद्दीपन विभाव की परिपाटी पर प्रकृति का चित्रण होता था, वह इस युग में नहीं हुआ। द्विवेदी युग के रचनाकारों ने प्रकृति चित्रण की सुंदर झाँकी अपनी कविताओं में उतारी है। इस दृष्टि से श्रीधर पाठक, मैथिलीशरण गुप्त और अयोध्यासिंह उपाध्याय की कविता उत्कृष्ट उदाहरण है। श्रीधर पाठक की 'कश्मीर सुषमा' कविता में प्रकृति का बहुत ही सुंदर चित्रण किया गया है।

2.3.2.1.7 अनुवाद का प्रभाव :

द्विवेदी युगीन काव्यधारा पर अनुवाद का भी व्यापक प्रभाव रहा है। इस कालखंड के अनेक कवियों ने अंग्रेजी, बंगला और संस्कृत की उल्लेखनीय कृतियों का हिंदी में अनुवाद करने का प्रयास किया। मैथिलीशरण गुप्त ने माइकेल मधुसूदन के 'मेघनाथ वध' और 'विरहिणी ब्रजांगना' इन बंगला काव्यों का अनुवाद किया। श्रीधर पाठक ने गोल्ड स्मिथ के अंग्रेजी रचना 'हरमिट' का 'एकांतवासी योगी' नाम से अनुवाद किया। साथ ही लेखक ट्रेवलर के 'डेजर्टेड विलेज' का अनुवाद 'ऊजड़ ग्राम' नाम से अनुवाद किया।

2.3.2.1.8 गद्य और पद्य में खड़ी बोली हिंदी का प्रयोग :

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी जी ने हिंदी गद्य और पद्य के लिए एक ही भाषा का आग्रह किया। इस दृष्टि से उन्होंने खड़ी बोली को उपयुक्त माना। काव्य की भाषा के रूप में कवियों को ब्रज भाषा का त्याग करके खड़ी बोली का प्रयोग देने की प्रेरणा उन्होंने दी। 'सरस्वती' पत्रिका में वे ब्रज भाषा की रचनाओं को छापने से इनकार करते थे। स्वयं गद्य और पद्य के लिए खड़ी बोली हिंदी का प्रयोग करते थे और उनसे प्रभावित होकर ही मैथिलीशरण गुप्त, श्रीधर पाठक खड़ी बोली में कविता लिखने लगे। द्विवेदी जी के निरंतर प्रयास और कवियों की रचनाशीलता के कारण कालांतर में सिद्ध हुआ कि हिंदी कविता के लिए खड़ी बोली भी कारगर भाषा है और इसका पूरा श्रेय आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी जी को जाता है।

2.3.2.1.9 छंदों का विविधमुखी प्रयोग :

द्विवेदीकालीन काव्यधारा में छंदों का वैविध्य एक प्रमुख विशेषता मानी जाती है। आचार्य महावीरप्रसाद

द्विवेदी जी ने 'सरस्वती' पत्रिका में अनेक लेखों के माध्यम से कवियों को उनके कर्तव्य के प्रति मार्गदर्शन किया था। उन्होंने 'कवि कर्तव्य' इस निबंध में कवियों को पुराने छंदों के साथ संस्कृत के वर्णवृत्तों का प्रयोग करने को कहा था। इसकारण द्विवेदी युगीन कविताओं में हरिगीतिका, मंदाक्रांता, शार्दूल, विक्रीडित, वर्णिक, ताटंक, वंशस्थ, शिखरिणी जैसे विविध छंदों का कुशल प्रयोग देखने मिलता है। इस कालखंड में उर्दू के छंदों का भी कुछ कवियों ने प्रयोग किया है। आयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' के 'प्रियप्रवास' इस प्रबंध काव्य में संस्कृत के वर्णिक छंद का सुंदर प्रयोग किया गया है।

संक्षेप में कह सकते हैं कि रीतिकालीन रूढ़िवादिता और जड़ता से हिंदी कविताओं को मुक्त करने, शृंगार के जगह पर राष्ट्रभक्ति, सामाजिक रूढ़िवादिता के जगह स्वच्छंदता, काव्यभाषा के रूप खड़ी बोली की प्रतिस्थापना करने का महत्वपूर्ण कार्य किया।

2.3.2.2 पं. मैथिलीशरण गुप्त सामान्य परिचय :

द्विवेदी युग के सर्वश्रेष्ठ कवि और राष्ट्रीय काव्यधारा के प्रवर्तक कवि के रूप में पं. मैथिलीशरण गुप्त का नाम विशेष उल्लेखनीय है। उनकी राष्ट्रीय चेतना से युक्त कविताओं के कारण उन्हें 'राष्ट्रकवि' की उपाधि से सम्मानित किया गया था। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी जी को अपना गुरु मानकर उन्होंने हिंदी साहित्य जगत् को 'साकेत', 'भारत-भारती', 'यशोधरा' जैसी कालजयी रचनाएँ दी। उनका संक्षिप्त परिचय इसप्रकार है-

2.3.2.2.1 पं. मैथिलीशरण गुप्त का जीवन परिचय :

मैथिलीशरण गुप्त जी का जन्म 3 अगस्त, सन् 1886 ई. को चिरगाँव, उत्तरप्रदेश में हुआ। एक संपन्न वैश्य परिवार में मैथिलीशरण जी का बचपन बीता। उनके पिता सेठ रामचरण गुप्त को साहित्य के प्रति गहरा लगाव था और वे खुद एक अच्छे कवि थे। मैथिलीशरण जी को अपने पिताजी से ही काव्य लेखन की प्रेरणा मिली। उनकी प्रारंभिक शिक्षा घर पर ही पूरी हुई, जिसमें उन्होंने संस्कृत, अंग्रेजी और बंगाली भाषा का अध्ययन किया। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी और 'सरस्वती' पत्रिका के संपर्क में आने के बाद उनकी काव्य-रचना को नई दिशा मिली। साहित्य क्षेत्र में किए उल्लेखनीय योगदान के लिए उन्हें इलाहाबाद विश्वविद्यालय (उ.प्रदेश) की ओर से डी. लिट. की उपाधि दी गई। साथ ही भारत सरकार ने उन्हें सन् 1954 ई. को 'पद्मभूषण' पुरस्कार से सम्मानित किया। 'साकेत' इस महाकाव्य के लिए उन्हें मंगला प्रसाद पारितोषिक प्रदान किया गया। राष्ट्रपति ने उन्हें राज्यसभा का सदस्य मनोनित किया था और उनकी जयंती 3 अगस्त को हर वर्ष 'कवि दिवस' के रूप में मनाई जाती है। मैथिलीशरण गुप्त का 12 दिसंबर, 1964 ई. को देहावसान हुआ।

2.3.2.2.2 पं. मैथिलीशरण की प्रमुख रचनाएँ :

मैथिलीशरण गुप्त जी पहले 'वैश्योपकारक' पत्रिका में 'रसिकेंद्र' इस उपनाम से ब्रजभाषा में लिखित अपनी रचनाएँ छपवाते थे। जब उन्हें 'सरस्वती' पत्रिका की जानकारी मिली तो उन्होंने अपनी ब्रजभाषा में लिखी एक रचना 'रसिकेंद्र' उपनाम से सरस्वती पत्रिका में भेजी। तब आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी जी ने उन्हें एक पत्र भेजकर कहा कि, हम बोलचाल की भाषा में लिखी कविता ही छापते हैं। 'रसिकेंद्र' बनने का जमाना अब

गया। गुप्त जी पर दोनों बातों का गहरा प्रभाव पड़ा और उन्होंने अपना 'रसीकेंद्र' यह नाम हमेशा के लिए त्याग दिया और खड़ीबोली में लिखना शुरू किया। उन्होंने खड़ी बोली में रचना लिखकर 'सरस्वती' पत्रिका को भेजी तो आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी जी ने उसमें बहुत-सा संशोधन किया। छपी हुई कविता एकदम नई कविता बनी थी लेकिन उसमें कवि के रूप में मैथिलीशरण गुप्त जी का ही नाम था। तब से गुप्त जी आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी जी को अपना गुरु मानने लगे। उसके बाद उन्होंने खड़ी बोली हिंदी में एक-से-बढ़कर एक रचनाएँ लिखी। गुप्त जी ने अपने जीवन काल में महाकाव्य, खंडकाव्य और नाटक इन विधाओं में तकरीबन 74 रचनाएँ लिखी है। उनकी रचनाएँ मौलिक और अनूदित इन दो प्रकारों की थी। उनका संक्षिप्त परिचय इसप्रकार है-

अ) मौलिक रचनाएँ :

*** महाकाव्य – साकेत (1931 ई.)**

*** खंडकाव्य :**

- | | |
|--------------------------------------|-------------------------|
| 1. 'रंग में भंग'(1909 ई.) | 2. जयद्रथ वध (1910 ई.) |
| 3. भारत-भारती (1912 ई.) | 4. शकुंतला (1914 ई.) |
| 5. पंचवटी (1955 ई.) | 6. किसान (1916 ई.) |
| 7. सैरंध्री (1927 ई.) | 8. वकसंहार (1917 ई.) |
| 9. वनवैभव (1927 ई.) | 10. शक्ति (1927 ई.) |
| 11. झंकार (1929 ई.) | 12. यशोधरा (1932 ई.) |
| 13. द्वापर (1936 ई.) | 14. सिद्धराज (1936 ई.) |
| 15. नहुष (1940 ई.) | 15. कुणाल गीत (1941 ई.) |
| 17. कर्बला (1942 ई.) | 18. अजित (1946 ई.) |
| 19. हिडिंबा (1950 ई.) | 20. जयभारत (1952 ई.) |
| 21. विष्णु प्रिया (1957 ई.) | 22. रत्नावली (1960 ई.) |
| 23. उर्मिला (1908-09 अप्रकाशित) आदि। | |

आ) अनूदित रचनाएँ :

बंगला से अनूदित : प्लासी का युद्ध, विरहिणी ब्रजांगना, वीरांगना, मेघनाथ वध, वृत्र संहार आदि।

संस्कृत से अनूदित : स्वप्न वासवदत्ता, गीतामूल, दूत घटोत्कच, अविमारक, प्रतिमा, अभिषेक, उरुभंग आदि।

इ) नाटक :

पद्यनाटक : अनघ, दिवोदास, पृथ्वीपुत्र, जयिनी, लीला ।

गद्य नाटक : तिलोत्तमा, चंद्रहास, उद्धार आदि।

2.3.2.2.3 पं. मैथिलीशरण गुप्त का हिंदी साहित्य में योगदान :

मैथिलीशरण गुप्त 'मधुप' नाम से अनूदित रचनाएँ लिखते थे और 'भारतीय', 'नित्यानंद' नाम से अंग्रेज सरकार के विरुद्ध कविता लिखते थे। भारतीय स्वाधीनता के परिप्रेक्ष्य में उन्होंने देशभक्ति से ओत-प्रोत भरी 'भारत-भारती' (1912 ई.) रचना लिखी। इस रचना में उनकी प्रखर राष्ट्रभक्ति देखकर महात्मा गांधी ने उन्हें 'राष्ट्रकवि' की उपाधि से सम्मानित किया था। इसमें प्रखर राष्ट्रीय चेतना के कारण ब्रिटिश सरकार ने इसपर पाबंदी लगाई थी। हिंदी साहित्य में खड़ी खोली के प्रथम महत्त्वपूर्ण कवि के रूप में उन्हें याद किया जाता है। उन्होंने प्रारंभ में ब्रजभाषा में 'रसीकेंद्र' नाम से रचनाएँ लिखी और संस्कृत छंदों में अनेक अन्योक्तियाँ लिखी। राष्ट्रीय चेतना, आदर्शवाद, धार्मिक नैतिकता और मानवीय मूल्यों का उत्थान उनके कविताओं की विशेषता रही। भारत की प्राचीन संस्कृति का यशगान उनकी कविताओं में झलकता है।

2.3.2.3 पं. श्रीधर पाठक सामान्य परिचय :

कवि पं. श्रीधर पाठक द्विवेदीकालीन कवियों में एक महत्त्वपूर्ण कवि माने जाते हैं। द्विवेदीकालीन प्रकृति सौंदर्य, राष्ट्र प्रेम और समाजसुधार की कविताओं के क्षेत्र में इनका नाम विशेष उल्लेखनीय है। उनका संक्षिप्त परिचय इसप्रकार है।

2.3.2.3.1 पं. श्रीधर पाठक सामान्य परिचय :

कवि श्रीधर पाठक जी का जन्म 11 जनवरी, सन् 1858 ई. को उत्तर प्रदेश के आगरा जिले में स्थित जौधरी नामक गाँव एक संपन्न सारस्वत ब्राह्मण परिवार में हुआ। उनके पिता का नाम पंडित लीलाधर पाठक था। उनके पूर्वज मूल पंजाब के सिरसा के निवासी थे जो आठवीं शती में आगरा के जौधरी गाँव में आकर बसे थे। उनके घर का वातावरण सुसंस्कृत था। इसकारण श्रीधर पाठक जी की प्रारंभिक शिक्षा घर पर हुई। उन्होंने घर पर ही संस्कृत और फारसी भाषा का ज्ञान प्राप्त किया। उसके बाद सन् 1857 ई. को हिंदी प्रवेशिका और सन् 1879 को अंग्रेजी मीडिल परीक्षाओं में प्रथम स्थान प्राप्त किया। सन् 1880 में ऐट्रेंस परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की, जो तत्कालीन समय में एक उच्च शिक्षा मानी जाती थी। इसकारण उनकी नियुक्ति राजकीय सेवा में हुई। उन्होंने जनगणना आयुक्त के रूप में कलकत्ता से अपनी नौकरी की शुरुआत की। जनगणना के काम के कारण उन्होंने भारत के अनेक पर्वतीय प्रदेशों का दौरा करके भारत के प्राकृतिक सौंदर्य का अनुभव किया। उसके बाद उन्होंने ब्रिटिश सरकार के रेल, सार्वजनिक कार्य, सिंचाई विभाग के बड़े पदों पर कार्य किया और वे अधीक्षक बने। सरकारी नौकरी के साथ-साथ उन्होंने हिंदी कविता लेखन और अनुवाद का भी कार्य जारी रखा था। उनके उल्लेखनीय साहित्यिक योगदान के कारण सन् 1915 ई. में लखनऊ (उत्तर प्रदेश) आयोजित

पाँचवें हिंदी साहित्य सम्मेलन का उन्हें सभापति बनाया गया था। सन् 1914 ई. में सेवा निवृत्त हुए और 13 सितंबर, सन् 1928 ई. को इनका देहावसान हुआ।

2.3.2.3.2 श्रीधर पाठक का रचनात्मक परिचय :

कवि श्रीधर पाठक द्विवेदीकाल के प्राकृतिक सौंदर्यवादी कवि माने जाते हैं। उनका पूरा बचपन एक सुसंस्कृत ब्राह्मण परिवार में बीतने के कारण बचपन से ही उन्हें पढ़ने-लिखने में रुचि थी। जनगणना अधिकारी के रूप में कार्य करते समय उन्होंने भारत के कई पर्वतीय एवं पहाड़ी इलाकों का दौरा किया। इस समय प्रकृति की सुंदरता से वे इतने प्रभावित हुए कि उनकी अनेक रचनाओं में इसका वर्णन आया है। श्रीधर पाठक जी ने कविता, निबंध, पत्र लेखन, अनुवाद के क्षेत्र में उल्लेखनीय लेखन किया है। उनके साहित्य का संक्षिप्त परिचय इसप्रकार है-

अ) कविता :

- | | |
|---------------------------------|---------------------------|
| 1. मनोविनोद (भाग-1,2,3-1882 ई.) | 2. जगत सचाई सार (1887 ई.) |
| 3. धन विनय (1900 ई.) | 5. गुनवंत हेमंत (1900 ई.) |
| 5. वनाष्टक (1912 ई.) | 6. देहरादून (1915 ई.) |
| 7. गोखले गुनाष्टक (1915 ई.) | 8. सांध्य अटन (1918 ई.) |

आ) निबंध एवं अन्य रचनाएँ :

- | | |
|--------------------------------------|---------------------------------------|
| 1. बाल भूगोल, कश्मीसुषमा (1904 ई.) | 2. आराध्य शोकांजलि (1912 ई.) |
| 3. जॉर्ज बंदना (1912 ई.) | 4. भक्ति विभा (1915 ई.) |
| 5. श्रीगोपिकागीत, भारत गीत (1928 ई.) | 6. तिलस्माती मुँदरी और पत्र (1928 ई.) |

इ) अनुदित रचनाएँ :

1. एकांतवासी योगी (1886 ई.)- गोल्डस्मिथ की रचना हरमिट का खड़ी बोली हिंदी में अनुवाद ।
2. उजड़ ग्राम (1889 ई.) - गोल्डस्मिथ की डेजर्टेड विलेज का ब्रज भाषा में अनुवाद।
3. श्रांत पथिक (1902 ई.) - गोल्डस्मिथ के ट्रैवेलर का खड़ी बोली हिंदी में अनुवाद।

2.3.2.3.3 श्रीधर पाठक का हिंदी कविता में योगदान :

कवि श्रीधर पाठक द्विवेदीयुगीन महत्त्वपूर्ण कवियों में शीर्षस्थ है। प्रकृति सौंदर्य, राष्ट्र प्रेम, वैयक्तिक अनुभूति, नए छंद, लयों का प्रयोग, विषय की नवीनता, समाजसुधार, भावना प्रधानता ओर नवीन भाषा का प्रयोग इनकी कविताओं की विशेषता थी। उनकी कविताओं में भारतेंदु युग के कवियों के सामन देशभक्ति का

चित्रण दिखाई देता है। देश के अतीत का गौरवगान इनकी कविताओं में देखने मिलता है। अपने समय के कवियों में पाठक जी ने प्रकृति की सुंदरता का सबसे ज्यादा वर्णन किया है इसलिए उन्हें 'प्रकृति के उपासक' कवि के रूप में भी जाना जाता है। 'प्राकृतिक सौंदर्य' इस कविता में कवि लिखते हैं- "ये सब भाँति-भाँति के पक्षी,/ ये सब रंग-रंग के फूल/ यह वन की लहलही लता,/ नव ललित-ललित शोभा की मूल। ये नदियाँ, ये झील, सरोवर,/ कमलों पर भौरों की गूँज,/ बड़े सुरीले बोलों से ये, गूँज रही बेलों की कुंज" इसप्रकार पाठक प्रकृति सौंदर्य के चितरे थे।

'गुणवंत हेमंत' (1900 ई.) इनकी मौलिक खड़ी बोली हिंदी की पहली रचना मानी जाती है। तो 'एकांतवासी योगी' यह अनूदित रचना ख्याल और लावणी शैली में लिखी गई रचना मानी जाती है। विषय और शिल्प की दृष्टि से इन्होंने हिंदी कविता को दिशा देने का काम किया। हिंदी कविताओं में स्वच्छंदी कविताओं के प्रेरणास्रोत के रूप में श्रीधर पाठक जी का नाम लिया जाता है। अन्य कवियों की तुलना में श्रीधर पाठक जी ने कविता में व्यक्तिवादिता, स्वच्छंदता और सामाजिक यथार्थ को स्पष्ट करने का सफल प्रयास किया है। उनके इस प्रयास के कारण आगे छायावादी काव्यधारा में रूढ़ीगत काव्य ढांचा टूटा और नई कविता की भावभूमि तैयार हुई। उन्होंने गद्य और कविता के लिए खड़ी बोली हिंदी भाषा के प्रयोग में समानता लाने का ऐतिहासिक कार्य किया है। उनकी काव्य रचनाओं में सरल और सुबोध खड़ी बोली और ब्रजभाषा का प्रयोग किया है। पारंपाकिर क्लिष्ट भाषा और शब्दावली का प्रयोग इनकी कविताओं में नहीं मिलता है। गोल्डस्मिथ की अंग्रेजी कविताओं का सफल खड़ी बोली में अनुवाद करके उन्होंने हिंदी कविताओं नई दृष्टि देने का प्रयास किया। श्रीधर पाठक ने नए और पुराने कविताओं के रूप विधान का समन्वय किया।

2.3.3 छायावादी काव्यधारा : सामान्य परिचय, प्रमुख कवि- जयशंकर प्रसाद एवं महादेवी वर्मा :

आधुनिक हिंदी साहित्य में सन् 1918 से 1936 ई. तक के कालखंड की हिंदी काव्यधारा को 'छायावादी युग' माना जाता है। इस कालखंड में राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्यधारा, प्रणय गीत, बच्चन की हालावादी रचनाएँ भी लिखी जा रही थीं। लेकिन प्रसाद, पंत, निराला और महादेवी वर्मा इन चारों की कविता छायावादी काव्य की विशेषताओं से युक्त थी। इसलिए इन चारों को छायावाद का चतुष्टय कहा जाता है। इस कालखंड में इन चार कवियों की कविताओं को आधार मानते हुए इसे 'छायावादी काव्यधारा' कहा जाता है। छायावादी काव्यधारा को समझने के लिए हमें तत्कालीन परिवेश एवं पृष्ठभूमि को जानना जरूरी है।

* छायावाद की पृष्ठभूमि :

छायावादी काव्यधारा के उदय के समय भारतीय समाज में स्वाधीनता आंदोलन की गतिविधियाँ तेज हो गई थी। समाज में म.गांधी एवं उनके गांधीवादी विचारों के प्रभाव के कारण समाज में स्वाधीनता, देवभक्ति, अहिंसा, सत्य, सत्याग्रह, सविनय विरोध आदि मूल्य जनमानस में व्याप्त थे। अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार-प्रसार के कारण देश के बुद्धिजीवियों ने देश का नेतृत्व संभालते हुए देश की आजादी को लेकर आम जनता की चेतना

को जाग्रत किया था। ईसाई धर्म प्रचारकों के खिलाफ भारतीय संस्कृति और मूल्यों के प्रति आकर्षण बढ़ गया था। विभिन्न सामाजिक संस्थाओं ने अनेक सांस्कृतिक एवं सामाजिक आंदोलन करके भारतीय समाज का पुनर्जागरण का कार्य किया। प्रार्थना समाज, आर्य समाज, ब्राह्मो समाज, रामकृष्ण मिशन इन संस्थाओं के संचालक महापुरुषों के जीवन मूल्यों और सिद्धांतों से तत्कालीन कविता प्रभावित हुई। गांधीवाद, समाज सुधार, धर्म सुधार, आध्यात्मिकता आदि का प्रभाव छायावादी कवियों पर पड़ा था। छायावादी कवियों ने द्विवेदीकालीन कविता की विशेषताओं के प्रतिक्रिया के रूप में नए प्रयोग कविता में किए। इसमें द्विवेदी युग की काव्य की स्थूलता, अतिशय नैतिकता और इतिवृत्तात्मकता का विरोध हुआ। छायावादी काव्य में शृंगार की सूक्ष्म अभिव्यक्ति होने लगी। व्यक्तिवादिता, वेदना की अभिव्यक्ति, सौंदर्य का सूक्ष्म चित्रण, राष्ट्रीयता, आत्म गौरव और मानवतावाद जैसे मूल्यों को छायावादी कवियों ने स्वीकारा।

* ‘छायावाद’ का अर्थ और परिभाषा :

हिंदी में प्रारंभ में ‘छायावाद’ इस शब्द का प्रयोग उन कविताओं के लिए इस्तेमाल किया जाता है जिसमें प्रतीकात्मकता के कारण अर्थ अस्पष्ट होता था। ‘छाया’ यह शब्द अर्थ के स्तर पर इस्तेमाल किया जाता था। अंग्रेजी साहित्य में ईसाई संतों द्वारा आध्यात्मिक प्रतीकवाद को आधार मानकर कविता लिखने का प्रचलन था। इसका अनुकरण प्रारंभ में बंगला की कविताओं में होने लगा और वहाँ से वह हिंदी में आई। इस संदर्भ में मुकुटधर पाण्डेय ने सन् 1920 ई. को शारदा पत्रिका में लिखे ‘हिंदी में छायावाद’ इस निबंध सर्वप्रथम ‘छायावाद’ इस शब्द का प्रयोग किया। उन्होंने ऐसे कविताओं को छायावादी कविता कहा जिसमें अस्पष्टता और भावों का धँधुलापन दिखाई पड़ता है। आगे मानव और प्रकृति के सूक्ष्म सौंदर्य में आध्यात्मिक छाया (रहस्यवाद) का अभ्यास कराती और वेदना की रहस्यमयी अनुभूति की लाक्षणिक एवं प्रतीकात्मक शैली में अभिव्यक्ति करने वाली कविताओं को छायावादी काव्य कहा जाने लगा। ‘छायावाद’ को समझने के लिए कुछ विद्वानों की परिभाषा देखना जरूरी है -

* आ. रामचंद्र शुक्ल :

“छायावाद शब्द का प्रयोग दो अर्थों में समझना चाहिए- एक तो रहस्यवाद के अर्थ में, जहाँ उसका संबंध काव्यवस्तु से होता है, अर्थात् जहाँ की उस अनंत और अज्ञात प्रियतम को आलम्बन बनाकर अत्यंत चित्रमयी भाषा में प्रेम की अनेक प्रकार से व्यंजना करता है। छायावाद शब्द का दूसरा प्रयोग काव्य शैली या पद्धति विशेष के व्यापक अर्थ में हैं।”

* जयशंकर प्रसाद :

“कविता के क्षेत्र में पौराणिक युग की किसी घटना अथवा देश-विदेश की सुंदरता के बाह्य वर्णन से भिन्न जब वेदना के आधार पर स्वानुभूतिमयी अभिव्यक्ति होने लगी, तब हिंदी में उसे ‘छायावाद’ के नाम से अभिहित किया गया।:ध्वन्यात्मकता, लाक्षणिकता, सौंदर्यमय प्रतीक विधान तथा उच्चार के साथ स्वानुभूति की विवृति छायावाद की विशेषताएँ हैं।”

*** डॉ. रामकुमार वर्मा :**

“परमात्मा की छाया आत्मा में, आत्मा की छाया परमात्मा में पड़ने लगती है, तभी छायावाद की सृष्टि होती है।”

*** डॉ. नगेंद्र :**

“छायावाद स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह है। यह एक विशेष प्रकार की भाव पद्धति है, जीवन के प्रति विशेष भावात्मक दृष्टिकोण है।”

*** महादेवी वर्मा :**

“छायावाद तत्त्वतः प्रकृति के बीच जीवन की उद्गीर्ण है।:उसका मूल दर्शन सर्वात्मवाद है।”

*** आ. नंददुलारे वाजपेयी :**

“मानव तथा प्रकृति के सूक्ष्म, किंतु व्यक्त सौंदर्य में आध्यात्मिक छाया का भाव छायावाद की सर्वमान्य व्याख्या हो सकती है।”

*** आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी :**

“छायावाद के मूल में पाश्चात्य रहस्यवादी भावना अवश्य थी। इस रहस्यवाद की मूल प्रेरणा अंग्रेजी की रोमांटिक भावधारा की कविता से प्राप्त हुई थी।

संक्षेप में कह सकते हैं कि छायावादी एक रहस्यवादी कविता है जिसकी अभिव्यंजना शैली विशिष्ट होती है। उसमें स्थूलता के स्थान पर सूक्ष्मता होती है। उसमें प्रेम, प्रकृति एवं सौंदर्य विद्यमान होता है। उसमें वैयक्तिकता और स्वानुभूति की प्रधानता होती है। वह अंग्रेजी के रोमांटिक काव्यधारा से प्रभावित है। सांस्कृतिक चेतना और मानवतावादी दृष्टिकोण की भावना प्रबल होती है।

2.3.3.1 छायावादी काव्यधारा की विशेषताएँ :

आधुनिक हिंदी कविता के तृतीय चरण की कविताओं को छायावादी काव्यधारा कहा जाता है। यह काव्यधारा मूलतः द्विवेदी युग की अति उपदेशपरकता और इतिवृत्तात्मकता के प्रतिक्रिया के रूप में उभरा था। इसमें स्थूल के स्थान पर सूक्ष्म सौंदर्य और रहस्यात्मक अनुभूति को अपनाया गया था। हिंदी कविता के विभिन्न पड़ावों में इसे स्वर्णिम काव्य युग कहा जाता है। इस छायावादी काव्यधारा की विशेषताओं का विवेचन इसप्रकार है:

2.3.3.1.1 नारी सौंदर्य का चित्रण :

छायावादी काव्यधारा में नारी सौंदर्य का सूक्ष्म और संयत चित्रण दिखाई देता है। इसमें कहीं पर भी मांसलता या प्रणयासक्ती के अश्लील भाव नहीं हैं। कुछ जगहों पर इन कवियों ने प्रकृति की सुंदरता के माध्यम

से भी नारी के सौंदर्य का वर्णन किया है। वे नारी के शुद्ध, सात्विक रूप एवं हृदय के महिमा का वर्णन करते हैं। जैसे कवि जयशंकर प्रसाद के 'कामायनी' इस महाकाव्य में श्रद्धा का वर्णन करते हुए कवित लिखते हैं- “नील परिधान बीच सुकुमारी, /खुल रहा मृदुल अध खुला अंग, /खिला की जो बिजली का फूल, /मेघवन बिच गुलाबी रंग।” इसप्रकार छायावादी कवियों ने नारी के सौंदर्य का बहुत ही खूबसूरत वर्णन किया है लेकिन वह सूक्ष्म और श्लील है।

2.3.3.1.2 प्रेम भावना के विविध रूप :

छायावादी काव्यधारा में प्रेम की भावना का उदात्त रूप देखने मिलता है। छायावादी कवियों की कविता में प्रेम भावना का विकास विविध रूपों में हुआ है। इसमें प्रकृति के प्रति प्रेम, नारी के प्रति प्रेम, मानवता के प्रति प्रेम और अज्ञात चिंतन के प्रति भावन अभिव्यक्त हुई है। छायावाद में प्रकृति के सुकुमार कवि कहलानेवाले सुमित्रानंद पंत ने प्रकृति प्रेम को अभिव्यक्त करते हुए लिखा है- “छोड़ द्रुमो की मृदुछाया/ तोड़ प्रकृति से भी माया/ बाले! तेरे बाल जाल में/ कैसे उलझा लूँ लोचन।” स्पष्ट है कि यहाँ कवि का प्रकृति प्रेम अभिव्यक्त हुआ है। छायावादी कवि नारी के प्रेम का भावोत्कट वर्णन किया है। लेकिन इसमें कहीं पर भी मांसलता या वासना की गंध नहीं है। छायावादी कवि ने प्रेम के क्षेत्र की रूढ़ीग्रस्तता और मर्यादाओं का विरोध करके एक आदर्शवादी प्रेम को प्रस्तुत किया है। जैसे- दोनों हम भिन्न वर्ण/ भिन्न जाति, भिन्न रूप, भिन्न धर्म भाव/ पर केवल अपनापन है, /प्राणों से एक है।” साथ ही छायावादी काव्यधारा में अज्ञात चिंतन के प्रति अध्यात्मिक प्रेम का वर्णन भी दिखाई देता है। यह प्रेम साधना के स्तर पर रहस्यवादी प्रेम है। इन कवियों को अज्ञात चिंतन सृष्टि में सर्वत्र दिखाई देता है। इस क्षेत्र में कवयित्री महादेवी वर्मा की कविता बेजोड़ है। वे लिखती हैं- “प्रिय चिंतन हे सजनी,/ क्षण क्षण नवीन सुहागन मैं/ तुम मुझ में फिर परिचय क्या?” अर्थात् उस अज्ञात चिंतन के प्रेम को आत्मा और परमात्मा के प्रेम सदृश्य चित्रित किया गया है। छायावादी कवियों को सभी सुंदरता में मानव प्रेम सुंदर लगता है। उनकी कविताओं में मानव और मानवता के प्रति प्रेम भावना का आविष्कार हुआ है। कवि पंत लिखते हैं- “सुंदर है विहग, सुमन सुंदर/ मानव! तुम सब से सुंदरतम” इसप्रकार छायावादी कविता में प्रेम भावना के विभिन्न रूपों का वर्णन दिखाई देता है।

2.3.3.1.3 मानवतावादी दृष्टि:

छायावादी कवि मानव और मानवता का सम्मान करते हैं। उनकी कविताओं में मानव प्रेम भावना का वर्णन आता है। छायावादी कवियों ने यह मानवतावादी दृष्टि रविंद्रनाथ और महर्षि अरविंद के मानवतावादी विचारों से ग्रहण की है। वे नारी को भी मानव समझते हैं। रीतिकाल में नारी को भोग की वस्तु मानकर उसे दासी बनाया गया था। मानव होने के सभी अधिकारों से उसे वंचित रखा गया था। लेकिन छायावादी कवियों ने उसकी स्वतंत्रता की वकालत करते हुए उसकी मुक्ति के प्रयास किए हैं। वे लिखते हैं- “मुक्त करो नारी को मानव,/ चिर बंधिनी नारी को।” उन्होंने नारी को मानवतावादी दृष्टिकोण से देखने की दृष्टि का विकास किया।

छायावादी कवि समाज के सर्वहारा वर्ग के प्रति विशेष संवेदना और सहानुभूति रखते हैं। किसान, मजदूर, असहाय नारी, भिक्षुक आदि उनकी करुणा के पात्र बन जाते हैं। छायावादी कवि निराला के मन में इस असहाय वर्ग के प्रति विशेष करुणा थी। वे अपनी 'भिक्षुक' कविता में एक भिखारी के प्रति अपनी मानवीय संवेदना व्यक्त करते हुए लिखते हैं- "वह आता, दो टूक कलेजे के करता, / पछताता पथपर आता / पेट-पीट दोनों मिलकर है एक / चल रहा है लकड़ियाँ टेक।" उन्होंने 'विधवा', 'तोड़ती पत्थर' आदि कविताओं में शोषितों के प्रति मानवीय दृष्टिकोण का परिचय दिया है।

2.3.3.1.4 रहस्यवाद की विशेषता :

छायावादी कविताओं की रहस्यवाद प्रमुख विशेषता रही है। बहुत से आलोचकों ने रहस्यवाद को छायावादी काव्यधारा का प्राणतत्त्व माना है। महादेवी वर्मा रहस्यवाद का अर्थ बताते हुए कहती है कि इस भावना में पहला चरण विश्व के सभी वस्तुओं में चेतनता का आरोप करना और दूसरा चरण असीम के प्रति, अज्ञात चिरंतन के प्रति आत्म विसर्जन करना है। छायावादी काव्यधारा में जयशंकर प्रसाद और महादेवी वर्मा जी की कविताएं रहस्यवादी भावना के संदर्भ में सबसे सुंदर हैं। लेकिन छायावादी कविता में जो आध्यात्मिकता है वह प्राचीन या परंपरागत आध्यात्मिकता से बिलकुल भिन्न है। जैसे संत कबीर आदि में जो तन्मयता और विहानुभूति थी वह छायावादी कवियों में नहीं है। क्योंकि छायावादी कवि आध्यात्मिक के किसी निश्चित सीमाओं को खुद को बाँधते नहीं हैं। वह भावना के क्षेत्र में किसी प्रकार का प्रतिबंध स्वीकार नहीं करते। छायावादी कवियों ने प्रेयसी, प्रियतम का संबंध भी विविध भावनाओं के परिप्रेक्ष्य में किया है। जैसे महादेवी वर्मा लिखते हैं- "प्रिय चिरंतन हे सजनी, / क्षण क्षण नवीन सुहागन मैं / तुम मुझ में प्रिय / फिर परिचय क्या ?" अर्थात् अज्ञात चिरंतन को अपने हृदय के अंदर ही धारण करने से उसका दूसरा परिचय देने की जरूरत वे महसूस नहीं करते।

2.3.3.1.5 तात्त्विक चिंतन :

छायावादी काव्यधारा में तत्त्वज्ञान या तत्त्व चिंतन की एक विशेष प्रवृत्ति दिखाई देती है। छायावादी कवियों की कविता में प्राचीन अद्वैत दर्शन, विशिष्टाद्वैत, योग दर्शन, आनंदवाद, विश्व मानवतावाद आदि दार्शनिक तत्त्वज्ञान का समावेश है। जयशंकर प्रसाद की कविताओं में आनंदवाद का दर्शन होता है। महादेवी वर्मा और निराला की कविताओं में अद्वैत दर्शन का प्रयोग हुआ है। जयशंकर प्रसाद 'कामायनी' इस महाकाव्य में 'विश्वमानवतावाद' की अभिव्यक्ति करते हैं। निराला की कविता में अद्वैतवादी चिंतन इस उदाहरण में देख सकते हैं, जैसे- "तुम तुंग हिमालय शृंग, / और मैं चंचल गति सुर-सरिता" स्पष्ट है कि छायावादी कविताओं में तत्त्व चिंतन का सुंदर प्रयोग दिखाई देता है।

2.3.3.1.6 वेदना के विविध रूप :

छायावादी कविता में वेदना की भावना के विविध रूपों का वर्णन दिखाई देता है। कहीं पर वह अनंत वेदना के रूप में साकार होती है तो कहीं पर करुणा और निराशा की भावना में अभिव्यक्त होती है। छायावादी कवि

अपने व्यक्तिगत जीवन की निराशा को व्यापक स्तर पर अभिव्यक्त करता है। उसे वह वेदना विश्वव्यापी दिखाई देती है। छायावादी कवि नियति पर विश्वास करते हुए दुःखवादी बन जाता है। कवि पंत तो कवि बनने के लिए वेदनानुभूति को महत्वपूर्ण मानते हैं। वे लिखते हैं- “वियोगा होगा पहला कवि/ आह से उजपा होगा गान/ उमड़कर आँखों से चूपचाप/ वही होगी कविता अनजान” स्पष्ट है कि कवि की वेदना ही कविता को जन्म देती है।

लेकिन जयशंकर प्रसाद और महादेवी वर्मा की कविताओं में व्यक्तिगत निराशा और भौतिक दुःखों की वेदना का अंधकार नहीं है। उनकी वेदना की अनुभूति के पीछे शुद्ध सेवा और आध्यात्मिक जीवन की अनुभूति है। प्रसाद की कविता में वेदना की अभिव्यक्ति हृदय की शुद्धता का सुंदर सत्य बनकर आती है। लेकिन निराला के जीवन में भौतिक सुखों की अभावग्रस्तता के कारण वेदना की एक अजीब-सी कसमसाहट दिखाई देती है। वे कहते हैं- “जीवन चीरकालीक क्रंदन/ मेरा अंतर वज्र कठोर/ देना जी भरकर झकझोर” अर्थात् जीवन की कठोरता के कारण वे वेदना के प्रति वज्र की तरह कठोर बन गए थे। इसप्रकार छायावादी कविता में वेदना के विविध रूपों की अभिव्यक्ति हुई है।

2.3.3.1.7 राष्ट्रीयता एवं देशप्रेम की भावना :

छायावादी काव्यधारा के दौरान भारतीय स्वाधीनता आंदोलन की गतिविधियाँ बहुत तेज हो रही थी। भारतीय जनमानस स्वाधीनता के लिए जागरूक हुआ था। इसका प्रभाव छायावादी कवियों पर भी पड़ा और उन्होंने भारत के उज्ज्वल इतिहास और सांस्कृतिक विरासत को अपनी कविताओं अभिव्यक्त किया। उनकी कविता में भारत देश के प्रति प्रेम की सुंदर अभिव्यक्ति हुई है। इस दृष्टि से जयशंकर प्रसाद की कविता महत्वपूर्ण है। वे लिखते हैं- “अरूण यह मधुमय देश हमारा” प्रसाद की कविता में प्राचीन भारत की संपन्नता और गौरव का यशगान हुआ है।

छायावादी कविता में राजनीतिक आंदोलन के परिप्रेक्ष्य में भी वर्णन आता है। इस कालखंड में पं. माखनलाल चतुर्वेदी की कविताएं राष्ट्रप्रेम के लिए मशहूर थी। उनकी ‘पुष्प की अभिलाषा’ यह कविता जन-जन की प्रेरणा बन गई थी। वे लिखते हैं कि ‘मुझे तोड़ देना वनमाली/ उस पथपर देना तुम फेंक/ मातृभूति पर शीश चढ़ाने/ जिस पथ जावे, वीर अनेक’ इसप्रकार राष्ट्रीयता की भावना छायावादी कविता विशेषता रही और यह राष्ट्रीयता की भावना कुछ जगहों पर क्रांति का स्वर बनी थी।

2.3.3.1.8 शृंगारिकता की भावना और ऐंद्रिकता :

छायावादी काव्यधारा विशुद्ध सौंदर्यवादी प्रेम की कविता है। इस दृष्टि से प्रसाद, पंत, महादेवी और निराला की कविता में शृंगारिकता का संयत और मर्यादित वर्णन आता है। लेकिन इसी कालखंड में नरेंद्र अंचल, भगवतीचरण वर्मा, बच्चन आदि कवियों की कविताओं में ऐंद्रिक प्रेम का वर्णन आया है। इनकी कविता में प्रेम इंद्रियों के स्तर पर उतरता है और अश्लील बन जाता है। जैसे- “तब तक समझूँ कैसे प्यार/ अधरों से जबतक न कराये/ प्यारी उस मधुरस का पान।” इस प्रकार प्रसाद, पंत, निराला और महादेवी वर्मा को छोड़ अन्य कवियों

की कविताओं में शृंगारिकता की भावना का इन्द्रियजन्य वर्णन है। मूलतः यह काव्यधारा छायावादी नहीं बल्कि पश्चिमी साहित्य के प्रभाव से रोमांटिक काव्यधारा का अनुकरण थी।

2.3.3.1.9 व्यक्तिवाद की प्रधानता:

छायावादी काव्यधारा में व्यक्ति को महत्त्व देने के कारण व्यक्तिवाद की प्रधानता है। इसमें वैयक्तिक भावना का विकास दिखाई देता है। द्विवेदी युग की अति उपदेशपरकता और सामाजिकता की प्रतिक्रिया के रूप में छायावादी काव्य में वैयक्तिक चिंतन और अनुभूति को महत्त्व दिया गया है। इस युग में कविता अंतर्मुख हुई और कवि अहं के बद्ध हो गया। वह व्यक्तिगत संस्कार, अनुभव, चिंतन और कल्पना के आधार पर वस्तु का वर्णन करने लगा। इसलिए कविता में उसका व्यक्तित्व सामने आने लगा। उनकी व्यक्तिवाद का दूसरा पक्ष यह भी था कि वे व्यक्तिगत जीवन और उसे सुख-दुःख, उतार-चढ़ाव, आशा-निराशा में इतना उलझ गया कि उसकी अभिव्यक्ति वह अपनी कविताओं में करने लगा। इस अहंवादिता या व्यक्तिवाद का प्रबल रूप हमें जयशंकर प्रसाद और निराला की कविताओं में दिखाई देता है।

2.3.3.1.10 कलापक्ष की विशेषता:

छायावादी काव्यधारा द्विवेदी काल की इतिवृत्तात्मक शैली का विरोध करती है। भाषा, छंद और संरचना को लेकर छायावादी काव्यधारा में पर्याप्त बदलाव देखने मिलते हैं। इसमें सर्व प्रथम गीत और प्रगीत मुक्त शैली को अपनाया गया। क्योंकि छायावादी कवि में वैयक्तिकता और आत्माभिव्यंजना की प्रवृत्ति के कारण गीत तत्त्व का विकास हुआ। महादेवी वर्मा ने हिंदी साहित्य को एक से बढ़कर एक गीत दिए हैं। छायावादी गीत पुराने गीतों की तुलना में पर्याप्त भिन्न और नवीन थे। संगीतात्मकता, लयात्मकता इसकी विशेषता थी। निराला का 'गीतिका' यह गीत शैली और मुक्त छंद का सुंदर उदाहरण है। इसमें स्वतंत्र रूप से गेयता और लयता का प्रयोग हुआ है। इन छायावादी गीतों में अनुभूति की तीव्रता, वैयक्तिकता, संगीतात्मकता, अलंकृत शैली आदि विशेषताएं थी। ये गीत पारंपरिक अलंकारों से बद्ध न होकर भी सौंदर्य नाद से सजे हुए थे। जैसे- “अलि मैं हूँ अमर सुहागभरी/ प्रिय के अनंत अनुराग भरी।” छायावादी काव्यधारा की कविताओं में प्रतीकात्मक शैली का भी पर्याप्त प्रयोग किया गया है। प्रतीकों की छटा के विविध रूप देखने मिलते हैं। जैसे- ‘झंझा झंकारे गर्जन है।’ इसमें झंझा- क्षोभ का प्रतीक है तो गर्जन-वेदना का प्रतीक है। जयशंकर प्रसाद का ‘कामायनी’ यह महाकाव्य प्रतीकात्मक शैली का सुंदर उदाहरण है।

छायावादी काव्यधारा की कलागत विशेषताओं में उसकी चित्रात्मकता का भी महत्त्व है। चित्रात्मकता छायावादी कविता की मुख्य प्रवृत्ति रही है। भाषा और शुद्ध रूप का चयन महादेवी, पंत और निराला की कविता में देखने मिलता है। छायावादी कवियों ने पश्चिमी कविता की तरह अंग्रेजी अलंकार, विशेषण, विपर्यय, मानवीकरण, ध्वनि चित्रण आदि काव्यकलागत विशेषताओं को भी अपनी कविताओं में अपनाया था।

2.3.3.2 कवि जयशंकर प्रसाद का सामान्य परिचय :

आधुनिक हिंदी साहित्य के छायावादी काव्य के प्रमुख प्रवर्तक के रूप में जयशंकर प्रसाद जी का नाम

विशेष उल्लेखनीय है। छायावादी काव्यधारा की स्थापना में सुमित्रानंदन पंत, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', महादेवी वर्मा और जयशंकर प्रसाद में मुख्य आधार स्तंभ मानते हुए 'छायावादी चुतष्ट्य' की उपमा दी जाती है। हिंदी साहित्य जगत् में वे एक कवि, नाटककार और कहानीकार के रूप में विशेष प्रसिद्ध हैं। उनके जीवन और साहित्य का संक्षिप्त परिचय इसप्रकार है-

2.3.3.2.1 कवि जयशंकर प्रसाद का सामान्य परिचय :

छायावादी काव्यधारा के प्रमुख कवि जयशंकर प्रसाद जी का जन्म दि. 30 जनवरी, सन् 1889 ई. में उत्तरप्रदेश के वाराणसी में एक संपन्न वैश्य परिवार में हुआ। उनके पिताजी का नाम बाबू देवी प्रसाद था, जो सुर्ती, तम्बाकू और संधुनी का पुश्तैनी व्यापार करते थे। तम्बाकू का व्यापार करने कारण ही प्रसाद जी का परिवार महौल में 'सुंधनी साहु' नाम से परिचित था। उनकी माता का नाम मुन्नीदेवी था जो बहुत ही धार्मिक महिला थी। जयशंकर अपने भाई-बहनों में सबसे छोटे थे। उनका पूरा परिवार भगवान शिव की आराधना करता था। बचपन में ही अपनी माताजी के साथ जयशंकर जी ने धार्मिक स्थलों की यात्रा की।

उनकी प्रारंभिक शिक्षा गोवर्धन मुहल्ले की पाठशाला में शुरू हुई। वहाँ पर शिक्षक मोहिनीलाल गुप्त ने उनमें साहित्य की रुचि निर्माण की। बाल्यकाल से ही उनका मन साहित्य की ओर आकर्षित हुआ था। 11 वर्ष की आयु में ही उनके पिताजी और बड़े भाई की मृत्यु होने के कारण इनकी स्कूली शिक्षा छूट गई। इसकारण इन्होंने घर पर ही संस्कृत, हिंदी, उर्दू, फारसी और अंग्रेजी का अध्ययन किया। प्रसाद जी ने बचपन में ही संस्कृत के महत्त्वपूर्ण ग्रंथों को पढ़ा था। महज नौ वर्ष की आयु से ही वे छंद रचनाएँ कर रहे थे। उसके साथ ही इतिहास, दर्शन, धर्मशास्त्र, बौद्ध दर्शन आदि के अच्छे ज्ञाता थे। पिता और बड़े भाई की अकाल मृत्यु के कारण उन्हें अपने घर और व्यापारी की जिम्मेदारी उठानी पड़ी। वे अपने कर्तव्य का पालन करते हुए साहित्य की सेवा भी करने लगे। 20 वर्ष की आयु में इनका विवाह श्रीमती विंध्यवासनी देवी से हुआ। लेकिन 10 वर्ष बाद उनकी यक्ष्मा की बीमारी से मृत्यु हुई। इसके बाद प्रसाद जी ने सरस्वती नामक महिला से दूसरा विवाह किया लेकिन दुर्भाग्यवश वह भी प्रसूती के दौरान चल बसी। जीवन से निराश हुए कवि प्रसाद को उनकी भाभी ने तिसरा विवाह करने की सलाह दी और उनका तिसरा विवाह गोरखपुर की कमलादेवी से हुआ। कमलादेवी से उन्हें एक बेटा हुआ जिसका नाम शंभुरत्न था। वैवाहिक जीवन की त्रासदी से उनमें विरक्ति का भाव आया था। 15 नवंबर, 1937 ई. को क्षय की बीमारी के कारण अल्पायु में ही उनकी मृत्यु हुई।

2.3.3.2.2 कवि जयशंकर प्रसाद का रचनात्मक परिचय :

छायावादी काव्यधारा के प्रमुख कवि जयशंकर प्रसाद जी हिंदी साहित्य की दृष्टि से समृद्ध भूमि बनारस के निवासी थी। हिंदी साहित्य के प्रेमचंद, सुमित्रानंदन पंत, निराला, मैथिलीशरण गुप्त, महादेवी वर्मा, रामचंद्र वर्मा जैसे दिग्गजों के साथ उनकी मित्रता थी। उन्होंने कविता, नाटक, कहानी, उपन्यास आदि में अपनी साहित्यिक प्रतिभा दिखाई। उनकी रचनाओं का संक्षिप्त परिचय इसप्रकार है-

अ) काव्य संग्रह :

- | | |
|------------------------|-------------------------|
| 1. चित्राधार (1909 ई.) | 2. कानन-कुसुम (1913 ई.) |
| 3. करुणालय (1913 ई.) | 4. प्रेम पथिक (1914 ई.) |
| 5. झरना (1918 ई.) | 6. आँसू (1925 ई.) |
| 7. लहर (1933 ई.) | |

आ) महाकाव्य : कामायनी (1936 ई.)

इ) नाटक :

- | | |
|--------------------------------|------------------------------|
| 1. सज्जन (1910 ई.) | 2. कल्याणी परिणय (1912 ई.) |
| 3. प्रायश्चित (1914 ई.) | 4. राज्यश्री (1915 ई.) |
| 5. विशाख (1921 ई.) | 6.. अज्ञातशत्रु (1922 ई.) |
| 7. जनमेजय का नागयज्ञ (1926 ई.) | 8. कामना (1927 ई.) |
| 9. स्कंदगुप्त (1928 ई.) | 10. एक घूँट (एँकाकी-1930 ई.) |
| 11. चंद्रगुप्त (1931 ई.) | 12. ध्रुवस्वामिनी (1933 ई.) |

ई) कहानी संग्रह :

- | | |
|-------------------------|----------------------|
| 1. छाया (1912 ई.) | 2. आकाशदीप (1926 ई.) |
| 3. प्रतिध्वनि (1926 ई.) | 4. आँधी (1931 ई.) |
| 5. इंद्रजाल (1936 ई.) | |

उ) उपन्यास :

- | | |
|----------------------------|--------------------|
| 1. कंकाल (1929 ई.) | 2. तितली (1934 ई.) |
| 3. इरावती (1938 ई. अपूर्ण) | |

ऊ) निबंध-संग्रह : काव्य और कला तथा अन्य निबंध

पुरस्कार : 'कामायनी' इस प्रसिद्ध महाकाव्य के लिए मंगलाप्रसाद पारितोषिक प्राप्त हुआ है।

2.3.3.2.3 कवि जयशंकर प्रसाद का हिंदी साहित्य में योगदान :

छायावादी काव्यधारा के प्रमुख कवि जयशंकर प्रसाद जी अपनी कालजयी रचना 'कामायनी' (1936

ई.) के कारण अक्षयकीर्ति के अधिकारी बने हुए हैं। एक कवि, कहानीकार और नाटककार के रूप में हिंदी साहित्य में उनका योगदान अमूल्य है। जयशंकर प्रसाद ने भारतीय संस्कृति के उच्चादर्शों और मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठापना के उद्देश्य से हिंदी साहित्य लेखन किया है। उनकी कविताओं में सत्य के प्रति आस्था, पीड़ितों के प्रति संवेदना और अन्याय का विरोध दिखाई देता है। उनका कवि रूप बहुत ही कोमल और संवेदनीशील प्रतीत होता है। उनके प्रसिद्ध महाकाव्य 'कामायनी' में आधुनिक मानव का जीवन सुखी करने के लिए दिशा-निर्देश दिया गया है। मानवीय मनोभावों पर आधारित इस महाकाव्य में शैव दर्शन के अंतर्गत आने वाले प्रत्याभिक्षा दर्शन को सहज और सुबोध भाषा में स्पष्ट किया है। उनकी कविताओं में नियतिवाद, समरसतावाद, आनंदवाद, संसार की सत्यता, अभेदवाद या सर्वात्मवाद आदि का विवेचन मिलता है। वे मनुष्य की सफलता के लिए समरसतावाद को महत्वपूर्ण मानते हैं। इस संदर्भ में उनकी प्रसिद्ध काव्य पंक्तियाँ हैं- “ज्ञान दूर कुछ क्रिया भिन्न है, / इच्छा क्यों पूरी हो मनकी / एक-दूसरे से न मिल सके / यह विडंबना है जीवन की।” अर्थात् ज्ञान, विचार और क्रिया के समन्वय से ही जीवन सफलता निश्चित होती है।

उनकी कविताओं में भारत की प्राचीन संस्कृति और विरासत का यशगान देखने मिलता है। उनके नाटकों में भारतीय सांस्कृतिक मूल्य देखने मिलते हैं। अपने ऐतिहासिक नाटकों के जरिए उन्होंने भारत के प्रति निष्ठा और सम्मान के भाव जागृत किए हैं। चंद्रगुप्त नाटक में वे भारत का गौरव करते हुए लिखते हैं, “अरुण यह मधुमय देश हमारा / जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा, / सरस तमरस गर्भ विभा पर, नाच रही तरु शिखा मनोहर, / छिटका जीवन हरियाजी पर मंगल कुंकुम सारा।” प्रसाद के नाटकों में प्राचीन सांस्कृतिक मूल्य, भारत का अतीत गौरव, देश प्रेम, नवजागरण, नारी के प्रति सम्मान और देश के प्रति स्वाभिमान की भावना देखने मिलती है। उनकी कविता में छायावादी काव्यधारा की प्रकृति प्रेम, सौंदर्य चेतना, नारी सौंदर्य, भाव सौंदर्य आदि विशेषता देखने मिलती है। साथ ही उनकी कविता में रहस्यवाद, प्रकृति का मानवीकरण, व्यक्तिगत वेदना की गहरा विवेचन मिलता है। उनकी भाषा शुद्ध संस्कृतनिष्ठ खड़ी बोली है। उसमें लयता और संगीतमयता है। उनकी भाषा में कोमलकांत पदावली का प्रयोग होता है। संक्षेप में कहे तो जयशंकर प्रसाद छायावादी ही नहीं तो भारतीय साहित्य के गौरव स्तंभ है।

2.3.3.3 कवयित्री महादेवी वर्मा का सामान्य परिचय :

हिंदी साहित्य के छायावादी काव्यधारा की प्रमुख आधार स्तंभ के रूप में कवयित्री महादेवी वर्मा का नाम सर्वश्रुत है। कविता और गद्य दोनों विधाओं में उन्होंने अपनी सृजनात्मक प्रतिभा का परिचय दिया और अपनी वेदानुभूति की कविताओं के कारण हिंदी साहित्य जगत् में 'आधुनिक मीरा' के नाम से प्रसिद्ध हुई। उनकी कविताओं में करुणा, रहस्यवाद और नारी चेतना की प्रबल भावना विद्यमान है। उनका संक्षिप्त जीवन एवं रचनात्मक परिचय इसप्रकार है-

2.3.3.3.1 कवयित्री महादेवी वर्मा का जीवन परिचय :

कवयित्री महादेवी वर्मा जी का जन्म 24 मार्च, सन् 1906 ई. में उत्तरप्रदेश के फर्रुखाबाद जिले में हुआ।

महादेवी जी अपनी माता-पिता की पहली संतान थी और माता दुर्गा से मनौती माँगने के बाद उनका जन्म हुआ था। इसलिए उनके पिताजी ने उनका नाम महादेवी रखा था। उनके पिताजी उन्हें दुर्गा देवी का आशीर्वाद मानते थे। उनके पिताजी नाम गोविंद प्रसाद वर्मा था जो उच्च शिक्षित व्यक्ति थे। उन्होंने एम.ए., एल.एल.बी. तक शिक्षा प्राप्त की थी। वे दिल्ली कालेज में प्राध्यापक के रूप में कार्यरत थे। इनकी माता का नाम हेमराणी देवी था, जो एक कला-प्रिय, मेधावी और धर्म-परायण महिला थी। उनके नाना जी ब्रजभाषा के विख्यात कवि और भक्त प्रवृत्ति के थे। एक सुशिक्षित एवं सुसंस्कृत परिवार में इनका बचपन बीता। बचपन में बड़ी शरारती थी लेकिन भाई-बहनों में सबसे बड़ी होने के कारण उन्हें खेलकूद से ज्यादा घर के काम निपटाना और पढ़ने की हिदायत माँ ने दी थी।

महादेवी वर्मा जी की प्रारंभिक शिक्षा सन् 1912 ई. से इंदौर मिशन स्कूल से शुरू हुई। उसके साथ ही घर पर एक पंडित, एक मौलवी, एक चित्रकला के अध्यापक और एक संगीत अध्यापक से उन्होंने विभिन्न भाषाओं और कलाओं का ज्ञान अर्जित किया। दस वर्ष की बाल आयु में सन् 1916 ई. में इनकी शादी स्वरूप नारायण वर्मा जी के साथ हुई। एक सप्ताह के लिए उनकी विदाई ससुराल के लिए की गई तो वे बहुत ही रोती-बिलखती हुई अपने ससुराल बरेली-नवाबगंज इस कस्बे में पहुँची। लेकिन वहाँ उन्होंने खाना-पिना छोड़ने के कारण बुखार आया और उनके ससुर ने उन्हें मायके पहुँचाया। उनके ससुर लड़कियों की पढाई के विरोधी होने के कारण महादेवी जी को अपनी पढाई बीच में हुई छोड़नी पड़ी। लेकिन एक वर्ष के बाद उनके ससुर की मृत्यु होने के बाद उन्होंने सन् 1919 ई. में क्रास्थवेट कॉलेज-प्रयाग में दाखिला लेकर पढाई और स्वतंत्र लेखन करना प्रारंभ किया। उनके समस्याओं का सामना करते हुए उन्होंने सन् 1921 ई. में मिडिल की परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास की। इतना ही नहीं तो अपने प्रदेश के छात्रों में प्रथम स्थान हासिल करने के कारण उन्होंने छात्रवृत्ति भी प्राप्त हुई। सन् 1925 ई. में उन्होंने इन्ट्रेंस की परीक्षा प्राप्त करने से वे प्रदेश में मशहूर हुई थी। 1929 ई. में उन्होंने बी. ए. की उपाधि प्रथम श्रेणी में प्राप्त की। सन् 1932 ई. में प्रयाग विश्वविद्यालय से संस्कृत में एम.ए. किया। महादेवी बचपन से ही विद्रोही स्वभाव की रही। पुरुष प्रधान व्यवस्था के विरोध में हमेशा अपने तर्कों और विचारों से प्रहार करती थी। उनके स्वतंत्र विचारों और पढाई को लेकर उनके पति के साथ उनका वैचारिक मतभेद था लेकिन वैमनस्य नहीं था। दोनों पति पत्नी पत्राचार के द्वारा एक-दूसरे से संपर्क में थे। उनके माता-पिता ने उनके ससुराल में विदाई या फिर दूसरी शादी की बात कही लेकिन वे आजीवन अविवाहित रहकर हिंदी साहित्य की सेवा करती रही। वैवाहिक जीवन में वे विरक्ती भाव से रही। आजीवन उन्होंने श्वेत वस्त्र पहने, तख्त पर सोती और उन्होंने कभी-भी शीशा नहीं देखा। सन् 1966 ई. में उनके पति की मृत्यु के बाद वे स्थायी रूप से इलाहाबाद में रहने लगी।

एम.ए. करने बाद वे अध्यापन, साहित्य लेखन और संपादन कार्य में जुट गई। प्रयाग महिला विद्यापीठ के विकास में इनका महत्वपूर्ण योगदान रहा। सन् 1923 ई. को महिलाओं की प्रमुख पत्रिका 'चांद' का कार्यभार संभाला। कार्य के अंतिम समय में वे प्रयाग महिला विद्यापीठ की प्राचार्या रही। उन्होंने साहित्य एवं प्रशासनिक संस्थाओं पर भी सदस्य के रूप में कार्य किया। कवयित्री, अध्यापिका होने के साथ वे एक कुशल चित्रकार और अच्छी अनुवादक भी थी। उनमें मनुष्य के साथ-साथ पशु-पंछियों और विशेष कर गाय के प्रति बहुत

करूणा थी। सन् 1955 ई. में उन्होंने इलाहाबाद में साहित्यकार संसद की स्थापना की और इसके मुखपत्र 'साहित्यकार' का संपादन भी किया। सन् 1962 ई. में उत्तर प्रदेश विधान परिषद की सदस्य भी चुनी गई। सन् 1964 ई. में दिल्ली में स्थापित साहित्य अकादमी की संस्थापक सदस्य रही। 11 सितंबर, सन् 1986 ई. को महादेवी जी की मृत्यु हुई।

2.3.3.3.2 कवयित्री महादेवी वर्मा का रचनात्मक परिचय :

कवयित्री महादेवी वर्मा आधुनिक हिंदी साहित्य की सबसे सक्षम कवयित्री मानी जाती है। उन्होंने कविता, लघु कहानी, उपन्यास, रेखाचित्र, निबंध आदि विधाओं में लेखन किया। लेकिन वे हिंदी साहित्य जगत में कवयित्री के रूप में ही जानी जाती है। उनके साहित्य संसार का संक्षिप्त परिचय इसप्रकार है-

अ) काव्य संग्रह :

- | | |
|---|-----------------------------|
| 1. नीहार (1930 ई.) | 2. रश्मि (1932 ई.) |
| 3. नीरजा (1934 ई.) | 4. सांध्यगीत (1936 ई.) |
| 5. यामा (नीहार, रश्मि, नीरजा, सांध्यगीत इन चार कविता संग्रहों का एकत्रित संकलन 1936 ई.) | |
| 6. दीपशिखा (1942 ई.) | 7. सप्तपर्णा (अनू. 1959 ई.) |
| 8. प्रथमआयाम (1947 ई.) | 9. अग्निरेखा (1990 ई.) |

आ) रेखा चित्र :

- | | |
|----------------------------|-------------------------------|
| 1. अतीत के चलचित (1956 ई.) | 2. स्मृति की रेखाएँ (1943 ई.) |
|----------------------------|-------------------------------|

इ) संस्मरण :

- | | |
|--------------------------------|--------------------------|
| 1. पथ के साथी (1956 ई.) | 2. मेरा परिवार (1972 ई.) |
| 3. अन्य संस्मरण (1983 ई.) आदि। | |

ई) निबंध संग्रह :

- | | |
|---|--------------------------------|
| 1. शृंगला की कड़ियाँ (1942 ई.) | 2. विवेचनात्मक गद्य (1942 ई.) |
| 3. साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबंध (1962 ई.) | |
| 4. संकल्पिता (1969 ई.) | 5. क्षणदा (ललित निबंध-1956 ई.) |

उ) लघु कहानी संग्रह : गिल्लू

ऊ) संस्मरण, रेखाचित्र और निबंध संकलन : हिमालय (1963 ई.) आदि।

ए) बाल साहित्य :

- | | |
|---------------------|-------------------------------|
| 1. ठाकुरजी भोले हैं | 2. आज खरीदेंगे हम ज्वाला आदि। |
|---------------------|-------------------------------|

पुरस्कार : हिंदी साहित्य क्षेत्र में दिए उल्लेखनीय योगदान के लिए उन्हें विभिन्न पुरस्कारों से सम्मानित किया गया। उनका संक्षिप्त विवरण इसप्रकार है-

1. 'नीरजा' काव्यसंग्रह के लिए सन् 1934 ई. को इंदौर साहित्य सम्मेलन में म. गांधी जी के हाथों सेक्सरिया पुरस्कार प्रदान किया गया।
2. सन 1956 में भारत सरकार ने पद्मभूषण पुरस्कार से सम्मानित किया।
3. सन 1970 में प्रयाग महिला विद्यापीठ की उपकुलपति निर्वाचित हुई।
4. सन 1972 में वाराणसी में आयोजित प्रथम राष्ट्रीय पुस्तक समारोह की अध्यक्ष बनी।
5. सन 1973 में राष्ट्रपति सर्वपल्ली राधाकृष्णन के हाथों दिल्ली लेखिका संघ ने उनका सम्मान किया।
6. सन 1982 में उन्हें 'यामा' काव्य संग्रह के लिए साहित्य के सर्वोच्च ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित किया गया।
7. सन 1988 को पद्म विभूषण इस पुरस्कार से भी उनका सम्मान हुआ।

2.3.3.3.3 कवयित्री महादेवी वर्मा का हिंदी साहित्य में योगदान :

कवयित्री महादेवी वर्मा आधुनिक हिंदी साहित्य में छायावादी काव्यधारा की एक प्रबल और सक्षम कवयित्री के रूप में पहचानी जाती है। साहित्य में जब उनका आगमन हुआ तब हिंदी साहित्य खड़ीबोली हिंदी को गद्य एवं पद्य के अनुकूल बनाने का प्रयास शुरू था। हिंदी कविता में तब ब्रज ही कोमलकांत एवं लयात्मक भाषा थी। लेकिन महादेवी वर्मा जी हिंदी कविता को खड़ीबोली में ब्रजभाषा की तरह लयात्मकता, संगीतात्मकता प्रदान की। नए छंदों के द्वारा उन्होंने हिंदी कविता में गीतों का खजाना दिया। आधुनिक गीत काव्य में महादेवी वर्मा जी का स्थान शीर्षस्थ रहा। उनकी कविताओं में प्रेम की वेदना और भावों की तीव्रता की मार्मिक छटा थी। उनके हिंदी गीतों में भाव, भाषा और संगीत का अनुपम मिलन देखने मिलता है। इसी कारण सूर्यकांत त्रिपाठी निराला जी उन्हें 'हिंदी के विशाल मंदिर की सरस्वती' कहते थे। उनकी कविता में वेदना और करुणा तत्व की प्रमुखता थी और विरह प्रेम का उदात्त स्वरूप प्रकट होता है। इस कारण उन्हें 'आधुनिक काल की मीरा' भी कहा जाता है। उनकी कविता का एक उदाहरण में वे खुद की तुलना नीर भरी बदली से करती हुए कहती हैं- "मैं नीर भरी दुःख की बदली/ परिचय इतना इतिहास यही/ उमड़ी कल थी मिट आज चली।"

महादेवी जी ने स्वतंत्रतापूर्व भारत और स्वातंत्र्योत्तर भारत का अनुभव किया था। उनपर बौद्ध साहित्य और गांधीवाद का गहरा प्रभाव था। इस कारण उनके साहित्य में करुणा और प्रेम की मार्मिक अभिव्यक्ति थी। उन्होंने भारतीय समाज का व्यापक अध्ययन करते हुए उनके दुःख, वेदना, रूदन को देखा-परखा और महसूस किया। उन्होंने अपनी कविताओं के माध्यम से इस अंधकारपूर्ण जीवन में रोशनी देने की कोशिश की। उन्होंने महिलाओं में चेतना निर्माण करने का कार्य किया। उन्होंने नारी मन की पीड़ा को इतनी तन्मयता और प्रेम से अभिव्यक्त

किया जिससे 'दीपशिखा' जैसी रचनाएँ साकार हुई। इस रचना में जनता की पीड़ा का मार्मिक दर्शन दिखाई देता है। 'शृंगला की कड़ियाँ' इस रचना में महिलाओं की स्वतंत्रता और विकास की माँग की है। तत्कालीन समय में पुरुषप्रधान व्यवस्था में यह एक साहस का कार्य था। उन्होंने स्त्री को लेकर सामाजिक रूढ़िबद्धता और संकुचित विचारों का विरोध किया। महादेवी वर्मा के गीतों में वेदना, प्रणयानुभूति, करुणा और रहस्यवाद की विशेषता देखनी मिलती है। उन्होंने संस्कृत और बंगाली भाषा के कोमलकांत शब्दों को चुनकर उसे खड़ी बोली में स्थापित किया। संगीत का अच्छा ज्ञान होने के कारण उनके गीतों में नाद-सौंदर्य और व्यंजना शैली का संगम अन्यत्र दुर्लभ है। लेकिन कुछ आलोचकों ने इनकी काव्य में अभिव्यक्त वेदना और करुणा को कृत्रिम माना है। कविता के साथ-साथ वे एक सफल गद्यकार भी। रेखाचित्र और संस्मरणों के लिए उन्हें विशेष रूप से जाना जाता है। उनके ललित निबंध भी हिंदी साहित्य को समृद्ध करता है। संक्षेप में कह सकते हैं कि महादेवी वर्मा छायावादी काव्यधारा की एक सक्षम कवयित्री थी। उनकी कविता में प्रेम वेदना की गहराई, करुणा का स्वर, नारी की सात्विकता, आध्यात्मिक रहस्यता, भक्ति की तन्मयता, विरह वेदना की निरंतरता आदि विशेषताएँ देखनी मिलती हैं।

2.3.4 प्रगतिवादी काव्यधारा : सामान्य परिचय, प्रमुख कवि- नागार्जुन एवं गजानन माधव मुक्तिबोध :

आधुनिक हिंदी साहित्य में सन 1936 से 1943 तक का कालखंड प्रगतिवादी काव्यधारा का माना जाता है। सामाजिक यथार्थता को लेकर हिंदी काव्यधारा में एक आंदोलन चलाया गया था, जिसका नाम 'प्रगतिवाद' है। 'प्रगतिवाद आंदोलन' के पीछे एक ठोस वैचारिक पृष्ठभूमि थी। छायावादी काव्यधारा में सूक्ष्म सौंदर्यवादी दृष्टिकोण का त्याग करके सामाजिक वस्तुस्थिति को साहित्य में वाणी देने का प्रयास हुआ था। आगे चलकर प्रगतिवादी काव्यधारा में वह प्रमुख बन गया।

2.3.4.1 'प्रगतिवाद' का अर्थ एवं विचार-दर्शन :

'प्रगतिवाद' मूलतः साहित्य की एक विचारधारा है, जिसका मूलाधार मार्क्सवादी विचार दर्शन है। जो विचारधारा राजनीतिक क्षेत्र में समाजवाद, दर्शन में द्वंद्वात्मक भौतिकवाद है, वही साहित्य के क्षेत्र में 'प्रगतिवाद' नाम से जानी जाती है। 'प्रगति' का शाब्दिक अर्थ विकास है, जो अंग्रेजी के 'Progress' का पर्यायवाची है। प्रगति अर्थात् आगे बढ़ना या उन्नति करना। लेकिन साहित्य के क्षेत्र में प्रगतिवाद का अर्थ केवल विकास करने से नहीं है, बल्कि यह एक राजनीतिक विचारधारा से प्रभावित साहित्य है। यह विचारधारा कार्ल मार्क्स के 'मार्क्सवाद' पर आधारित है। कार्ल मार्क्स ने अपनी विचारधारा से पूरी दुनिया में क्रांति निर्माण की। उनकी यह विचारधारा 1. द्वंद्वात्मक भौतिक विकासवाद 2. मूल्य-वृद्धि का सिद्धांत 3. अर्थ व्यवस्था के अनुसार विश्व सभ्यता की व्याख्या करना।

2.3.4.2 'प्रगतिवाद काल' (1936-43 ई.) की युगीन परिस्थिति:

प्रगतिवादी साहित्य का कालखंड मूल रूप से विश्व के पटल पर द्वितीय विश्वयुद्ध का माहौल बन रहा था। दुनियाभर में फासिस्ट ताकतों का बोलबाला बढ़ रहा था। इन ताकतों का मुकाबला करने के लिए

साम्यवादी, समाजवादी विचारधाराओं का स्वागत होने लगा। राजनीति की दिशा अर्थव्यवस्था पर निश्चित हो रही थी। इसकारण पूँजीवाद का विकास हो रहा था। पूँजीपतियों के हाथ में आर्थिक संसाधनों का केंद्रीकरण होने के कारण आम जनता उनके शोषण का शिकार बन गई थी। दूसरी ओर सामाजिक क्षेत्र में अंधविश्वास, धार्मिक पाखंड, कुरीतियों के कारण जनता गरीबी और अशिक्षा की दलदल में धँसी जा रही थी। अंग्रेजों और जमींदारों के शोषण और स्वाधीनता आंदोलन के कारण साहित्यकारों में नई चेतना जागृत हुई। म. गांधीजी के नेतृत्व में स्वाधीनता की लड़ाई ने कृषक, मजदूरों, महिलाओं को प्रभावित किया। सन १९३०-३२ के दौरान पूरी दुनिया आर्थिक महामंदी की चपेट में आने के कारण बेरोजगारी, आर्थिक विषमता, गरीबी, शोषण की चरमसीमा ने पूँजीवादियों के खिलाफ शोषित वर्ग में विद्रोह की भावना भर गई। पूँजीपतियों के विलासी जीवन के दो प्रमुख आधार होने वाले कृषक और मजदूर पूँजीवादी व्यवस्था को चुनौती देने के लिए आंदोलन करने लगे। आर्थिक अन्याय और अत्याचार के खिलाफ वैश्विक स्तर पर एक सामूहिक विद्रोह का सूत्रपात हुआ, जिसका वैचारिक आधार राजनीतिज्ञ कार्ल मार्क्स का 'मार्क्सवाद' था। साहित्य में भी सौंदर्यवादी काल्पनिक उड़ानें बंद हुईं और सामाजिक सच्चाई को प्राथमिकता मिलने लगी। मूलतः छायावादी काव्यधारा के दौर में बनी उदासीनता, अंतर्मुखी प्रवृत्ति, सौंदर्यवादिता, व्यक्तित्वादिता आदि के विरोध में प्रगतिवादी कविता ने जन्म लिया।

2.3.4.3 प्रगतिवादी काव्यधारा की विशेषताएँ :

'प्रगतिवादी काव्यधारा' राजनीतिक विचारधारा से प्रभावित होकर सामाजिक यथार्थ को केंद्र में रखकर सामने आई। वह अपनी पूर्ववर्ती छायावादी काव्यधारा की प्रवृत्तियों के खिलाफ विद्रोह करती नज़र आती है। प्रगतिवादी काव्यधारा को समझने के लिए उसकी विभिन्न विशेषताओं को जानना जरूरी है। अतः इस काव्यधारा की विशेषताएँ इसप्रकार हैं-

1) सामाजिक यथार्थवाद :

सामाजिक यथार्थवाद का अर्थ है समाज की सच्चाई स्पष्ट करना। छायावादी काव्य में सौंदर्य चित्रण और उसके लिए कल्पना का तत्त्व की प्रधानता थी। प्रगतिवादी कविता में इसका त्याग करके सामाजिक सच्चाई को कविता के केंद्र में लाया गया। पूँजीपतियों, जमींदारों के विलासी जीवन का प्रमुख आधार किसान और मजदूर थे। पूँजीवादियों ने इनके मेहनत पर अपना विकास किया था। किसान और मजदूर वर्ग के अमानवीय शोषण को प्रगतिवादी काव्यधारा में प्रमुख स्थान दिया। उनके शोषण के विविध तंत्रों को सामने लाकर पूँजीवादी व्यवस्था के कुरूप चेहरे को सामने लाया गया। प्रगतिवादी कवियों को समाज के कटु सत्यों को, किसान, मजदूरों के अमानवीय शोषण के सामने प्रकृति का सौंदर्य और उसकी आभा फिकी लगने लगी। आर्थिक विषमता, गरीबी से बेहाल हुए किसान-मजदूरों का जीवन, भूख, वंचित-पीड़ितों की चीख-पुकार से साहित्यकार व्यथित हुए। उन्होंने अपनी कविताओं के माध्यम से समाज की सच्चाई को सामने लाया। गरीबी और भूख के इतने यथार्थ चित्र प्रगतिवादी काव्यधारा में देखने मिलते हैं जो अन्यत्र दुर्लभ हैं। इसप्रकार प्रगतिवादी काव्यधारा में सामाजिक यथार्थ को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है।

2) सामाजिक समस्याओं का चित्रण :

प्रगतिवादी काव्यधारा के कवि समाज के प्रति बहुत सजग एवं संवेदनशील थे। उनमें देश-दुनिया की सामाजिक समस्याओं को प्रति सजगता थी। सामाजिक यथार्थता की प्रबलता के कारण उनका सामाजिक समस्याओं की ओर देखने का नजरिया भी तेज था। पूँजीवादी व्यवस्था में अर्थ का केंद्रीकरण कुछ मुट्ठीभर लोगों के हाथ में होने और इससे समाज में आर्थिक विषमता से भूख, बेरोजगारी, गरीबी, बीमारी आदि समस्याओं की ओर लेखकों ने ध्यान खिंचा। म. गांधी भारत की इन सामाजिक समस्याओं को देखकर बहुत व्यथित हुए थे और उन्होंने अपना पूरा जीवन गरीबों के उद्धार के लिए समर्पित किया। लेकिन जब उन्होंने म. गांधी की हत्या हुई तब प्रगतिवादी कवि व्यथित हुए। कवि नागार्जुन अपनी वेदना को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं, “बापू मरे: अनाथ हो गई भारत माता/ अब क्या होगा।”

प्रगतिवादी कवियों में देश की समस्या के साथ ही दुनिया की समस्याओं के प्रति भी सजगता थी। अमरिका द्वारा जापान पर परमाणु बम गिराने पर हिरोशिमा की हुई बर्बादी पर भी कवियों ने संवेदना व्यक्त की। भारत-पाक विभाजन, कश्मीर की समस्या, बंगाल का अकाल, मँहगाई, गरीबी, भ्रष्टाचार, कालाबाजारी, भ्रष्ट राजनेता, सांप्रदायिक झगड़े, बाढ़, गणतंत्र का अभाव, कालाधन आदि सामाजिक समस्याओं पर भी प्रगतिवादी कवियों ने कलम चलाई। इस कालखंड में देश की राजनीति पर बहुतसी व्यंग्यात्मक कविताएँ भी लिखी गई। कवि नागार्जुन ने देश की आजादी से हुए मोहभंग को व्यक्त करते हुए लिखा, “कागज की आजादी मिलती, / ले लो दो-दो आने में।” इसप्रकार प्रगतिवादी कवियों ने सामाजिक समस्याओं के प्रति सजगता दिखाई है।

3) शोषितों का करुण चित्रण :

प्रगतिवादी कवि शोषितों के प्रति बहुत ही संवेदनशील थे। पूँजीवादी व्यवस्था के शोषण चक्र में फँसे किसान, मजदूरों, महिलाओं के प्रति उनके मन में बहुत करुणा थी। वे शोषण को मानव जीवन का एक अभिशाप मानते थे और उसका हल केवल साम्यवादी व्यवस्था में होने पर उनका पूरा विश्वास था। प्रगतिवादी कविता का मुख्य लक्ष्य शोषितों को क्रांति के लिए खड़ा करना था। प्रगतिवादी कवियों ने किसान, मजदूर, दीन-दलित, असहाय, गरीबों की दशा पर आँसू बहाए हैं। बंगाल के अकाल के कारण बेहाल हुए गरीबों के जीवन के संदर्भ में कवि निराला लिखते हैं- “बाप बेटा बेचता है, भूख से बेहाल होकर/ धर्मधीरज प्राण खोकर, /हो रही अनीति बर्बर, /राष्ट्र सारा देखता है। स्पष्ट है कि भारत के गरीबों की इस दशा के लिए पूँजीवादी व्यवस्था जिम्मेदार थी।

साथ ही मजदूरों के खून-पसीने के कारण पूँजीपतियों ने अपने बड़े-बड़े कारखाने और मकान बनाए हैं। लेकिन उसका निर्माणकर्ता मजदूर दो वक्त की रोटी के लिए हाड़तोड़ मेहनत करता है। इस संदर्भ में कवि निराला लिखते हैं- “ओ मजदूर, ओ मजदूर/ तुम सब चीजों के कर्ता/ तू ही सब चीजों से दूर/ ओ मजदूर, ओ मजदूर” स्पष्ट है कि प्रगतिवादी कवि शोषित वर्ग का सटीक वर्णन अपने कविताओं में करते हुए उनके प्रति करुणा व्यक्त करते हैं।

4) शोषकों के प्रति घृणा का चित्रण :

प्रगतिवादी कवियों ने किसान, मजदूरों के अमानवीय शोषण के लिए पूँजीपतियों को जिम्मेदार माना है। पूरे प्रगतिवादी साहित्य में इन शोषकों के प्रति घृणा का चित्रण देखने मिलता है। बड़े-बड़े मिल मालिक, जमींदार गरीब किसान और मजदूरों का खून चूस-चूसकर अपने विलासी जीवन को जीते हैं। प्रगतिवादी कवि समाज में साम्यवादी व्यवस्था लाना चाहते हैं जिसमें आर्थिक संसाधनों पर सबका समान हक हो। वे नहीं चाहते कि एक व्यक्ति आराम से बैठे गरीबों के हाड़-तोड़ मेहनत पर विलासी जीवन जीए। इसलिए पूँजीवादियों की शोषण नीतियों पर वे घृणा व्यक्त करते हैं। इस संदर्भ में रामधारी सिंह 'दिनकर' लिखते हैं- “श्वानों को मिलता दूध, वस्त्र/ भूखे बालक आकुलाते हैं/ माँ की छाती से छिपक-ठिठुर/जाड़े की रात बिताते हैं। स्पष्ट है कि प्रगतिवादी कविताओं में शोषक वर्ग के प्रति घृणा की व्यंग्यात्मक अभिव्यक्ति हुई है।”

5) क्रांति एवं परिवर्तन का चित्रण :

प्रगतिवादी कवि पुराने और परंपरावादी शोषणमूलक व्यवस्था को नष्ट करना चाहता है। वह मानव को मानव समझने वाली नई व्यवस्था लाने की प्रेरणा देता है। वह समाज, राजनीति और धर्म की अनेक रूढ़िग्रस्त परंपरा को ढहाकर उसमें परिवर्तन करना चाहता है। शोषक वर्ग केवल अपने सत्ता स्थापित करने के लिए समाज के बहुत बड़े तपके को दबाकर रखना चाहते हैं। कवि इनके खिलाफ क्रांति खड़ी करके उनकी व्यवस्था को खत्म करना चाहता है। वह पूँजीवादी व्यवस्था को नष्ट करके उसकी जगह साम्यवादी व्यवस्था लाना चाहता है। समाज में साम्यवादी व्यवस्था लाने के लिए वह शोषित वर्ग को एकजूट करके क्रांति लाना चाहता है। प्रगतिवादी कवि पूँजीपतियों के विलासिता के अड्डे बने महलों, रजवाड़ों को ढहाना चाहता है। सामाजिक और राजनीतिक दुराचार पर प्रहार करके परिवर्तन की कामना करता हुए कहता है- “कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ/ जिससे उथल-पुथल मच जावे।” उसी प्रकार कवि सुमित्रानंदन पंत भी परिवर्तन की इच्छा प्रकट करते हुए कहते हैं, “गा कोकिल बरसा धावक गान/ नष्ट-भ्रष्ट हो जीर्ण-पुरातन।” स्पष्ट है कि प्रगतिवादी काव्यधारा में क्रांति और परिवर्तन की भावना दिखाई देती है।

6) मानवता पर विश्वास :

प्रगतिवादी काव्यधारा में कवियों ने सामाजिक यथार्थता को प्रकाश में लाकर मनुष्यता और मानवता को सर्वोपरि माना है। वे मनुष्य के दुःखों और समस्याओं को देखकर निराश नहीं होते। उनका मानवता पर अगाध विश्वास है। इन दुःखी, पीड़ित और पददलितों में फिर से ऊर्जा भरना चाहते हैं। वे देश के किसान, मजदूर, विधवा, वेश्याओं तक का जीवन सँवारना चाहते हैं। उन्हें केवल देश ही नहीं दुनिया की मानवता पर विश्वास है। इसलिए दुनिया में कोई भी अत्याचार होता है तो उनका दिल वेदना से पसीज जाता है। वे हिंदू, मुस्लीम, ईसाई, यहूदियों को केवल इंसानियत की नज़र से देखते हैं। लोगों को कर्म का संदेश देते हुए मानवता को बढ़ाने को कहते हैं। क्योंकि उन्हें मानवों की शक्ति पर विश्वास है। मनुष्य की शक्ति को वे ईश्वर की शक्ति से बढ़कर मानते हैं- “जिसे तुम कहते हो भगवानः./ जो बरसता है जीवन में/रोग, शोक, दैन्य अपार/ उसे सानने चले पुकार।” स्पष्ट है कि प्रगतिवादी कवियों ने अनेक जगहों पर मनुष्य की शक्ति को सर्वश्रेष्ठ बताया है।

7) नारी के प्रति संवेदना :

प्रगतिवादी कवियों ने नारी के प्रति गहरी संवेदना व्यक्त की है। उन्होंने नारी को शोषित और पुरुष की दासी की पारंपरिक छवि से बाहर निकालकर उनकी स्वतंत्रता पर बल दिया है। पुरुषवादी व्यवस्था में नारी अपनी स्वतंत्रता खो चुकी है। सामंतीवादी व्यवस्था ने उसे केवल भोग की वस्तु बनाकर रखा है। नारी को केवल योनी माननेवाली पुरुषवादी एवं सामंती सोच पर कवि करारा व्यंग्य करते हुए लिखते हैं- “योनी नहीं है रे नारी/ वह मानवी प्रतिष्ठित/ उसे पूर्ण स्वाधीन करो/ वह रहे न नर पर आश्रित” इस नारी की पूर्ण स्वतंत्रता का वर्णन कवि करते हैं। उनकी संवेदना केवल सामान्य महिलाओं के प्रति ही नहीं बल्कि वेश्याओं की के प्रति भी है। वेश्याएँ पुरुषवादी मानसिकता के विकृति का ही प्रतीक है। वेश्याओं के प्रति भी अपनी करुणा व्यक्त करते हुए कवि लिखते हैं- “माता बनी दूध भर आया, किंतु न भरता पापी पेट/ जननी बनकर भी पुशओं के आगे नग्न सकेगी लेट।” इसप्रकार भारतीय महिला को अबला और दासी की पारंपरिक प्रतीक से बाहर निकालकर उसकी आजादी की वकालत प्रगतिवादी कवि करते हैं।

8) वैश्विक सांस्कृतिक भाईचारा का समर्थन :

प्रगतिवादी काव्यधारा में पूरी दुनिया के मानवता के प्रति सजगता दिखाई देती है। प्रगतिवादी कवि धर्म, मजहब, प्रांत, भाषा की विभिन्नता की सीमाओं को खत्म करके एक नवीन सांस्कृतिक भाईचारे की कल्पना करते हैं। इन कवियों ने सांस्कृतिक भाईचारे का समर्थन किया है, जहाँ पर केवल और केवल मानवता को ही माना जाएगा। इस नए सांस्कृतिक भाईचारे का आधार महर्षि अरविंद का चेतनावद और कार्ल मार्क्स का मार्क्सवाद है। इन दो मानवतावादी विचारधाराओं के समन्वय से प्रगतिवादी कवि सुमित्रानंदन पंत ने एक वैश्विक संस्कृति की कल्पना की है। इस नई संस्कृति में धर्म, जाति, वर्ण आदि के भेद मिट जाते हैं। इसमें मानवतावादी मूल्यों और आदर्शवाद का स्थान रहेगा। इस सांस्कृतिक भाईचारे से जो कुछ भी अमानवीय और असुंदर है उसे मिटाकर समाज को मानवतावादी मूल्यों से सुंदर बनाया जाएगा। कवि पंत विश्व संस्कृति की कल्पना करते हुए लिखते हैं- “सर्व देश, सर्व काल/ धर्म, जाति, वर्ण काल/ हिलमिल सब हो विशाल/ एक हृदय अग्नित स्वर।” इसतरह प्रगतिवादी काव्यधारा में वैश्विक संस्कृतियों के समन्वय और भाईचारे पर बल दिया गया है।

9) राष्ट्रवाद की प्रबल भावना :

प्रगतिवादी कवियों में राष्ट्रवाद की भावना प्रबल है। वे केवल देश तक सीमित नहीं, बल्कि वह विश्वव्याप्त है। प्रगतिवादी साहित्यकारों की राष्ट्रनिष्ठा और देश प्रेम की भावना अपने पूर्ववर्ती कवियों से सर्वथा भिन्न है। वे केवल अपने अतीत के गौरवमयी इतिहास का यशगान करने में ही व्यस्त नहीं रहे बल्कि उन्होंने वर्तमान देश की स्थितियों के अनुसार अपना ध्यान देश की धरोहर होने वाले जनपद, ग्राम आदि की संस्कृति की ओर आकर्षित किया। उन्होंने कृषि संस्कृति को भारत देश की सांस्कृतिक विरासत माना। वे भारत को केवल उज्ज्वल इतिहास के रूप में नहीं बल्कि सुवर्णी भविष्य की ओर देखने को बाध्य करते हैं। उन्होंने मानवता के खिलाफ क्रांति का ऐलान करने के कारण उनकी मानवतावादी भावना वैश्विक थी। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर हो रहे अन्याय

एवं अत्याचारों का विरोध उन्होंने अपने कविताओं में किया। दुनिया के सर्व हारा वर्ग का प्रतिनिधि बनकर इन कवियों उनकी वेदना को साहित्य से प्रकट किया और उनमें भी प्रगति की चेतना निर्माण की। दुनियाभर के फास्टिड विचारों के राष्ट्रों की निंदा करते हुए उन्होंने रूस जैसे साम्यवादी विचारों के देशों की नीतियों की प्रशंसा भी की है। संक्षेप में कह सकते हैं कि प्रगतिवादी काव्यधारा की राष्ट्रवाद की भावना व्यापक थी।

10) रूढ़िग्रस्त विचारों का विरोध :

प्रगतिवादी काव्यधारा में आदिम परंपरा, धार्मिक रूढ़ी-परंपराओं का विरोध किया है, जो मानव की प्रगति में बाधा बनती है। प्रगतिवादी कवि ईश्वर को सृष्टि का कर्ता नहीं मानते। उन्होंने ईश्वर और ईश्वर से जुड़ी पाप, पुण्य, स्वर्ग, नरक जैसी कल्पनाओं पर विश्वास नहीं। आध्यात्मिकता और मनुष्य के भगवान बनने की प्रक्रिया का वे विरोध करते हैं। जो धर्म मनुष्य को मनुष्य नहीं मानता, मनुष्य-मनुष्य में भेदभाव निर्माण करता है ऐसे धर्म को वे नहीं मानते। संत कबीर के भाँति प्रगतिवादी कवि भी धार्मिक कर्मकांडों का तीव्र विरोध करते हैं। वे भगवान पर नहीं, मनुष्य को खुद पर विश्वास करने का संदेश देते हैं-“रोटी तुमको राम न देगा/ वेद तुम्हारा काम न देगा/ जो रोटी का युद्ध करेगा/ वह रोटी को आप वरेगा। इस प्रवृत्ति की समीक्षा करते हुए डॉ. नगेंद्र जी ने कहा था कि प्रगतिवादी कवि धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में से केवल ‘अर्थ’ को ही स्वीकार करते हैं। स्पष्ट है कि प्रगतिवादी कवि सभी प्रकार की रूढ़िग्रस्तता का विरोध करता है।

11) प्रगतिवादी काव्य का कलापक्ष :

प्रगतिवादी कविता जनता की कविता है। अपने पूर्ववर्ती काव्यधाराओं की कलापक्षगत विशेषताओं से प्रगतिवादी कविताओं का कलापक्ष बिल्कुल अलग है। यह जनता और उनके सामाजिक जीवन से जुड़ी कविता होने के कारण वह सरल और सुबोध है। छायावादी कविता की तरह इसमें क्लिष्टता नहीं है। जनसामान्यों के दशा और उनके भावों को उजागर करना इनका मकसद होने कारण इसमें सुबोधता दिखाई देती है। इन्होंने जनता की समस्याओं को जनभाषा में व्यक्त करने के कारण सरल शैली का प्रयोग किया है। इनकी कविताओं को समझने के लिए किसी शब्दकोश की जरूरत नहीं पड़ती। जनता के भावों का उद्घाटन ही प्रगतिवादी कविता की कलागत सुंदरता है। छंद की दृष्टि से इन कवियों ने लोकगीत और जनगीत शैली को अपनाया था। अधिकांश कवियों ने प्रादेशिक या आंचलिक बोलियों में कविता लिखी है। इस कारण भोजपुरी, छत्तीसगढ़ी, राजस्थानी आदि भाषाओं में मार्मिक कविताओं का लेखन हुआ है। भावानुकूल भाषा के कारण यह कविताएँ जनता की कविता प्रतीत होती है। अलंकार की दृष्टि से भी इन्होंने नवीन प्रतीकों, रूपकों और उपमानों का प्रयोग किया है। अलंकार का प्रयोग पांडित्य प्रदर्शन या चमत्कार प्रदर्शन के लिए नहीं बल्कि भावों की अभिव्यक्ति हेतु सहजता से हुआ है। कविता में आए रूपक और उपमा बहुत ही सरल और जनता के व्यवहार से जुड़े हैं-‘मेरे आंगन में (टीले पर मेरा है घर)/ दो छोटे से लड़के आ जाते हैं अक्सर/नंगे तन, गदबदे, साँवले, सहज छबीले/ मिट्टी के मटमैले पुतले पर फर्तिले।’ कुछ आलोचक ऐसे प्रतीकों और उपमाओं को देखकर प्रगतिवादी कविता को अनगढ़, सपाट और रूखी कविता मानते हैं। छंद की दृष्टि से लयहीन और गद्यात्मक होने का आरोप करते

हैं। लेकिन प्रगतिवादी कवियों का लक्ष्य काव्य सौंदर्य से ज्यादा जन-भाव को स्पर्श करना था। इस दृष्टि से उनकी कविताओं का कलापक्ष सौंदर्यवादिता से ज्यादा उपयोगितावादिता है।

2.3.2 कवि नागार्जुन का सामान्य परिचय :

प्रगतिवादी काव्यधारा के एक प्रमुख और जनवादी कवि के रूप में नागार्जुन का नाम विशेष उल्लेखनीय है। नागार्जुन जी का वास्तविक नाम विद्यानाथ मिश्र था लेकिन कुछ समय तक उन्होंने नाथ संप्रदाय में दीक्षित होकर साधना करने के कारण उन्हें नागार्जुन यह नाम मिला था। कालांतर में वे पुनः ग्रहस्थ आश्रम में वापस आए लेकिन साहित्य के क्षेत्र में उनका नागार्जुन यह नाम ही प्रसिद्ध रहा। नागार्जुन का जीवन बहुत ही संघर्षपूर्ण रहा, इसकारण ही जीवन के अभावग्रस्तता की स्वानुभूति के कारण उनकी कविता में सामाजिक यथार्थता का बेबाक और सटीक वर्णन मिलता है। उनका जीवन एवं रचनात्मक परिचय इसप्रकार है।

2.3.2.1 कवि नागार्जुन का जीवन परिचय :

जनकवि विद्यानाथ मिश्र उर्फ नागार्जुन जी का जन्म 30 जून, 1911 ई. में उनके ननिहाल बिहार के दरभंगा जिले में स्थित तरौनी कस्बे में एक संस्कृत पंडित परिवार में हुआ। उनकी माता का नाम उमादेवी था और पिता का नाम गोकुल मिश्र था। लेकिन बचपन में ही माँ का देहावसान होने कारण वे अपने नानाजी के जमीन-जायदाद की देखभाल हेतु पिताजी गोकुल मिश्र जी के साथ ननिहाल में रहे। नागार्जुन के पूर्व चार भाई-बहनों का शैशवकाल में ही मृत्यु हुई थी। चार वर्ष की आयु में ही माता की मृत्यु के कारण उनका बचपन माँ और भाई-बहनों के प्रेम से वंचित रहा। पिताजी की घुमक्कड़ स्वभाव का बालक विद्यानाथ पर बहुत प्रभाव पड़ा और वे भी घुमक्कड़ प्रवृत्ति के बने। उनकी प्रारंभिक शिक्षा गाँव के ही संस्कृत पाठशाला में हुई। उनका पूरा बचपन निम्न वर्ग के लोगों के साथ बितने के कारण निम्न वर्ग की वेदना एवं दुःखों को वे बहुत करीब से जानते थे। खुद ब्राह्मण होने के बावजूद वे जाति-भेद के आडंबर को मानते नहीं थे। उन्नीस वर्ष की आयु में नागार्जुन का विवाह अपराजिता देवी से हुआ। दोनों का दाम्पत्य जीवन सामंजस्य से बीता। उनकी यायावरी वृत्ति के कारण वे अपने पत्नी को यथोचित स्नेह नहीं दे पाए। उनके चार बेटे और दो बेटियाँ थीं।

आगे उन्होंने संस्कृत और साहित्य में आचार्य पद तक पढाई की। काशी संस्कृत विद्यालय में चार वर्षों तक व्याकरण का अध्ययन किया। उसके बाद पचगछिमार में एक वर्ष और एक वर्ष कलकत्ता में रहकर संस्कृत छंदों का अध्ययन किया। पाली भाषा और बौद्ध-दर्शन का अध्ययन करने के लिए वे केलानिया (श्रीलंका) में भी रहे। उनका हिंदी, मैथिली और संस्कृत भाषा पर अच्छा अधिकार था। बाद में नागार्जुन ने काव्य तीर्थ की उपाधि का अध्ययन बीच में ही छोड़कर घर-गृहस्थी चलाने के लिए सहारनपुर में सौ रुपये के मासिक वेतन पर प्राकृत से हिंदी में अनुवाद करने का काम करते थे। एक वर्ष बाद वे पंजाब की 'दीपक' इस साहित्यिक पत्रिका का संपादन का करने लगे और कुछ समय उन्होंने श्रीलंका में अध्यापन का भी काम किया। उसके बाद वे साहित्य की सेवा के लिए निरंतर घूमते रहे और साहित्य लेखन से जुड़े रहे। जीवनभर वे आर्थिक अभाव से घिर रहे। आखिरकार बीमारी के कारण 5 नवंबर, 1998 ई. को उनका देहांत हुआ।

2.3.2.2 कवि नागार्जुन का रचनात्मक परिचय :

हिंदी साहित्य में विद्यानाथ मिश्र की पहचान 'जनकवि' के रूप में है। लेकिन उनकी साहित्यिक प्रतिभा बहुमुखी थी। उन्होंने उपन्यास, कविता, आलोचना, निबंध, अनुवाद, बालसाहित्य आदि विधाओं में विपुल लेखन किया। हिंदी, मैथिली और संस्कृत भाषाओं में उन्होंने साहित्य लेखन किया। उनकी पहली रचना सन 1939 में लाहौर से प्रकाशित होनेवाली 'विश्व बंधु' साप्ताहिक में छपी, जिसका नाम 'राम के प्रति' था। प्रारंभिक काल में उनकी मैथिली और हिंदी भाषा में कविताएँ पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रही हैं। उनके साहित्य संसार का संक्षिप्त परिचय इसप्रकार है-

अ) उपन्यास साहित्य :

- | | |
|-----------------------------|-----------------------------|
| 1. रतिनाथ की चाची (1948 ई.) | 2. बलचनमा (1952 ई.) |
| 3. नई पौध (1953 ई.) | 4. बाबा बटेसरनाथ (1954 ई.) |
| 5. दुःखमोचन (1957 ई.) | 6. वरूण के बेटे (1957 ई.) |
| 7. कुंभीपाक (1960 ई.) | 8. हीरक जयंती (1961 ई.) |
| 9. उग्रतारा (1963 ई.) | 10. इमरतिया (1969 ई.) |
| 11. पारो (1975 ई.) | |

आ) कविता संग्रह :

- | | |
|-------------------------------------|--------------------------------------|
| 1. युगधारा (1953 ई.) | 2. प्यासी पत्थराई आँखें (1962 ई.) |
| 3. सतरंगे पंखोंवाली (1959 ई.) | 4. तुमने कहा था (1967 ई.) |
| 5. खिचड़ी विलपव देखा हमने (1974 ई.) | 6. हजार-हजार बाहोवाली (1970 ई.) |
| 7. भस्मांकुर (1971 ई.) | 8. भूमिजा |
| 9. खून और शोले | 10. प्रेत का बयान |
| 11. तालाब की मछलियाँ | 12. ऐसे भी हम क्या! ऐसे भी तुम क्या! |
| 13. रत्नगर्भ | 14. चंदना |
| 15. शपथ | |

इ) अन्य कृतियाँ :

- | | |
|----------------------------------|-----------------------------|
| 1. अयोध्या का राजा (बाल साहित्य) | 2. सयानी कोमल (बाल साहित्य) |
| 3. मेघदूत (अनुवाद) | 4. जयदेव का गीत गोविंद |

5. प्रेमचंद (आलोचना) आदि।
6. कहानियाँ- असमर्थदाता, ताप हारिणी, विशाखा-मृगारमता, ममता, आसमान के चंदा तेरे, भूख मर गई थी आदि।
7. यात्रा वर्णन - हिमालय की बेटियाँ, टिहरी से नेलड, थो लिड महाविराम, अतिथि सत्कार, सिंघ में सत्रह महिने आदि।
8. संस्मरण - मैं सो रहा हूँ, एक घंटा, आईने के समाने आदि।
9. निबंध - बम्भोलेनाथ, सरस्वती का अपमान, दादाजी आप रिटायर हो, रहनुमा, ब्राह्मण बुद्ध युग में, राजाश्रय और साहित्य जीविका, अंग्रेजों को नहीं लादा जा सकता, हिंदी की छाती पर, मैथिली और हिंदी, मानक चतुःशब्दी समारोह आदि।

2.3.2.3 कवि नागार्जुन का हिंदी साहित्य में योगदान :

हिंदी साहित्य के प्रगतिवादी कालखंड के प्रमुख साहित्यकारों में वैद्यनाथ मिश्र उर्फ नागार्जुन का नाम विशेष उल्लेखनीय रहा है। बहुमुखी प्रतिभा के धनी नागार्जुन जी ने 11 उपन्यास, 14 कविता संग्रह, कुछ निबंध, कहानियाँ, बाल साहित्य, संस्मरण, यात्रा साहित्य लिखकर हिंदी साहित्य को समृद्ध बनाया। वे प्रगतिवादी काव्यधारा के प्रमुख 'जनकवि' कहलाते हैं। नागार्जुन जी ने आर्थिक अभाव और गरीबी को सहा था, इसकारण उनकी कविताओं में सर्वहारा वर्ग के प्रति गहरी संवेदना दिखाई देती है। नागार्जुन जी पर मार्क्सवादी एवं साम्यवाद का गहरा प्रभाव होने के कारण उनकी कविताओं में पूँजीपति व्यवस्था और राजनीतिक व्यवस्था पर गहरा व्यंग्य दिखाई देता है। उन्होंने अपनी कविताओं के माध्यम से समाज की विसंगतियाँ, राजनीतिक भ्रष्टाचार, अनैतिकता आदि पर प्रहार किया। निम्न वर्ग की सामाजिक समस्याओं का चित्रण वे निरंतर अपने कविताओं में करते रहे। गरीबों के शोषण के लिए जिम्मेदार राजनीतिक व्यवस्था पर भाष्य करने के कारण कई बार उन्हें राजसत्ता के कोप का भाजन बनना पड़ा। उनकी कविताओं में राजनीतिक चेतना का सजीव वर्णन मिलता है। डॉ. मैनेजर पांडेय ने उनकी राजनीतिक चेतना के संदर्भ में लिखा था कि नागार्जुन की कविता के आधार पर सन् 1940 ई. के बाद के भारतीय समाज की राजनीतिक चेतना का इतिहास लिखा जा सकता है। उन्होंने गरीबी, मँहगाई, बेरोजगारी, कालाबाजारी, भ्रष्टाचार आदि समस्याओं के लिए भारत की राजनेताओं और उनकी भ्रष्ट व्यवस्था को जिम्मेदार माना था। वे कविता में आम जनता की समस्या के संदर्भ में लिखते हैं- "देश हमारा भूखा, नंगा/ घायल हे बेकारी से/ मिले न रोजी-रोटी/ भटके दर-दर बने भिखारी से।" अन्य एक उदाहरण में वे पूँजीवादी व्यवस्था के शोषकों पर व्यंग्य कसते हुए लिखते हैं- "जमींदार हैं, साहूकार है, बनिया हैं, व्यापारी हैं/ अंदर- अंदर विकट कसाई/ बाहर खद्दरदारी है।" उनकी कविताओं में व्यंग्य की तीखी धार थी। इसलिए वरिष्ठ आलोचक डॉ. नामवर सिंह नागार्जुन को कबीर के बाद दूसरा सबसे बड़ा व्यंग्यकार मानते हैं। उनकी कविता बहुत ही सहज, सरल और जनभाषा मैथिली और हिंदी में थी। इसकारण उसमें आम जनता के जीवन के प्रति

गहरी संवेदना थी। साहित्य के क्षेत्र में दिए उल्लेखनीय योगदान के लिए उन्हें मैथिलीशरण गुप्त सम्मान, साहित्य अकादमी और भारत भारती इन प्रतिष्ठित पुरस्कारों से सम्मानित किया गया है।

2.3.3 कवि गजानन माधव 'मुक्तिबोध' का सामान्य परिचय :

कवि गजानन माधव 'मुक्तिबोध' प्रगतिवादी काव्यधारा के एक प्रमुख कवि माने जाते हैं। उन्होंने हिंदी साहित्य जगत् में कवि, आलोचक, निबंधकार और कहानीकार के रूप में भी अपनी पहचान बनाई। मुक्तिबोध ने प्रगतिवादी कविताओं की रचना के साथ-साथ प्रयोगवाद और नई कविता आंदोलन में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया। उन्हें हिंदी साहित्य जगत् में एक विचारशील साहित्यकार माना जाता है। उनका संक्षिप्त जीवन एवं रचनात्मक परिचय इसप्रकार है—

2.3.3.1 कवि गजानन माधव 'मुक्तिबोध' का जीवन परिचय :

कवि गजानन माधव 'मुक्तिबोध' जी का जन्म दि. 13 नवंबर, सन् 1917 ई. को ग्वालियर के मुरैना जिले में स्थित श्योपुर गाँव में एक ब्राह्मण परिवार में हुआ। मुक्तिबोध के पूर्वज पहले महाराष्ट्र के जलगाँव के मूल निवासी थे। लेकिन मुक्तिबोध जी के परदादा जी अंग्रेजी शासन काल में सरकारी नौकरी के चलते ग्वालियर में हमेशा के लिए बस गए। मुक्तिबोध का बचपन बहुत ही लाड़ और प्यार में बीता। उनके पिताजी का नाम माधवराव कुलकर्णी था, जो पुलिस अधिकारी थे और उज्जैन से पुलिस निरीक्षक के पद से सेवा निवृत्त हुए। एक कर्तव्यनिष्ठ, स्वाभिमानी और ईमानदारी अधिकारी के रूप में उनके पिताजी का रूतबा था। मुक्तिबोध जी के व्यक्तित्व में भी यह सभी गुण पिताजी से विरासत के रूप में मिले थे। उनकी माताजी का नाम पार्वतीबाई था जो मराठी साहित्य और मराठी लेखक हरिनारायण आपटे जी के साहित्य में रूचि रखती थी। बालक गजानन ने अपनी माता-पिता से बहुत सारे संस्कार और अच्छे गुण ग्रहण किए थे। उनके पिताजी चाहते थे कि वह वकील बनकर उनसे भी ज्यादा शोहरत प्राप्त करें लेकिन बचपन से ही मुक्तिबोध की रूचि साहित्य लेखन की ओर थी। पिताजी की सरकारी नौकरी के कारण उनकी शिक्षा में व्यवधान आते रहे। उज्जैन, विदिशा, अमझारा और सरदारपुरा आदि जगहों में उन्होंने अपनी प्रारंभिक शिक्षा को पूरा किया। सन् 1930 ई. में वे ग्वालियर बोर्ड की मिडिल परीक्षा किसी कारणवश असफल हुए थे लेकिन सन् 1931 ई. में उन्होंने वह पास कर ली। सन् 1935 ई. में इंटरमीडिएट और सन् 1937 ई. होलकर कॉलेज, इंदौर से बी.ए. की उपाधि प्राप्त की। बीच में कुछ सालों के अंतराल के बाद उन्होंने सन् 1953 में नागपुर विश्वविद्यालय से एम.ए. (हिंदी) की परीक्षा पास की। माता-पिता की मृत्यु के बाद उनका जीवन बहुत ही संघर्षपूर्ण रहा।

गजानन माधव 'मुक्तिबोध' पर मार्क्सवादी विचारधारा का गहरा प्रभाव था। साथ ही प्रकृति के सौंदर्य के प्रति उनमें आकर्षण था। उन्हें अपने मिश्र शांताराम के साथ रात-रात भर घूमना अच्छा लगता था। उनकी कविताओं में आने वाले रात का अंधेरा, रहस्यमयता इसी अनुभवों की देन है। सन् 1935 ई. से 1942 ई. के दौरान वे पं. माखनलाल चतुर्वेदी, वीरेंद्रकुमार जैन आदि हिंदी साहित्य के दिग्गज साहित्यकारों के संपर्क में रहे, जिससे इनका साहित्यिक कार्य और भी निखर गया। उन्होंने अपने जीवन काल में बहुत-सी नौकरियाँ की और

उसे हमेशा बदलते रहे। उन्होंने बडनगर, शुजालपुर, उज्जैन आदि जगहों पर स्कूल अध्यापक की नौकरियाँ की। साथ-साथ साहित्य सृजन भी करते रहे। विभिन्न साहित्यकारों के संपर्क से उनका हिंदी साहित्य के आंदोलनों से गहरा नाता जुड़ गया इसमें से 'तार सप्तक' में उनका बहुत बड़ा योगदान रहा है। सन् 1944 ई. इंदौर में उन्होंने 'मध्य-भारत प्रगतिशील लेखक संघ' की स्थापना की। सन् 1945 ई. में त्रिलोचन शास्त्री के साथ बनारस में 'हंस' पत्रिका के संपादन विभाग में भी काम किया। सन् 1948 ई. में नागपुर में सूचना तथा प्रकाशन विभाग में काम किया और सन् 1954 ई. में नागपुर के समाचार विभाग में संपादक रहे। उसके बाद सन् 1958 ई. में वे दिग्विजय महाविद्यालय, राजनाँदागाँव में व्याख्याता बने। इस तरह गजानन माधव मुक्तिबोध का जीवन बहुत संघर्षपूर्ण रहा और उन्हें बार-बार नौकरियाँ बदलनी पड़ी। इससे उनका पारिवारिक जीवन भी संघर्षपूर्ण और आर्थिक दृष्टि से अभावग्रस्त रहा। उन्होंने घरवालों के विरोध में जाकर शांताबाई नामक महिला से शादी की। शादी के बाद वे हमेशा आर्थिक एवं मानसिक संघर्ष से जूझते रहे। लगभग दो महीनों की बीमारी के बाद 11 सितंबर, 1964 ई. में उनकी मृत्यु हुई, तब उनकी आयु महज 47 वर्ष की थी।

2.3.3.2 कवि गजानन माधव 'मुक्तिबोध' का रचनात्मक परिचय :

गजानन माधव 'मुक्तिबोध' ने हिंदी साहित्य की विभिन्न विधाओं में लेखन किया लेकिन उनकी पहचान कवि के रूप में हुई। उनकी कुछ कविताएँ 'तार-सप्तक' में छपी। प्रारंभ में उनकी कुछ रचनाएँ कर्मवीर, वाणी और वीणा इन साहित्यिक पत्रिकाओं में छपकर आई। उनकी कविताओं को अज्ञेय द्वारा सन् 1943 ई. में संपादित 'तारसप्तक' में सबसे पहला स्थान मिला। अज्ञेय ने उनकी कविताओं को हिंदी कविता में नया प्रयोग माना लेकिन मुक्तिबोध उन्हें कविता ही मानते थे। विडंबना यह थी कि आर्थिक अभाव के चलते वे अपने कविता संग्रह को छाप नहीं पाए और उनकी रचनाओं को जब शमशेर बहादूर सिंह ने संपादित करके छापा तो वह काव्यसंग्रह देखने के लिए वे जिंदा नहीं थे। इस काव्यसंग्रह में शामिल 'ब्रह्मराक्षस' और 'अंधेरे में' ये दो लंबी कविता मुक्तिबोध की अक्षय कीर्ति का दीपस्तंभ बनी। उनकी रचनाओं का संक्षिप्त परिचय इसप्रकार है-

अ) कविता-संग्रह :

1. 'तार-सप्तक'-एक (1943 ई. अज्ञेय द्वारा संपादित)
2. 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' (1964 ई. संपादन-शमशेर बहादूर सिंह)
3. 'भूरी-भूरी खाक-धूल' (1980 ई.)

आ) आलोचना ग्रंथ :

1. कामायनी : एक पुनर्विचार (1952 ई.)
2. भारत : इतिहास और संस्कृति (1962 ई.)
3. नए साहित्य का सौंदर्यशास्त्र (1971 ई.)

4. समीक्षा की समस्याएँ (1982 ई.)

इ) निबंध-संग्रह : नयी कविता का आत्म-संघर्ष तथा अन्य निबंध

ई) डायरी : एक साहित्यिक की डायरी (1965 ई.)

उ) कहानी-संग्रह :

1. 'काठ का सपना' (1966 ई.)

2. सतह से उठता आदमी (1971 ई.)

ऊ) उपन्यास : विपात्र (1970 ई.)

ए) मुक्तिबोध रचनावली छह खंड (संपादक-नेमिचंद जैन 1980 ई.)

2.3.3.3 कवि गजानन माधव 'मुक्तिबोध' का हिंदी साहित्य में योगदान :

गजानन माधव 'मुक्तिबोध' हिंदी साहित्य के बहुमुखी प्रतिभा संपन्न कवि, कहानीकार, उपन्यासकार, निबंधकार, आलोचक, संपादक थे। लेकिन हिंदी साहित्य जगत में उनकी पहचान एक प्रयोगधर्मी एवं प्रगतिवादी कवि के रूप में होती है। मुक्तिबोध ने अपने प्रारंभिक जीवन से ही अर्थाभाव और नौकरी के लिए संघर्ष करने के कारण गरीबी की अनुभूति से वे भलीभाँति परिचित थे। इस कारण सर्वहारा वर्ग की पीड़ा को उन्होंने अपनी कविताओं में अभिव्यक्ति देने का प्रयास किया है। सन् 1940 ई. में अज्ञेय, नेमिचंद जैन और प्रभाकर माचवे जी से मिलकर उन्होंने 'तार-सप्तक' की कल्पना का साकार किया और इससे हिंदी में प्रयोगधर्मी कविता का युग प्रारंभ हुआ। अज्ञेय द्वारा संपादित पहले तार सप्तक में उनकी 17 कविताओं को संकलित किया गया है, जो हिंदी कविता में प्रयोग के रूप में पहचानी जाती है। वे तार-सप्तक के पहले कवि बने। उनकी कविताओं में मनुष्य की अस्मिता, आत्मसंघर्ष और प्रखर राजनैतिक चेतना की अभिव्यक्ति दिखाई देती है। उनकी कविताओं में विचार की दृष्टि से प्रगतिवाद, शिल्प की दृष्टि से छायावादी प्रवृत्तियों का सम्मिश्रण मिलता है। उनके कविताओं में छलकती प्रगतिवादी दृष्टि मूलतः स्वानुभूति, परिवेश का बोध और सामाजिक चिंतना का नतीजा है। उन्हें समाज बोध और जनजीवन में गहरा विश्वास था। इसकारण वे लोगों की तकलीफों को अपने हृदय में महसूस करते थे। वे कहते थे कि समाज के हर व्यक्ति के अंदर इतनी पीड़ा भरी है कि उस पर एक महाकाव्य लिखा जा सकता है। वे लिखते हैं- 'मुझे भ्रम होता है कि प्रत्येक पत्थर में चमकता हीरा है/ हर एक छाती में आत्मा अधीरा है/ प्रत्येक सुस्मित में विमल सदानीरा है/ मुझे भ्रम होता है कि प्रत्येक वाणी में महाकाव्य पीड़ा है।' इस तरह उनकी कविता समाज बोध से परिपूर्ण थी। उनकी कविताओं में बुद्धिजीवी लोगों के आत्म संघर्ष का बखूबी दर्शन होता है। इस दृष्टि से उनकी 'ब्रह्मराक्षस', 'भूल गलती' और दिमागी गुहांधकार का ओरांग उटांग' ये कविता विशेष उल्लेखनीय हैं। वरिष्ठ इतिहासकार डॉ. बच्चन सिंह ने इन कविताओं को 'बुद्धिजीवी वर्ग की ट्रेजेडी' कहा है। जनसाधारण की समस्या को व्यक्त करते हुए उनकी कविता प्रगतिवादी विचारों से भर जाती है। वे गरीबों, असहायों और शोषित महिलाओं के पक्षधर थे। उनकी सामाजिक चेतना

के कारण समाज का कोई हिस्सा उनकी सूक्ष्म दृष्टि से बच नहीं पाया। इसलिए डॉ. रमेश कुंतल उन्हें 'लोक जीवन का जासूस' कहते हैं। वे शोषणहीन समाज का सपना देखते हैं लेकिन पूँजीपतियों और उनकी व्यवस्था को इसमें सबसे बड़ी बाधा मानते हैं। मुक्तिबोध की कविता का कलापक्ष भी बहुत सटीक है। वे शब्द शिल्पी हैं, उनकी कविताओं में अनावश्यक शब्दों का कोई स्थान नहीं होता। मानव की जटिल संवेदनाओं और उसके अंतर युद्ध की सटीक अभिव्यक्ति करने के लिए उन्होंने फैटसी का कलात्मक उपयोग किया है। 'ब्रह्मराक्षस', 'अंधेरे' और 'लकड़ी का रावण' आदि कविताओं में फैटसी का सर्जनात्मक इस्तेमाल किया गया है। कुछ आलोचकों ने इनकी काव्य भाषा को दुरूह और काव्यात्मकता का अभाव माना है। लेकिन इससे उनकी कविताओं का मूल्य कहीं पर भी कम नहीं होता। संक्षेप में कह सकते हैं कि मुक्तिबोध प्रगतिवादी चेतना के कुशल कवि थे जिसमें प्रयोगधर्मिता का भी मिश्रण दिखाई देता है। इसलिए उन्हें प्रयोधर्मी जन कवि कहना उचित होगा।

2.4 स्वयंअध्ययन के लिए प्रश्न :

(अ) निम्नलिखित प्रश्नों के सही विकल्पों को चुनिए ।

1. 'हिंदी साहित्य के इतिहास' (1929 ई.) इस ग्रंथ में आ. रामचंद्र शुक्ल जी ने आधुनिक काल की शुरुआत कब से मानी है?
अ. सन् 1843 ब. सन् 1900 क. सन् 1920 ड. सन् 1910
2. किस युद्ध के बाद भारत से ईस्ट इंडिया कंपनी का शासन खत्म हुआ और भारत अंग्रेजों का उपनिवेश बन गया?
अ. अंग्रेज-सिख युद्ध ब. 1857 के विद्रोह
क. अवध-अंग्रेज ड. मराठा-अंग्रेज
3. बंगाल, बिहार और उड़ीसा में किसने जमींदारी प्रथा की शुरुआत की?
अ. लॉर्ड बेंटिंग ब. लॉर्ड कर्ज़न क. लॉर्ड कॉर्नवालिस ड. टॉमस रो
4. भारतीय किसान की दुर्दशा का सटीक वर्णन के कारण किस उपन्यास को 'कृषक जीवन का महाकाव्य' कहा जाता है।
अ. गोदान ब. परीक्षागुरू क. भाग्यवती ड. गबन
5. स्वामी विवेकानंद जी ने किसी संस्था के माध्यम से भारतीय समाज में आध्यात्मिक चेतना जगाई?
अ. आर्य समाज ब. प्रार्थना समाज क. रामकृष्णमिशन ड. ब्रह्म समाज
6. डॉ. नगेंद्र ने हिंदी साहित्य के द्विवेदी युग को अन्य किस नाम से संबोधित किया है?

- अ. जागरण सुधार काल ब. उदय काल
क. आधुनिक काल ड. चेतनामय काल
7. द्विवेदी युगीन कविता में मुक्तक शैली की जगह कौनसी काव्य शैली का प्रयोग हुआ?।
अ. मुक्तछंद ब. इतिवृत्तात्मकता क. प्रगीत ड. गज़ल
8. द्विवेदी युगीन कवि श्रीधर पाठक को प्राकृतिक सौंदर्य का चित्रण करने के कारण कौनसे नाम से जाना जाता था?
अ. प्रकृति के उपासक कवि ब. प्रकृति के सुकुमार कवि
क. प्रकृति के चित्रकार ड. प्रकृति के द्रष्टा
9. हिंदी गद्य और पद्य के लिए एक ही खड़ी बोली भाषा का आग्रह किसने किया?
अ. आ. रामचंद्र शुक्ल ब. आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी
क. श्रीधर पाठक ड. मैथिलीशरण गुप्त
10. मैथिलीशरण गुप्त के किस महाकाव्य के लिए उन्हें मंगला प्रसाद पारितोषिक प्रदान किया गया।
अ. साकेत ब. कामायनी क. प्रियप्रवास ड. भारत-भारती
11. किस रचना में प्रखर राष्ट्रभक्ति की भावना देखकर महात्मा गांधी ने मैथिलीशरण गुप्त को 'राष्ट्रकवि' की उपाधि से सम्मानित किया था।
अ. साकेत ब. भारत-भारती क. भारत महिमा ड. भारत की शान
12. आधुनिक हिंदी साहित्य में सन् 1918 से 1936 ई. तक के कालखंड की हिंदी काव्यधारा को कौनसा युग माना जाता है।
अ. छायावादी ब. प्रयोगवादी क. प्रगतिवादी ड. नई कविता
13. "परमात्मा की छाया आत्मा में, आत्मा की छाया परमात्मा में पड़ने लगती है, तभी छायावाद की सृष्टि होती है।" छायावाद की यह परिभाषा किसकी है?
अ. डॉ. रामकुमार वर्मा ब. महादेवी वर्मा
क. आ. रामचंद्र शुक्ल ड. डॉ. नगेंद्र
14. "छायावाद स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह है। यह एक विशेष प्रकार की भाव पद्धति है, जीवन के प्रति विशेष भावात्मक दृष्टिकोण है।"
अ. डॉ. रामकुमार वर्मा ब. महादेवी वर्मा

क. आ. रामचंद्र शुक्ल

ड. डॉ. नगेंद्र

15. कवि जयशंकर प्रसाद जी कौनसी कालजयी रचना के कारण अक्षयकीर्ति के अधिकारी बने हुए हैं?

अ. कामायनी

ब. चंद्रगुप्त

क. आँसू

ड. लहर

16. कविता में विरह प्रेम का उदात्त स्वरूप प्रकट करने के कारण किसको 'आधुनिक काल की मीरा' भी कहा जाता है।

अ. सुभद्राकुमारी चौहान

ब. संत मीरा

क. महादेवी वर्मा

ड. बंग महिला

17. महादेवी वर्मा की किस रचना में महिलाओं की स्वतंत्रता और विकास की माँग की है?

अ. शृंगला की कड़ियाँ

ब. यामा

क. नीरजा

ड. यामिनी

18. जो विचारधारा राजनीतिक क्षेत्र में समाजवाद, दर्शन में द्वंद्वात्मक भौतिकवाद है, वही साहित्य के क्षेत्र में किस नाम से जानी जाती है?

अ. छायावाद

ब. साम्यवाद

क. प्रगतिवाद

ड. प्रयोगवाद

19. आर्थिक अन्याय और अत्याचार के खिलाफ वैश्विक स्तर पर एक सामूहिक विद्रोह का सूत्रपात हुआ, जिसका वैचारिक आधार कौनसी विचारधारा थी।

अ. साम्यवाद

ब. मार्क्सवाद

क. समाजवाद

ड. मानवतावाद

20. निम्न वर्ग की सामाजिक समस्याओं का निरंतर चित्रण करने के कारण नागार्जुन किस नाम से जाने जाते हैं?

अ. प्रकृति कवि

ब. देश कवि

क. जन कवि

ड. मानव कवि

(आ) निम्नलिखित प्रश्नों के सही विकल्पों को चुनकर रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

1. हिंदी साहित्य के आधुनिक कालीन साहित्य को छह चरणों में पहला चरण युग का है।

अ. द्विवेदी

ब. भारतेन्दु

क. प्रगतिवादी

ड. छायावादी

2. भारतीय राजनीति में सन् 1920 ई. में का प्रवेश हुआ।

अ. लॉर्ड कर्जन

ब. पं. नेहरू

क. महात्मा गांधी

ड. गोपालकृष्ण गोखले

3. ने जमीन को व्यक्तिगत संपत्ति में बदलने के कारण भारत में जमींदारी प्रथा का उदय हुआ।

अ. सर थॉमस रो

ब. लॉर्ड कॉन वॉलिस

क. लॉर्ड बेटिंग

ड. लॉर्ड कर्जन

4. राजा राममोहन राय ने इस सामाजिक संस्था के माध्यम से भारत में सामाजिक सुधारणा का प्रयास किया।
अ. आर्य समाज ब. 'ब्रह्म समाज' क. रामकृष्ण मिशन ड. प्रार्थना समाज
5. हिंदी साहित्य के आधुनिक काल में सन् 1900 से 1920 ई. तक का कालखंड के नाम से जाना जाता है।
अ. प्रगतिवादी युग ब. प्रयोगवादी युग क. द्विवेदी युग ड. नई कविता
6. द्विवेदीयुगीन कवि हरिऔध जी के को आधुनिक हिंदी का पहला महाकाव्य माना जाता है।
अ. प्रिय प्रवास ब. साकेत क. कामायनी ड. उर्मिला
7. लिखने की परंपरा का सूत्रपात द्विवेदी युग में ही हुआ, जिसका विकास 'छायावादी' युग में दिखाई देता है।
अ. प्रबंध ब. प्रगीत क. गजल ड. दोहा
8. श्रीधर पाठक की कविता में प्रकृति का बहुत ही सुंदर चित्रण किया गया है।
अ. कश्मीर सुषमा ब. अंगद का पाँव क. भारत-भारती ड. परिमल
9. श्रीधर पाठक ने गोल्ड स्मिथ के अंग्रेजी रचना 'हरमिट' का नाम से अनुवाद किया।
अ. भारत का योगी ब. बनारसी योगी
क. एकांतवासी योगी ड. योगेश्वरनाथ
10. आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी ने इस निबंध में कवियों को पुराने छंदों के साथ संस्कृत के वर्णवृत्तों का प्रयोग करने को कहा था।
अ. कवि कर्तव्य ब. कवि कर्म क. लेखन कर्तव्य ड. लेखक कर्म
11. मैथिलीशरण गुप्त जी पहले इस उपनाम से ब्रजभाषा में लिखित अपनी रचनाएँ लिखते थे।
अ. कलाधर ब. भारतीय क. रसिकेंद्र ड. अज्ञेय
12. हिंदी साहित्य में ने सर्वप्रथम 'छायावाद' इस शब्द का प्रयोग किया।
अ. मुकुटधर पाण्डेय ब. जयशंकर प्रसाद क. आ. रामचंद्र शुक्ल ड. निराला
13. "छायावाद तत्त्वतः प्रकृति के बीच जीवन की उद्गीथ है।:उसका मूल दर्शन सर्वात्मवाद है, यह परिभाषा की है।

से यह विद्रोह शुरू हुआ था। इसे प्रथम भारतीय स्वतंत्रता संग्राम या 'सिपाही विद्रोह' भी कहा जाता है।

- * **ईस्ट इंडिया कंपनी** : यह एक ब्रिटिश व्यापारी कंपनी थी, जिसकी स्थापना 31 दिसंबर, 1600 को ब्रिटन की महारानी एलिजाबेथ प्रथम द्वारा हुई थी। एशिया और पूर्वी देशों के साथ व्यापार करके लाभ करना इसका प्रमुख उद्देश्य था।
- * **उपनिवेश** : किसी दूर के क्षेत्र या देश को कहा जाता है जो किसी अन्य शक्तिशाली और संप्रभु देश के राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक नियंत्रण में होता है।
- * **लॉर्ड कॉर्नवालिस** : एक ब्रिटिश सेना का अधिकारी, राजनयिक और प्रशासक था। इनका कार्यकाल 1738 से 1805 ई. तक रहा है। अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम के दौरान अपने देश का नेतृत्व किया। 1786 ई. को भारत में बंगाल के गवर्नर-जनरल बनाया गया। बंगाल और भारत के अन्य हिस्सों में जमींदारी प्रथा की शुरुआत की।
- * **सर थॉमस रो** : सर थॉमस रो का कार्यकाल 1581 ई. से 1644 ई. रहा है। ये एक अंग्रेज राजनयिक थे। राजदूत के रूप में उन्होंने मुगल साम्राज्य, ओटोमन साम्राज्य और रोमन साम्राज्य में इंग्लैंड का प्रतिनिधित्व किया।
- * **'कृषक जीवन का महाकाव्य'** : हिंदी के उपन्यास सम्राट प्रेमचंद जी द्वारा सन् 1936 ई. में लिखित 'गोदान' उपन्यास को कृषक जीवन का महाकाव्य कहा जाता है। क्योंकि इस उपन्यास में उपनिवेशक भारत के किसानों की दुर्दशा और दयनीय जीवन का सटीक वर्णन किया गया है, जिसने भारत के कृषक जीवन का प्रतिनिधित्व किया।
- * **जागरण सुधार काल** : हिंदी साहित्य में द्विवेदी युग (सन 1900 से 1918 ई.) को ही डॉ. नगेंद्र जी ने जागरण सुधार काल कहा है। इसके युग प्रवर्तक आ. महावीर प्रसाद द्विवेदी जी थे।
- * **इतिवृत्तात्मकता** : कथा या आख्यान (वर्णन) की प्रधानता। किसी घटना, विवरण या इतिहास का सिलसिलेवार वर्णन होता है। ऐतिहासिक-पौराणिक प्रसंगों का सीधा और विस्तृत वर्णन करने पर उसे इतिवृत्तात्मक शैली कहा जाता है।
- * **खड़ी बोली** : हिंदी भाषा का वह मानक और परिनिष्ठित रूप है, जो आज बोलचाल, शिक्षा और साहित्य में सबसे अधिक उपयोगी माना जाता है। इसे 'कौरवी' भी कहा जाता है। इसका मुख्य केंद्र दिल्ली और उत्तर प्रदेश का मेरठ रहा है।
- * **प्रगीत और मुक्तक शैली** : हिंदी साहित्य में कविता लेखन की दो महत्वपूर्ण शैलियाँ हैं। प्रगीत में कवि के मन के किसी विशेष क्षण या आवेग की तीव्र अभिव्यक्ति होती है। मुक्तक में किसी एक प्रसंग या विचार को एक छंद या पद में स्वतंत्र रूप में प्रस्तुत किया जाता है।

- * **छंद** : काव्य के क्षेत्र में वर्णों और मात्राओं की निश्चित संख्या, क्रम, यति, गति और तुकबंदी से युक्त ऐसी सुव्यवस्थित रचना को छंद कहते हैं, जो कविता में संगीतात्मकता और लयबद्धता उत्पन्न करती है।
- * **आलंबन** : का अर्थ है सहारा या आश्रय या आधार देना। कविता में जिस व्यक्ति, वस्तु या परिस्थिति के कारण मन में कोई भाव जागृत होता है, उसे आलंबन विभाव कहते हैं।
- * **स्वानुभूति की विवृति** : स्वयं के द्वारा भोगे या अनुभव किए गए यथार्थ का विस्तार से विश्लेषण या स्पष्टीकरण करना।
- * **उद्गीथ** : ऊंचे स्वर में गाया जाने वाला पवित्र गीत या मंत्र को उद्गीथ कहते हैं। वैदिक और योग परंपरा में इसके गहरे अर्थ और महत्त्व था।
- * **रोमांटिक काव्यधारा**: यह साहित्य या कविता का एक प्रमुख युग था जिसमें नियमों, तर्क और कठोरता के बजाय कल्पना, भावना, प्रकृति-प्रेम और व्यक्तिवाद को सर्वोच्च महत्त्व दिया गया। यह आंदोलन पश्चिमी देशों में 18 वीं सदी के अंत में शुरू हुआ। विलियम वड्सवर्थ, एस.टी. कोलरिज, जॉन कीट्स, लॉर्ड बायरन और पर्सी बिशे शेली इसके प्रमुख की थे। 19 वीं शताब्दी के प्रारंभ हिंदी साहित्य भी इससे प्रभावित रहा।
- * **रहस्यवाद** : यह एक आध्यात्मिक और दार्शनिक विचारधारा है, जिसके अनुसार सृष्टि का आधार एक अलौकिक, असीम और अदृश्य शक्ति (परमात्मा) है। इसमें साहित्यकार मानवीय चेतना से उस परम सत्ता के साथ सीधा संबंध या मिलन स्थापित करने का प्रयास करता है। हिंदी में भक्तिकालीन और छायावादी काव्य में यह विशेषता दिखाई देती है।
- * **व्यक्तिवाद** : एक नैतिक, सामाजिक और राजनीतिक विचार है जिसमें समाज की तुलना में व्यक्ति की स्वतंत्रता, गरिमा और आत्मनिर्भरता को सर्वोच्च स्थान होता है।
- * **कार्ल मार्क्स** : ये जर्मनी के एक दार्शनिक, अर्थशास्त्री, इतिहासकार, राजनीतिज्ञ, समाजशास्त्री, पत्रकार और वैज्ञानिक समाजवाद के प्रवर्तक थे। सन् 1818 से 1883 ई. इनका कालखंड रहा है। उन्होंने वर्ग संघर्ष का सिद्धांत, ऐतिहासिक भौतिकवाद, अतिरिक्त मूल्य का सिद्धांत और राज्य एवं साम्यवाद का सिद्धांत ये चार इनके प्रमुख सिद्धांत रहे हैं। इसका सम्मिलित रूप मार्क्सवाद के नाम से जाना जाता है।
- * **अद्वैतवाद** : अद्वैतवाद यह एक भारतीय दर्शन है जो वेदांत का एक प्रमुख सिद्धांत है। इसके अनुसार संपूर्ण ब्रह्मांड में केवल एक ही परम सत्य (परमेश्वर या ब्रह्म) मौजूद है। ब्रह्म और आत्मा (जीव) अलग-अलग नहीं हैं, बल्कि दोनों एक ही हैं। अद्वैत अर्थात् दो नहीं हैं। इसके मुख्य प्रणेता और प्रचारक आदि शंकराचार्य (7 वीं शती) थे।

- * **विशिष्टद्वैतवाद** : विशिष्टद्वैतवाद वेदांत दर्शन की ही एक शाखा है। 11 वीं सदी के महान संत और दार्शनिक रामानुजाचार्य ने इस मत का प्रतिपादन किया था।
- * **ऐंद्रिकता** : इंद्रियों से संबंधित होने की अवस्था या भाव ।
- * **फैंटसी** : इसका अर्थ कल्पना, स्वप्न या मायालोक से होता है। यह एक ऐसी शैली या मानसिक अवस्था है, जिसमें वास्तविक दुनिया से परे जादू, अलौकिक शक्तियों और काल्पनिक जीवों की दुनिया का निर्माण किया जाता है। साहित्य और सिनेमा में इसका प्रयोग किया जाता है।

2.6 स्वयंअध्ययन प्रश्नों के उत्तर :

(अ) के उत्तर

- | | | |
|---------------------------|----------------------------|--------------------------------|
| 1. अ. सन १८४३ | 2. ब. १८५७ के विद्रोह | 3. क. लॉर्ड कॉर्नवालिस |
| 4. अ. गोदान | 5. क. रामकृष्णमिशन | 6. अ. जागरण सुधार काल |
| 7. ब. इतिवृत्तात्मकता | 8. अ. प्रकृति के उपासक कवि | 9. ब. आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी |
| 10. अ. साकेत | 11. ब. भारत-भारती | 12. अ. छायावादी |
| 13. अ. डॉ. रामकुमार वर्मा | 14. ड. डॉ. नगेंद्र | 15. अ. कामायनी |
| 16. क. महादेवी वर्मा | 17. अ. शृंखला की कड़ियाँ | 18. क. प्रगतिवाद |
| 18. ब. मार्क्सवाद | 20. क. जन कवि | |

(आ) के उत्तर :

- | | | |
|----------------------|----------------------------|------------------------|
| 1. ब. भारतेन्दु | 2. क. महात्मा गांधी | 3. अ. सर थॉमस रो |
| 4. ब. ब्रह्म समाज | 5. क. द्विवेदी युग | 6. अ. प्रिय प्रवास |
| 7. ब. प्रगीत | 8. अ. कश्मीर सुषमा | 9. क. एकांतवासी योगी |
| 10. अ. कवि कर्तव्य | 11. क. रसिकेंद्र | 12. अ. मुकुटधर पांडेय |
| 13. ब. महादेवी वर्मा | 4. ब. हजारीप्रसाद द्विवेदी | 15. अ. व्यक्तिवादिता |
| 16. ब. यामा | 17. क. प्रगतिवादी | 18. ब. विद्यानाथ मिश्र |
| 19. क. मुक्तिबोध | 20. अ. फैंटसी | |

2.7 सारांश :

1. आधुनिक काल की हिंदी काव्यधाराओं पर युगीन राजनीतिक परिस्थिति का काफी प्रभाव पड़ा। सन 1857 के विद्रोह के बाद भारत से ईस्ट इंडिया का शासन खत्म हुआ और भारत अंग्रेजों का

उपनिवेश बना। इससे भारत में प्रशासनिक बदलाव हुआ जो भारत का शोषण करने लगी। इस दौरान भारतेन्दु युगीन साहित्यकारों ने अंग्रेजों की दमन नीतियों पर प्रहार किया।

2. सन् 1885 ई. को कांग्रेस की स्थापना, सन् 1905 ई. को बंगला का विभाजन, जालियाँवाला बाग हत्याकांड और विदेशों में सक्रिय भारतीय क्रांतिकारों के गुटों से स्वाधीनता आंदोलन की गतिविधियाँ तेज हुईं। ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज, रामकृष्ण मिशन, आर्य समाज आदि सामाजिक संगठनों ने सामाजिक एवं धार्मिक सुधार आंदोलन चलाकर भारतीय जनमानस को जागरूक किया।
3. इस दारौन द्विवेदी युगीन साहित्यकारों ने भारत के प्राचीन इतिहास और संस्कृति का गौरव गान करके लोगों में चेतना जागृत की। साहित्य में गद्य और पद्य को लेकर खड़ी बोली को स्थापित करने का प्रयास आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी के नेतृत्व में इन कवियों ने किया। इसमें पं. मैथिलीशरण गुप्त के कविता में राष्ट्र चेतना और श्रीधर पाठक की कविता में प्रकृति सौंदर्य, राष्ट्रप्रेम की भावना प्रबल थी।
4. सन् 1920 ई. में भारतीय राजनीति में म. गांधी जी का उदय हुआ। गांधी जी ने सविनय कानून उल्लंघन, सत्याग्रह, असहयोग आंदोलन से भारतीय स्वाधीनता संग्राम को व्यापक बनाया। पहला विश्वयुद्ध की विभीषिका ने समस्त दुनिया को प्रभावित किया और भारत में अंग्रेज ओर जमींदारों का दमन चक्र में किसान-मजदूरों का जीवन शोषण से ग्रस्त रहा।
5. राजनीतिक निराशा ने इस दौर में छायावादी कविता का अविर्भाव हुआ जिसमें कवियों ने व्यक्तिवाद को स्थान देते हुए वेदना को व्यक्त किया। स्वतंत्रता, प्रकृति प्रेम, रहस्यवाद, आंतरिक राष्ट्रप्रेम की भावना तीव्र हुई। इसमें जयशंकर प्रसाद और महादेवी वर्मा ने छायावादी काव्यधारा को प्रबल बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। प्रसाद ने 'कामायनी' जैसा महाकाव्य लिखकर आधुनिक मानव के सुख की कामना की तो महादेवी वर्मा ने हिंदी में गीत लेखन का विकास किया।
6. रूस की साम्यवादी राज्यक्रांति ने दुनिया को प्रभावित किया। पूँजीवादी व्यवस्था के खिलाफ विश्व स्तर पर आक्रोश निर्माण हुआ और इसका आधार कार्ल मार्क्स की 'मार्क्सवादी' विचारधारा बनी। वैश्विक आर्थिक मंदी, अंग्रेजों द्वारा भारत की आर्थिक लूट, किसान-मजदूरों का अमानवीय शोषण जारी था। इसका प्रभाव साहित्य में पड़ा और प्रगतिवादी आंदोलन शुरू हुआ।
7. राजनीतिक क्षेत्र में जो मार्क्सवाद था वही हिंदी कविता में आकर 'प्रगतिवाद' बना। हिंदी प्रगतिवादी काव्यधारा के कवियों ने शोषितों, सर्वहारा वर्ग के प्रतिनिधि किसान, मजदूरों के दुःखभरे जीवन को कविताओं में उतरा और पूँजीवादी व्यवस्था का विरोध करते हुए अंग्रेज, जमींदार, मिल मालिक आदि के खिलाफ आवाज उठाई। इस कालखंड में नागार्जुन ने जनकवि की जिम्मेदारी निभाते हुए सर्व हारा वर्ग के दुःखों को कविता में साकार किया जबकि मुक्तिबोध ने प्रयोगवादी और प्रगतिवादी कविताओं के अनोखे मिश्रण से इस कालखंड को प्रभावित किया।

2.8 स्वाध्याय :

अ) टिप्पणियाँ लिखिए।

1. आधुनिककालीन राजनीतिक परिस्थिति ।
2. आधुनिककालीन सामाजिक परिस्थिति ।
3. द्विवेदीकालीन काव्यधारा की विशेषता।
4. पं. मैथिलीशरण गुप्त का परिचय।
5. प. श्रीधर पाठक का परिचय।
6. छायावादी काव्यधारा की विशेषता।
7. कवि जयशंकर प्रसाद का परिचय।
8. कवयित्री महादेवी वर्मा का परिचय ।
9. प्रगतिवादी काव्यधारा की विशेषता।
10. जनकवि नागार्जुन का परिचय ।
11. कवि मुक्तिबोध का परिचय।

आ) दीर्घोत्तरी प्रश्न :

1. आधुनिककालीन हिंदी कविता की परिस्थितियों को स्पष्ट करते हुए द्विवेदी कालीन काव्यधारा की विशेषताओं का सविस्तर विवेचन कीजिए।
2. छायावाद का अर्थ एवं स्वरूप बताकर छायावादी काव्यधारा की विशेषताओं का सविस्तर विवेचन कीजिए।
3. प्रगतिवाद का अर्थ एवं स्वरूप स्पष्ट करके प्रगतिवादी काव्यधारा की विशेषताओं का सविस्तर विवेचन कीजिए।
4. कवि मैथिलीशरण गुप्त का जीवन परिचय बताकर हिंदी साहित्य में उनके योगदान को स्पष्ट कीजिए।
5. कवि श्रीधर पाठक का जीवन परिचय बताकर हिंदी साहित्य में उनके योगदान को स्पष्ट कीजिए।
6. कवि जयशंकर प्रसाद का जीवन परिचय बताकर हिंदी साहित्य में उनके योगदान को स्पष्ट कीजिए।
7. कवयित्री महादेवी वर्मा का जीवन परिचय बताकर हिंदी साहित्य में उनके योगदान को स्पष्ट कीजिए।
8. कवि नागार्जुन का जीवन परिचय बताकर हिंदी साहित्य में उनके योगदान को स्पष्ट कीजिए।

9. कवि गजानन माधव 'मुक्तिबोध' का जीवन परिचय बताकर हिंदी साहित्य में उनके योगदान को स्पष्ट कीजिए।

2.9 क्षेत्रीय कार्य :

1. मराठी साहित्य के इतिहास की जानकारी निकालकर हिंदी साहित्य के साथ उसकी तुलना कीजिए।
2. द्विवेदी कालीन कवियों की देशभक्ति पर आधारित कविताओं पर लघु शोध परियोजना बनाए।
3. छायावादी कवयित्री महादेवी वर्मा के गीतों का संकलन कीजिए और उसमें से किसी एक गीत को हिंदी दिवस समारोह में पेश कीजिए।
4. प्रगतिवादी कवियों की कविता में किसान जीवन इस विषय पर लघु शोध परियोजना बनाए।

2.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए :

1. शुक्ल, रामचंद्र (आ.), हिंदी साहित्य का इतिहास (सं.22 वाँ 2023 ई.), लोकभारती प्रकाशन, महात्मा गांधी मार्ग, प्रयागराज-211001।
2. शर्मा, रमेश चंद्र (डॉ.), हिंदी साहित्य का इतिहास (सं. 2022 ई.), विद्या प्रकाशन, सी-449, गुजैनी-कानपुर-22 (उ.प्रदेश)
3. शर्मा, शिवकुमार (डॉ.) हिंदी साहित्य:युग और प्रवृत्तियाँ (प्र.सं. 1970 ई.), अशोक प्रकाशन, नई दिल्ली।



आधुनिक गद्य विधाओं का विकास

अनुक्रम

- 3.1 उद्देश्य
- 3.2 प्रस्तावना
- 3.3 विषय विवेचन
 - 3.3.1 हिंदी जीवनी साहित्य : उद्भव और विकास
 - 3.3.2 हिंदी संस्मरण साहित्य : उद्भव और विकास
 - 3.3.3 हिंदी रिपोर्टाज साहित्य : उद्भव और विकास
 - 3.3.4 हिंदी डायरी साहित्य : उद्भव और विकास
- 3.4 स्वयंअध्ययन के लिए प्रश्न
- 3.5 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ
- 3.6 स्वयंअध्ययन प्रश्न के उत्तर
- 3.7 सारांश
- 3.8 स्वाध्याय
- 3.9 क्षेत्रीय कार्य
- 3.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए

3.1 उद्देश्य :

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप,

- ◆ हिंदी साहित्य की आधुनिक गद्य विधाओं से परिचित होंगे।
- ◆ हिंदी जीवनी साहित्य के स्वरूप, उसके उद्भव एवं विकास को जानेंगे।
- ◆ हिंदी संस्मरण साहित्य के स्वरूप, उसके उद्भव एवं विकास को जानेंगे।
- ◆ हिंदी रिपोतार्ज साहित्य के स्वरूप, उसके उद्भव एवं विकास को जानेंगे।
- ◆ हिंदी डायरी साहित्य के स्वरूप, उसके उद्भव एवं विकास को जानेंगे।

3.2 प्रस्तावना :

हिंदी साहित्य के इतिहास का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है प्राचीन काल में साहित्य लेखन पद्य के विविध रूपों में किया जाता था। आदिकाल में कुछ जगहों पर गद्य का विशुद्ध और चंपू रूप देखने मिलता है। चंपू में गद्य और पद्य का मिश्रित स्वरूप देखने मिलता है। भक्तिकाल में भी गद्य का स्वरूप अविकसित ही रहा। इस कालखंड में गद्य लेखन में तुकांत के आधार पर गद्य लेखन किया जा रहा था। रीतिकाल में भी गद्य लेखन अत्यल्प रहा। आदिकाल से लेकर रीतिकाल तक हिंदी में शुद्ध गद्य लेखन का अभाव रहा है। हिंदी में गद्य लेखन का सूत्रपात 19 वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में माना जाता है। इस शताब्दी में हुए विभिन्न सामाजिक एवं राजनीतिक परिवर्तनों, शिक्षा के सुनियोजित अवसर, ईसाई मिशनरियों का धर्म प्रचार एवं प्रसार के कार्य, अंग्रेजी साहित्य के प्रभाव, प्रेस का आविष्कार और पत्रकारिता के कारण गद्य लेखन को गति मिली। इस दिशा में भारतेन्दु हरिश्चंद्र जी ने किए क्रांतिकारी कार्य के कारण उन्हें 'आधुनिक गद्य के जनक' कहा जाता है। भारतेन्दु युग को हिंदी साहित्य में 'नवजागरण काल' कहा जाता है। इस कालखंड में नाटक, निबंध और पत्रकारिता इन विधाओं का समुचित विकास हुआ। 'हरिश्चंद्र पत्रिका', 'ब्राह्मण', 'हिंदी प्रदीप', 'सरस्वती' जैसी हिंदी पत्र-पत्रिकाओं ने आधुनिक गद्य लेखन में यात्रा वृत्तांत, संस्मरण जैसी कथेतर गद्य विधाओं के विकास में पार्श्वभूमि तैयार करने का कार्य किया। आर्य समाज, ब्रह्म समाज के शैक्षिक एवं सामाजिक सुधार के आंदोलनों के कारण आदर्श प्रस्तुत करने हेतु जीवनी, आत्मकथा जैसी गद्य विधाओं का महत्व बढ़ा।

3.3 विषय विवेचन :

3.3.1 हिंदी जीवनी साहित्य : उद्भव और विकास :

हिंदी के कथेतर साहित्य में जीवनी विधा को महत्वपूर्ण स्थान है। जीवनी विधा में किसी महान नायक या महापुरुष के जीवनादर्श को आधार बनाया जाता है। हिंदी की कथा, उपन्यास, निबंध, नाटक आदि विधाओं में समाज को केंद्र में रखकर विवेचन किया जाता है। इससे व्यक्ति विशेष के चरित्र की ओर अनदेखी हो जाती है। इसकारण व्यक्ति विशेष के महत्व को समझते हुए और व्यक्ति विशेष के मन के विश्लेषण के लिए जीवनी

साहित्य लिखा जाने लगा। हिंदी जीवन साहित्य का उद्भव के बीज प्राचीन संस्कृत साहित्य में भी मिलते हैं लेकिन आधुनिक जीवनी साहित्य का विकास छायावादी युग से तेजी से हुआ है। हिंदी के जीवन साहित्य का अर्थ, स्वरूप, उसका उद्भव और विकास का विवेचन इसप्रकार है-

3.3.1.1 जीवनी का अर्थ एवं परिभाषा :

‘जीवनी’ यह शब्द जीवन से बना हुआ है। रचनाकार जब किसी व्यक्ति विशेष के जीवन को मुख्य विषय बनाकर रचना लिखता है तो वह ‘जीवनी’ कहलाती है। अंग्रेजी में इसे ‘बायोग्राफी’ कहा जाता है। लेकिन यह आत्मकथा से भिन्न है। जीवनी मूलतः एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति विशेष को आधार बनाकर लिखी जाती है। लेकिन आत्मकथा में स्वयं लेखक अपने जीवन की कहानी लिखता है। जीवनी में लेखक अपने नायक के जीवन के प्रमुख घटनाओं को विश्लेषणात्मक शैली में पाठकों के सामने रखता है। तथ्यों की वस्तुगतता और संवेदना के कारण जीवनी अपने आप में सुंदर साहित्य विधा के रूप में सामने आ जाती है। जीवनी में व्यक्ति विशेष के संपूर्ण जीवन की अपेक्षा उसके जीवन के महत्वपूर्ण तथ्यों और घटनाओं को आधार बनाया जाता है। जीवनी की विविध विद्वानों ने दी परिभाषाएँ इसप्रकार हैं-

✱ बाबू गुलाबराय :

“जीवनी घटनाओं का अंकन नहीं वरन् चित्रण है। वह साहित्य की विधा है और उसमें साहित्य और काव्य के सभी गुण हैं। वह एक मनुष्य के अंतर और बाहर स्वरूप का कलात्मक निरूपण है।”

✱ रामनाथ सुमन :

“जीवन की घटनाओं के विवरण का नाम जीवनी है।”

✱ डॉ. विश्वनाथ तिवारी :

“जीवनी-साहित्य का केंद्र हैं, व्यक्ति और उसके कार्यकलाप उस केंद्र की परिधि को खींचते हैं। मनुष्य उसका भाव लोक तथा बहिर्जगत् जीवनी-साहित्य का क्रीडा क्षेत्र है।”

✱ डॉ. शांति खन्ना :

“जीवनीपरक साहित्य में लेखक का विषय किसी श्रद्धेय व्यक्ति का जीवन चरित्र लिखना भी होता है, जिसको जीवनी कहा जाता है।”

3.3.1.2 जीवनी साहित्य की विशेषताएँ :

जीवनी के अर्थ, स्वरूप और उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर जीवनी निम्नांकित विशेषताएँ दिखाई देती हैं-

1. जीवनी किसी व्यक्ति विशेष के जीवन की सत्य घटनाओं पर आधारित होती है।
2. जीवनी का नायक महान व्यक्ति या महापुरुष होता है, जिससे रचनाकार प्रभावित हुआ है।

3. जीवनी में कल्पना को कोई स्थान नहीं, इसमें तथ्यपरकता और सच्ची घटनाएँ होती है।
4. जीवनी में व्यक्ति विशेष की घटनाओं को ऐतिहासिक क्रम में ही प्रस्तुत करना पड़ता है।
5. जीवनी में व्यक्ति विशेष की संपूर्ण जीवन की अपेक्षा अधिकांश जीवन की महत्वपूर्ण घटनाओं का समेटा जाता है।
6. जीवनीकार को तथ्यों की विश्वसनीय जानकारी होनी जरूरी है।
7. जीवनीकार को आवश्यक बातों की छोड़ना नहीं चाहिए और अनावश्यक बातों को लेना नहीं चाहिए।
8. जीवनी साहित्य के तत्त्व : चरित नायक का चयन, नायक के जीवन की विश्वसनीय जानकारी, कालानुक्रमिक घटनाएँ, उद्देश्य आदि ।

3.3.1.3 हिंदी जीवनी साहित्य का उद्भव :

हिंदी जीवनी साहित्य विधा आधुनिक की काल की देन है। भारतीय प्राचीन साहित्य का अवलोकन करने पर ज्ञात होता है कि प्राचीन भारतीय साहित्यकारों की दृष्टि आत्मपरक से ज्यादा समाजपरक थी। वह अपने या दूसरे के निजी जीवन के बारे में बहुत कम बोलते या फिर लिखते थे। धार्मिक एवं आध्यात्मिक संस्कारों के कारण व्यष्टि चेतना से अधिक उनकी रचनाओं में समष्टि तत्त्व अधिक था। इसकारण संस्कृत, पाली, प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं में जीवनी साहित्य का नितांत अभाव है। हिंदी की तुलना में अंग्रेजी भाषा के साहित्य पाँचवी शती से ही जीवनी साहित्य लिखा जा रहा था। व्यक्तिवादी विचार-दर्शन के कारण यूरोप में बहुत पहले से महान लोगों के जीवन पर जीवनी साहित्य उपलब्ध होता है।

* चारणकाव्य, भक्तमाल, संत परचई और वार्ता साहित्य :

हिंदी में जीवनी साहित्य का सूत्रपात 19 वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में हुआ लेकिन इसकी पार्श्वभूमि मध्यकाल के साहित्य में बन रही थी। आधुनिक हिंदी जीवनी साहित्य के निर्माण में इन तथ्यों ने नींव बनाने का काम किया है। आदिकाल में चारणकवियों द्वारा अपने आश्रयदाताओं की प्रशंसा में 'रासो ग्रंथों' (14 वीं शती) की रचना की गई है। ये रासो ग्रंथ वीर चरित्रों की पद्यबद्ध गेयकथा ही थी। भक्तिकाल में संत कवियों की भक्तिभावना से प्रभावित होकर जीवनी सदृश्य रचनाएँ लिखी गई। इसमें 'कबीर जी की परचई', 'नामदेव जी की परचई', 'रैदास जी की परचई', 'मलूकदास की परचई' आदि उल्लेखनीय है। संतों के जीवन चरित्र को परचई कहा जाता था। भक्तिकाल में वैष्णव संप्रदाय के साहित्य में भी जीवनी के बीज देखने मिलते हैं, जिसमें नाभादास कृत 'भक्तमाल' (1585 ई.) रचना निर्माण हुई। इसमें भक्तों के चरित्रलेखन का सूत्रपात किया गया है जो तत्कालीन समय में चरित्रलेखन को प्रेरित करती रही। 'भक्तमाल' में कवि नाभादास ने भक्तों के जीवन चरित्रों के उन पक्षों का विवेचन किया जिससे सामान्य जन में उनके प्रति आदर एवं सम्मान बढ़ जाए। 'भक्तमाल' में वाल्मीकि, भारद्वाज, वशिष्ठ, याज्ञवल्क्य, मुचुकुंद, पृथू, मदालसा, कौशल्या, शबरी आदि श्रेष्ठ भक्तों का वर्णन आया है।

इसमें करीब 200 भक्तमालों की रचना हुई है। लेकिन इसमें वैष्णव संप्रदाय के प्रचार-प्रसार पर जोर होने के कारण इन्हें जीवनी ग्रंथ नहीं कहा जा सकता। गोस्वामी हरिराय जी कृत 'अष्टखान की वार्ता' (17 वीं शती) में अष्टछाप के आठ भक्त कवि कुंभनदास, सूरदास, परमानंददास, कृष्णदास, गोविंदस्वामी, छीद स्वामी, चतुर्भुज दास और नंददास के जीवन की घटनाओं का वर्णन किया गया है। गोस्वामी गोकुलनाथ कृत 'चौरासी वैष्णवों की वार्ता' और 'दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता' (17 वीं शती) में वल्लभाचार्य के 84 और 252 शिष्यों के जीवन चरित्र और भक्ति का वर्णन है। लेकिन इसमें अनेक साधारण व्यक्तियों के चरित्रों का उल्लेख जो अधूरे से प्रतीत होते हैं। इन वैष्णव भक्तों भक्ति एवं उनके चमत्कारपूर्ण चरित्रों का इसमें वर्णन देखने मिलता है।

बेनी माधव दास कृत 'मूल गोसाईं चरित्र' (1630 ई.) भी एक चरित्रप्रधान रचना है। इसमें उन्होंने अपने गुरु गोस्वामी तुलसीदास के जीवनकी घटनाओं, उनकी जन्म की दंतकथा और साधनका की जानकारी दी है। लेकिन अधिकांश विद्वान इसे अप्रामाणिक रचना मानते हैं। बनारसीदास लिखित 'अर्धकथानक' (1641 ई.) आत्मचरित्र में भी जीवनीके अंश पाए जाते हैं जो हिंदी साहित्य की पहली आत्मकथा मानी जाती है। उन्होंने 55 वर्ष की आयु में अपने जीवन के मध्यकाल मानकर जीवन की आधी कहानी लिखी। इसमें मुगलकालीन (अकबर-शहाजहाँ) सामाजिक, आर्थिक और व्यापारिक जीवन के अनुभवों को लिपिबद्ध किया है। आचार्य केशदास ने 'वीर सिंह चरित' (1906 ई.), 'जहांगीर -जस चंद्रिका (1621 ई.), 'चंद्रशेखर हम्मीर हठ' (1845 ई.) चरित्रप्रधान काव्य रचनाएँ हैं जिसमें आश्रयदाता राजों के जीवनवृत्त लिखे हैं।

संक्षेप में कह सकते हैं कि आदिकाल में रासो ग्रंथों (चारणकाव्य), संत परचई और भक्तिकाल में 'भक्तमाल' के तर्ज पर अनेक चरित्र ग्रंथों का निर्माण हुआ था। मूलतः इन रचनाओं में व्यक्ति विशेष से अधिक भक्ति का महिमामंडन अधिक था। फिर भी जीवनी साहित्य के उद्भव या पार्श्वभूमि के रूप में ये रचनाएँ महत्वपूर्ण मानी जाती हैं।

3.3.1.4 हिंदी जीवनी साहित्य का विकास :

हिंदी जीवनी साहित्य का वास्तविक विकास 19 वीं शताब्दी के उत्तरार्ध कालखंड से शुरू हुआ था। भारतेन्दु हरिश्चंद्र जी ने हिंदी गद्य लेखन का सूत्रपात किया। 'कविवचन सुधा' इस साहित्यिक पत्रिका के माध्यम से उन्होंने परवर्ती लेखकों गद्य लेखन के लिए प्रेरणा दी। आदिकाल, भक्तिकाल में भले ही जीवनीसदृश्य रचनाएँ लिखी गईं लेकिन इनमें जीवन साहित्य के लक्षण और कलात्मक तत्वों का आभाव था। 'भक्तमाल', 'वार्ता साहित्य' सरीके रचनाओं में केवल भक्त एवं उसकी भक्ति का प्रचार करने का उद्देश्य मात्र था। राजनीतिक एवं सामाजिक स्थितियों के बंधनों के कारण भी जीवनी साहित्य लेखन को सीमाएँ थीं। लेकिन भारतेन्दु काल से ही आधुनिक जीवन साहित्य का बीजारोपण हुआ और छायावादी काल में उसका पूर्ण विकास हुआ।

* भारतेन्दु युग (1851 ई. - 1900 ई.) :

भारतेन्दु युग में गद्य की विविध विधाओं का आविष्कार हुआ, उसमें जीवन साहित्य भी था। जीवनी के उद्भव के समय जो रूप था वह भारतेन्दु युग में थोड़ा सुगठित हो गया। राष्ट्रीयता और स्वाधीनता की चेतना में

जीवनी लेखन को प्रेरणा मिली। इस कालखंड में समाजसुधारक संत, महापुरुष, विदेशी शासक, देशभक्त, क्रांतिकारी और साहित्यकारों पर प्रमुख रूप से जीवनी लिखी जाने लगी। भारतेन्दु कृत 'चरितावली' (1881 ई.) को हिंदी की पहली जीवनी माना जाता है। इसमें उन्होंने आजादी के पूर्व की सैकड़ों जीवनियों की सूचनात्मक जानकारी दी है। इसमें कालिदास, आदि शंकराचार्य, रामानुज स्वामी, महाकवि जयदेव, वल्लभाचार्य आदि उल्लेखनीय चरित्र हैं। उसके बाद भारतेन्दु कृत 'पंच पवित्रात्मा' (1884 ई.) महत्वपूर्ण है जिसमें मुस्लिम धर्मगुरुओं मुहम्मद साहब, मुहम्मद अली, बीवी फातिमा, इमाम हसन, इमाम हुसैन इन पाँच महात्माओं के जीवन का संक्षिप्त परिचय दिया गया है। भारतेन्दु युग में रमाशंकर व्यास, देवीप्रसाद मुंसिफ, कार्तिक प्रसाद खत्री, काशीनाथ खत्री, राधाकृष्णदास, बालमुकुंद गुप्त आदि महत्वपूर्ण जीवनीकार थे।

महाराज रघुराजसिंह जू देव लिखित 'रामरसिकावली' (1823 ई.) यह रचना नाभादास के भक्तमाल के अनुकरण पर लिखी गई है। इसमें भक्तों और संत कवियों जीवन को आधार मानकर उनके यश का गायन किया गया है। यह ग्रंथ 'सत्ययुग', 'त्रेता', 'द्वापर' और 'कलियुग' इन चार खंडों में विभाजित है। युगलदास ने 'बहोल वंशागमनिर्देश' (1863 ई.), भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने 'उत्तरार्ध भक्तमाल' (1877 ई.) और राधाचरण गोस्वामी जी ने 'नवभक्तमाल' (1886 ई.) नामक ग्रंथों की रचना की जो भक्तमाल की शैली पर आधारित है। इन रचनाओं में तत्कालीन समय के भक्तों एवं महात्माओं के जीवन चरित्र को आधार बनाया गया है। इसी कालखंड में कार्तिकप्रसाद खत्री द्वारा संत मीराबाई के जीवन एवं साहित्यिक चरित्र पर आधारित 'मीराबाई का जीवन चरित्र' (1883 ई.) जीवनी लिखकर वे हिंदी के पहले साहित्यिक जीवनी लेखक बने। साथ ही उन्होंने महाराजा विक्रामादित्य का जीवन चरित्र, (1883 ई.), महाराजा छत्रपति शिवाजी का जीवन चरित्र (1894 ई.), अहिल्याबाई का जीवन चरित्र (1894 ई.), कविवर बिहारीलाल (1895 ई.) आदि इतिहास प्रसिद्ध महापुरुषों के जीवन वृत्तांत पर जीवनियाँ लिखी।

रमाशंकर व्यास ने इटली का प्रसिद्ध योद्धा नेपोलियन के जीवन को आधार बनाकर 'नेपोलियन बोनापार्ट' (1883 ई.) जीवनी लिखी। देवीप्रसाद मुंसिफ ने 'महाराजा मानसिंह कछवाहावाले अमीर का जीवनचरित' (1889 ई.), राजा मालदेव का जीवनचरित (1893 ई.), श्री. रणवीर महाराजा प्रतापसिंह (1893 ई.), पूरनमल राजा भोम रतनसिंह हिंदुपति महाराणा उदयसिंह जी की जीवनियाँ (1893 ई.) महत्वपूर्ण हैं। राधाकृष्ण जी के 'कविवर बिहारीलाल' (1895 ई.) और 'श्री नागरीदास का जीवन चरित्र' ये दो जीवनियाँ प्राप्त होती हैं। बालमुकुंद गुप्त ने 'हरिदासी गुरलानी' (1896 ई.), गोकुलनाथ शर्मा ने 'श्री देवी सहायचरित्र' (1897 ई.) जीवनी लिखी। बलभद्र मिश्र ने 'स्वामी दयानंद सरस्वती' नाम से जीवनवृत्तांत लिखा।

इस कालखंड में इसाई मिशनरियों द्वारा भी धर्म प्रचार हेतु कुछ जीवन साहित्य लिखा गया। इसमें 'महाराणा विक्टोरिया का वृत्तांत' (1896 ई.) 'सिकंदर महान का वृत्तांत' (1896 ई.) आदि उल्लेखनीय जीवनियाँ हैं। तो कुछ बंगाली भाषा से हिंदी में अनुदित जीवनियाँ भी प्राप्त होती हैं, जिसमें जंगदबाप्रसाद ने 'स्वामी विरजानंद सरस्वती का जीवनचरित्र' (1899 ई.), मोहनी चॅटजी ने 'परमहंस शिवनारायण स्वामी का जीवन चरित्र' (1895 ई.), गोपाल देवगण शर्मा ने 'क्रिस्टोफर कोलंबस' आदि जीवनियाँ उल्लेखनीय हैं।

संक्षेप में कह सकते हैं कि भारतेंदु युग हिंदी जीवन साहित्य की दृष्टि से बीजारोपन का कालखंड माना जाता है। इसमें जीवनी साहित्य का संरचना के आधार पर विकास नहीं हो सका। ये जीवनियाँ अपने प्रारंभिक स्वरूप में थी जिसमें केवल संतों, महात्माओं, महापुरुषों के जीवन वृत्तांत का वर्णन मात्र किया गया था। इनके जीवन की बहुत सी घटनाओं की स्थूल और कहीं जगहों पर आधी-अधूरी जानकारी मिलती है। अनुदित जीवनों के वृत्तांत भी बहुत अधूरे प्रतीत होते हैं। भाषा एवं शैली के स्तर पर भी जीवनी साहित्य का यह शैशव काल ही रहा है।

* द्विवेदी युग (1900 ई.- 1918 ई.) :

भारतेंदु युग में जीवनी साहित्य का बीजारोपन हुआ और द्विवेदी युग में तेज गति से विकास हुआ। आ. महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनकी 'सरस्वती' (1903 ई.) इस पत्रिका ने जीवनी साहित्य के विकास में अपना योगदान दिया। इस कालखंड में राजा-महाराजा, बादशहा, राजनेता, क्रांतिकारी, समाजसुधारक, राष्ट्रसंत आदि के जीवन को लेकर जीवनियाँ लिखी जाने लगी। आ. महावीर प्रसाद द्विवेदी जी ने राष्ट्रीयता की भावना के प्रचार-प्रसार हेतु अनेक इतिहास प्रसिद्ध संतों, महापुरुषों के जीवन पर सरस्वती पत्रिका में लेख लिखे। इन्हीं लेखों को कालांतर में जीवनी ग्रंथ के रूप में प्रकाशित किया गया। इस संदर्भ में 'प्राचीन पंडित और कवि', 'सुकवि संकीर्तन' 'चरित चर्चा' (1904 ई.), 'विक्रमांकदेव चरित चर्चा' (1907 ई.), 'वेकटेश नारायण तिवारी', 'कुमारिल भट्ट' आदि उल्लेखनीय हैं। इसमें उन्होंने आठ प्राचीन और नवीन साहित्यकारों के जीवन संबंधी निबंध लिखे हैं।

बीसवीं सदी में जीवनी साहित्य लेखन का विकास हुआ। द्विवेदी युग में प्रमुख रूप से बाबू गोपालराम गहमरी की 'दयानंद दिग्विजय' यह महर्षि दयानंद सरस्वती के जीवन और उनके सामाजिक सुधारणा कार्यों का विस्तार से चित्रण किया गया है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इस काल में 'चरित्रावली' शीर्षक से जीवनी लिखी, जिसमें स्वामी दयानंद सरस्वती, नेपोलियन बोनापार्ट, सम्राट अकबर आदि इतिहास प्रसिद्ध व्यक्तियों के जीवन का वर्णन है। इस काल में श्याम सुंदर दास लिखित 'लाला लाजपतराय का जीवनचरित', 'भारतेंदु हरिश्चंद्र का जीवन चरित विशेष उल्लेखनीय है। आ. रामचंद्र शुक्ल ने 'बाबू राधाकृष्णदास', 'गोस्वामी तुलसीदास' आदि के जीवन और साहित्य पर जीवनी लिखी। साथ ही लक्ष्मीधर वाजपेयी की 'छत्रपति शिवाजी', राधामोहन गोकुल की 'नेपोलियन बोनापार्ट', जयशंकर प्रसाद की 'सम्राट चंद्रगुप्त मौर्य', गंगाप्रसाद गुप्त के 'दादाभाई नौरोजी', किशोरीलाल गोस्वामी की 'नन्हे लाल गोस्वामी', देवीप्रसाद की 'बाबरनामा', दयानंद गोयल की 'कांग्रेस के पिता ए. ओ. ह्यूम, पूर्णसिंह शर्मा की 'भीमसेन शर्मा', राधाकृष्ण की 'नवरत्न', ओंकारनाथ वाजपेयी की 'टाटा', अक्षयकुमार मैत्रेय की 'सिराजुद्दौला', लालाभगवान दीन की 'श्रीमती ऐनी बेज़ंट', द्वारकाप्रसाद शर्मा का 'सॉक्रटीज महात्मा' आदि जीवनियाँ उल्लेखनीय हैं। संक्षेप में कह सकते हैं कि द्विवेदी युग में आ. महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनकी सरस्वती पत्रिका के प्रेरणा-प्रोत्साहन के कारण जीवनी लेखन का समुचित विकास हुआ। इसमें प्रमुख रूप से देशी-विदेशी उल्लेखनीय शासकों, धर्मगुरुओं, पराक्रमी योद्धा, पुराणों के महान महिला चरित्र, संत-महात्माओं, देशभक्त, क्रांतिकारक आदि के जीवन को विषय बनाया गया।

* छायावादी युग (1918 ई. से 1936 ई. तक) :

हिंदी साहित्य के छायावादी युग में साहित्य की प्रवृत्तियों में काफी बदलाव आ चुके थे। साहित्य में स्थूल की जगह सूक्ष्म का विवेचन होने लगा था। खासकर कविताओं में रहस्यवादी एवं प्रकृति चित्रण का प्रभाव बढ़ा था। लेकिन इस कालखंड में भी जीवन चरित्र को आधार बनाकर जीवनियाँ लिखने का सिलसिला निरंतर शुरू रहा। इस कालखंड की कुछ उल्लेखनीय जीवनियाँ इस प्रकार हैं- रूपनारायण पांडेय की 'बंकिमचंद्र चटर्जी की जीवनी', महावीर प्रसाद की 'आदर्श सम्राट' चंद्रशेखर पाठक कृत 'राजा प्रतापसिंह', 'सिंकदर बादशाह', संपूर्णानंद की 'महादजी सिंधिया', 'सम्राट हर्षवर्धन', गोपालप्रसाद शर्मा की 'श्रीहित चरित्र', श्यामसुंदर दास की 'कोविंद रत्नमाला भाग- 2', विश्वेश्वरनाथ मेहर का 'अब्राहम लिंकन', रामदयाल तिवारी की 'गांधी मीमांसा' बालकृष्ण वाजपेयी की 'एडम स्मिथ', राधामोहन गोकुल की 'जोसेफ गॅरीबाल्डी', कृष्णमुरारी की 'भारत की विदुषी नारियाँ', ईश्वरीप्रसाद शर्मा की 'दादाभाई नौरोजी', बनारसीदास चतुर्वेदी की 'महादेव गोविंद रानडे', रामवृक्ष शर्मा की 'शिवाजी' उमादत्त शर्मा की 'शंकराचार्य और शिवाजी', रामनरेश त्रिपाठी की 'सेठ जमनालाल बजाज', बनारसीदास चतुर्वेदी की 'कविरत्न सत्यनारायण की जीवन', चतुर्भुज सहाय की 'भक्तवर तुकाराम का जीवन चरित्र', उदयभानु शर्मा का 'देवी अहिल्याबाई' सुरेंद्र शर्मा की 'सरदार वल्लभाई पटेल', ब्रजरत्न दास की 'बादशाहा हुमायूँ', सत्यदेव विद्यालंकार की 'स्वामी श्रद्धानंद की जीवन', सत्यभक्त की 'कार्ल मार्क्स', रमाशंकर सिंह की 'संसार के प्रसिद्ध पुरुष' (1933 ई.), गदाधर प्रसाद की 'देशपूज्य श्री राजेंद्रप्रसाद', सदानंद भारती कृत 'महात्मा लेनिन', लक्ष्मीतीर्थ चतुर्वेदी की 'महाराजा पृथ्वीराज', स्वामी विवेकानंद की 'श्रीरामकृष्ण परमहंस' आदि उल्लेखनीय जीवनियाँ प्राप्त होती हैं।

संक्षेप में कह सकते हैं कि छायावादी युग में हिंदी जीवनी साहित्य का पर्याप्त विकास हुआ था। इस कालखंड में धर्म, राजनीति, समाज सेवक आदि क्षेत्र के दिग्गज महापुरुषों के जीवन को आधार बनाकर जीवनियाँ लिखी गई हैं। साथ ही हिंदू धर्म की विख्यात महिला एवं विदुषियों पर भी इस कालखंड में जीवनियाँ प्राप्त होती हैं। समाज को प्रेरणा देकर उनमें राष्ट्रीय चेतना निर्माण करना ही इन जीवनों का प्रदान उद्देश्य था।

* प्रगतिवादी युग (1937 ई. से 1946 ई. तक) :

हिंदी साहित्य में प्रगतिवादी युग राजनीतिक विचारधारा का युग माना जाता है। इस कालखंड में दुनियाभर की विभिन्न राजकीय विचारधाराओं ने साहित्य को प्रभावित किया था। इसमें कार्ल मार्क्स की विचारधारा 'मार्क्सवाद' का बहुत बड़ा प्रभाव रहा। यह विचारधारा हिंदी साहित्य में 'प्रगतिवाद' के रूप में रूढ़ हुई। इसकारण इस युग में जीवनीकारों ने भी मुख्यरूप से देश तथा विदेश के राष्ट्रनिर्माता एवं राजनेताओं के जीवन को अपनी जीवनों का विषय बनाया। इस कालखंड की कुछ उल्लेखनीय जीवनियाँ इसप्रकार हैं-

शिवनारायण टंडन लिखित 'पंडित जवाहरलाल नेहरू', हरिरामचंद्र दिवेकर के 'संत तुकाराम', गोपीनाथ दीक्षित की 'जवाहरलाल नेहरू', रामरत्न हल्दर की 'राठौर दुर्गादास', चंद्रशेखर की 'राष्ट्रनिर्माता मुसोलिनी' (सभी 1937 ई.), जगपति चतुर्वेदी की 'लाला लजपतराय', गणेश पांडेय की 'राजाराम मोहन राय', देवव्रत

शास्त्री की 'देशरत्न बाबू राजेंद्रप्रसाद', बिजेंद्र शंकर की 'सुभाष बोस', भैरवनाथ गुप्त की 'चंद्रशेखर आजाद', 'गुरुनानक', द्वारिकाप्रसाद शर्मा की 'रबर्ट क्लाइव' (सभी 1938 ई.), लक्ष्मीप्रसाद भारद्वाज की 'महात्मा गांधी', रामनाथ सुमन की 'मोतीलाल नेहरू', लाला लजपतराय की 'छत्रपति शिवाजी', ए.जी. गार्डनर की 'प्रिंस क्रोपटकीने' (सभी 1939 ई.) घनश्यामदास बिडला की 'बाबू', देवीप्रसाद कायस्थ की 'बाबरनामा', बनारसीदास चतुर्वेदी की 'इटली का मानाशाह मुसोलिनी', लक्ष्मणप्रसाद भारद्वाज की 'स्टालिन', लल्लूप्रसाद पांडेय की 'रामकृष्ण चरितामृत' (सभी 1940 ई.), भवानी दया की 'स्वामी शंकरानंद सुदर्शन' (1942 ई.), पं. परमानंद जै की 'आदर्श महिला पं. चंदाबाई', (1943 ई.), शिवरानी देवी की 'प्रेमचंद घर में' (1944 ई.), खुशहालचंद आनंद की 'महात्मा हंसराज' (1945 ई.), रत्नलाल बंसल की 'मृत्युंजय सरदार भगतसिंह', रामवृक्ष बेनीपुरी की 'रोजा लुक्मेम्बर्ग' (दोनों भी सन 1946 ई.) आदि महत्वपूर्ण हैं। संक्षेप में कह सकते हैं कि प्रगतिवादी युग में अधिकांश राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम में शामिल राजनेताओं, देशभक्तों, क्रांतिकारियों पर जीवनियाँ लिखी गई। साथ ही विदेश में राजनीतिक क्रांति करने वाले इतिहास प्रसिद्ध महापुरुषों पर भी जीवनी लेखन हुआ।

* स्वातंत्र्योत्तर युग (सन् 1947 ई. से 1960 ई. तक) :

भारत को 15 अगस्त, सन् 1947 ई. को आजादी मिली और साहित्य के साथ सभी क्षेत्रों में नव चैतन्य निर्माण हुआ। इस कालखंड में जीवनी साहित्य में व्यापकता आई। इसमें केवल स्तुति करने की प्रवृत्ति के स्थान पर वैज्ञानिकता, तटस्थता और मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से भी महापुरुषों के जीवन को जाँचा परखा जाने लगा। जीवनी साहित्य में काफी बदलाव आए। साहित्यकार और राजनेताओं के जीवन पर बहुत चर्चित जीवनियाँ इस काल में लिखी गई। इस कालखंड में कुछ विदेशी भाषाओं की जीवनियों का हिंदी में अनुवाद करने का प्रचलन भी बढ़ चुका था। इस कालखंड की कुछ अन्य महत्वपूर्ण जीवनियों के नाम इसप्रकार हैं—

पं. दीनदयाल उपाध्याय लिखित 'जगदब गुरू शंकराचार्य' (1947 ई.), रामवृक्ष बेनीपुरी लिखित 'कार्लमार्क्स एवं जयप्रकाश नारायण', भीमसेन विद्यालंकार की 'शिवाजी', चंद्रवती त्रिपाठी की 'धर्मराज युधिष्ठिर' (सभी 1951 ई.), राहुल सांकृत्यायन की 'स्टालिन' (1953 ई.), रंगनाथ रामचंद्र की 'श्री अरविंद की जीवनी साधना और उपदेश महायोगी' (1955 ई.), इलाचंद्र जोशी लिखित 'विश्वकवि रवींद्रनाथ ठाकुर', शरच्चंद्र चक्रवर्ति की 'साधुनाग' (सभी 1956 ई.), राहुल सांकृत्यायन की 'अकबर' (1957 ई.), मगनलाल जैन ने सन 1958 ई. में 'जॉर्ज वाशिंगटन' इस अंग्रेजी जीवनी का हिंदी में अनुवाद किया। श्यामराव भटनागर की 'अब्राहम लिंकन', निगरमानंद परमहंस की 'गुजरात के महाराज' (1959 ई. अनूदित जीवनियाँ) हैं। साथ ही इसी वर्ष 'पांडेय स्मृतिग्रं', 'मैथिलीशरण गुप्त', 'सुमित्रानंदन पंत स्मृति चित्र', 'शिवपूजन रचनावली' आदि अभिनंदन ग्रंथों में उल्लेखनीय साहित्यकारों के जीवनवृत्तांत लिखे गए।

* साठोत्तरी युग (सन् 1960 ई. से आगे) :

भारतीय साहित्य जगत में साठोत्तरी कालखंड मोहभंग का काल माना जाता है। महापुरुषों के आदर्श

जीवन की स्तुति या प्रशंसा से अधिक जीवन के यथार्थता को सामने लाने की कोशिश जीवनियों में होने लगी। इस कालखंड में महान साहित्यकारों के जीवन पर लिखी जीवनियों में उनके जीवन संघर्ष की वास्तविकता को लिखा जाने लगा। जीवनी तथा आत्मकथा साहित्य में मोहभंग की स्थितियों को रचनाकारों ने स्पष्ट किया। सामान्य मनुष्य के जीवन संघर्ष को जीवनियों में महत्त्व आया। इस कालखंड में अमृत राय ने सन् 1962 ई. को अपने पिताजी एवं हिंदी के उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचंद जी के जीवन पर 'कलम का सिपाही' यह जीवनी लिखी। विष्णु प्रभाकर ने 1968 ई. में बंगाली उपन्यासकार शरतचंद्र चटोपाध्याय पर लिखी 'आवारा मसीहा', आदि बहुचर्चित जीवनियाँ लिखी गईं। महत्त्वपूर्ण है। यह सभी साहित्यकार और राजनेताओं पर लिखी जीवनियाँ थीं। डॉ. रामविलास शर्मा ने हिंदी के महाकवि निराला जी के जीवन और साहित्यिक योगदान पर सन 1969 ई में 'निराला की साहित्य साधना' नाम से जीवनी लिखी जिसे साहित्य अकादमी का पुरस्कार मिला। डॉ. चंद्र शेखर ने 'राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह' यह जीवनी लिखी। इसी कालखंड में, मंमथनाथ गुप्त की 'क्रांतिदूत भगत सिंह और उनका युग' (1962 ई.), विश्वनाथ वैशंपायन की 'शहीद चंद्रशेखर' (1965 ई.), प्रो. वीरेंद्र सिंधु की 'युग द्रष्टा भगत सिंह और उनके मृत्युंजय पुरखे' (1968 ई.), धर्मवीर कृत 'लाला हर दयाल' (1970 ई.) आदि क्रांतिकारियों के जीवन पर आधारित उल्लेखनीय जीवनियाँ मिलती हैं। विष्णुचंद्र शर्मा ने सन 1971 ई. में गजानन माधव मुक्तिबोध की जीवन एवं साहित्यिक संघर्ष को आधार बनाकर 'मुक्तिबोध की आत्मकथा' जीवनी का लेखन किया। इसी वर्ष ओंकार शरद ने विख्यात समाजसेवी डॉ. राम मनोहर लोहिया और भारत की पहली महिला प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी के जीवन को आधार बनाकर क्रमशः 'लोहिया' और 'धरती की बेटी आकाश हो गई' यह जीवनियाँ लिखी। साथ ही शोभाकांत की 'बाबूजी' (नागार्जुन पर- 1991 ई.), सुलोचना रांगेय की 'रांगेय राघव एक अंतरंग परिचय' (1997 ई.), मदन मोहन ठाकुर की 'राजेंद्र यादव' (1999 ई.), कुमुद नागर की 'वटवृक्ष की छाया में' (अमृत लाल नागर पर-2004 ई.), गायत्री कमलेश्वर की 'कमलेश्वर मेरे हमसफर' (2005 ई.) उल्लेखनीय जीवनियाँ प्राप्त होती हैं।

संक्षेप में कह सकते हैं कि भारतेंदु युग से शुरू हुआ हिंदी जीवनी साहित्य का सफर विभिन्न पड़ावों को पार करता हुआ निरंतर विकसित हो रहा है। आत्मकेंद्री विचारों के स्थान पर हिंदी साहित्य में समाज केंद्री विचारों का प्राबल्य रहने के कारण जीवनी साहित्य का अंग्रेजी की तुलना में देरी से हुआ। चारण काव्य, संत परचई, भक्तमाल के रूप में हिंदी जीवनी साहित्य का उद्भव जरूर हुआ लेकिन इसमें प्रामाणिकता का अभाव और भक्ति एवं संप्रदाय विशेष को ज्यादा महत्त्व है। भारतेंदु युग में जीवनी लेखन का बीजारोपण हुआ जो द्विवेदी युग में विकसित हुआ।

3.3.2 हिंदी संस्मरण साहित्य : उद्भव और विकास :

हिंदी साहित्य की कथेतर विधाओं में 'संस्मरण साहित्य' का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। 'संस्मरण' विधा में मूलतः रचनाकार की स्मृति पर आधारित घटनाओं का वर्णन होता है। संस्मरण में स्मृति को महत्त्वपूर्ण स्थान होता है क्योंकि अतीत की यादों को रचनाकार साहित्य शैली में पिरोते हुए उसे वर्तमान से जोड़ता है। इसकारण संस्मरण विधा अतीत और वर्तमान की बीच पुल का काम करती है। संस्मरण में व्यक्ति विशेष के जीवन की

किसी महत्वपूर्ण घटनाओं पर प्रकाश डाला जाता है। हिंदी साहित्य में द्विवेदी युग में इसका जन्म माना जाता है और छायावादी युग में इसका पर्याप्त विकास हुआ था। हिंदी के 'संस्मरण' विधा के उद्भव एवं विकास को देखने से पहले 'संस्मरण' का अर्थ, तत्त्व, प्रकार, विशेषताओं की संक्षिप्त जानकारी लेते हैं-

3.3.2.1 संस्मरण का अर्थ :

'संस्मरण' का अर्थ है, सम्यक्ब या संपूर्ण रूप को याद करना। किसी व्यक्ति, घटना या दृश्य को संपूर्ण तरीके से याद करके साहित्य में उसे सहजता और सरलता से उतारने की प्रक्रिया ही 'संस्मरण' है। इसमें यादों, स्मृति पर आधारित अनुभूतियों का महत्व होता है। अंग्रेजी में इसके लिए 'चशोळी' या 'Reminiscence' यह शब्द है। 'Reminiscence' यह शब्द पुरानी यादों के लिए दिया जाता है। लेकिन संस्मरण विधा के संदर्भ में 'चशोळी' शब्द सबसे सटीक है। संस्मरणकार को अंग्रेजी में 'Memoirist' कहा जाता है। जीवनी या आत्मकथा में जीवन के अधिकांश घटनाओं का ब्यौरा या वृत्तांत होता है। लेकिन संस्मरण में जीवन की किसी महत्वपूर्ण घटना, समय का कलात्मक वृत्तांत होता है। 'संस्मरण' की विशेषता एवं स्वरूप को समझने के लिए कुछ विद्वानों की परिभाषाओं को देखना जरूरी है।

3.3.2.2 संस्मरण की परिभाषाएँ :

'संस्मरण' की विभिन्न भारतीय तथा अंग्रेजी विद्वानों की परिभाषाएँ इसप्रकार हैं-

* महादेवी वर्मा :

“शैशव की स्मृतियों में एक विचित्रता है जब हमारी भाव प्रवणता गंभीर और प्रशांत होती है, तब अतीत की रेखाएँ कहर में स्पष्ट होती हुई वस्तुओं के समान अनायास ही स्पष्ट से स्पष्टतर होने लगती हैं। जिस समय हम तर्क से उनकी उपयोगिता सिद्ध करके हम स्मरण करने बैठते हैं उस समय पत्थर फेंकने से हटकर मिल जानेवाली, पानी की काई के समान स्मृति उन्हें फिर-फिर के लाती है।”

* डॉ. नगेंद्र :

“व्यक्तिगत अनुभव से रचा गया इतिवृत्त अथवा वर्णन ही संस्मरण है।”

* डॉ. गोविंद त्रिगुणायत :

“भावुक कलाकार जब अतीत की अनंत स्मृतियों में से कुछ स्मरणीय अनुभूतियों को अपनी कोमल कल्पना से अनुरंजित विशिष्ट बनाकर रोचक यथार्थ के रूप में व्यक्त कर देता है, तब वह संस्मरण कहलाता है।”

* डॉ. जगदीश गुप्त :

“जो तरंगाघात मन अपना अमिट प्रभाव छोड़ जाता है, वही संस्मरण बन जाता है।”

* बाबू गुलाबराय :

“संस्मरण प्रायः घटनात्मक होता है किंतु वह घटनाएँ सत्य होती हैं और साथ ही चरित्र की परिचायक हैं। उनमें थोड़ा चटपटपन का आकर्षण रहता है। संस्मरण चरित्र की किसी पहलू की झाँकी देता है।”

*** पाश्चात्य विद्वान शिल्पन :**

“व्यक्तियों, वस्तुओं अन्य क्रिया-कलापादि का चित्रण को संस्मरण कहा है।”

*** ऑक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी :**

“इतिहास से भिन्न एवं लेखक द्वारा अनुभूत हकीकत तथा लेखक के जीवन में आए व्यक्तियों के साथ घटित घटनाओं के वर्णन को संस्मरण कहा गया है।”

3.3.2.3 संस्मरण की विशेषताएँ :

भारतीय विद्वाना एवं पाश्चात्य विद्वानों ने दी ‘संस्मरण’ की परिभाषा के आधार पर संस्मरण की विशेषता स्पष्ट हो जाती है। उनका संक्षिप्त विवेचन इसप्रकार है-

- * ‘संस्मरण’ स्मृति पर आधारित वर्णन-प्रधान कथेतर गद्यविधा है।
- * संस्मरण में अतीत की यादों पर सजीव पात्रों के अंतर-बाह्य रूप का वर्णन होता है।
- * संस्मरण में स्मृतियों की यथार्थता का स्थान महत्वपूर्ण है और कल्पना का गौण स्थान है।
- * रोचकता संस्मरण की सबसे बड़ी विशेषता होती है जो व्यक्ति के जीवन के रोचक क्षणों का वर्णन करती है।
- * संस्मरण में आत्मीयता, संवेदनशीलता और भावात्मकता के साथ अतीत की रोचक घटनाओं का अंकन किया जाता है।
- * संस्मरण में स्मृति, अनुभूति, तटस्थता, यथार्थता, आत्मीयता, वैयक्तिकता, प्रामाणिकता, रोचकता, कथात्मकता, सामाजिकता आदि महत्वपूर्ण तत्त्व निहित होते हैं।

संक्षेप में कह सकते हैं कि ‘संस्मरण’ रचनाकार के स्मृति पर आधारित किसी व्यक्ति के जीवन के महत्वपूर्ण पलों, घटनाओं का कलात्मक वर्णन होता है। यह वर्णन रोचक और यथार्थपर होता है जिसमें भावुकता भी महत्वपूर्ण होती है।

3.3.2.4 हिंदी संस्मरण साहित्य : उद्भव और विकास :

हिंदी साहित्य के कथेतर गद्यविधाओं में ‘संस्मरण’ साहित्य को भी महत्वपूर्ण स्थान रहा है। अन्य विधाओं की तरह ही संस्मरण साहित्य का उद्भव और विकास विभिन्न पड़ावों से गुजरते हुए विकसित हुआ है। हिंदी संस्मरण साहित्य की इस विकास यात्रा को निम्नांकित मुद्दों के आधार पर समझने की कोशिश करते हैं-

3.3.2.4.1 हिंदी संस्मरण का उद्भव की पृष्ठभूमि :

हिंदी संस्मरण की शुरुआत कब हुई? हिंदी का पहला संस्मरण कौनसा है? इन प्रश्नों पर विद्वानों में काफी मतभेद देखने मिलते हैं। साहित्य की किसी विधा की निश्चित शुरुआत कब और कहाँ से हुई होगी इसका पता लगाना बहुत ही कठिन कार्य होता है। क्योंकि साहित्य का इतिहास बहुत प्राचीन और बड़ा जटिल होता है। संस्मरण की दृष्टि से देखे तो प्राचीन काल से हम किसी यादों और महत्वपूर्ण घटनाओं को पीढ़ी-दर-पीढ़ी एक-दूसरे को सुनाते आते ही हैं। लेकिन ये याद बस श्रवण पर आधारित होती है और पीढ़ी-दर-पीढ़ी इसमें बदलाव होते जाते हैं। वैश्विक स्तर पर अगर देखे तो बहुत बड़े-बड़े यात्री जब विश्वभ्रमण करते थे तब बहुत-सा यात्रा वृत्तांत वे स्मृति के आधार पर ही लिखते थे। जैसे-मेगास्थनीज, हुवेनसांग, फाह्यान, मार्को पोलो जैसे साहसी चीन-यूरोप के यात्रियों के यात्रा विवरण स्मृति पर आधारित ही लिखे थे। रोम के राजा सेल्युकस (ईसा पूर्व ३ शती)के राजदूत बनकर आए मेगास्थनीज ने चंद्रगुप्त मौर्य के सान्निध्य पाटलीपुत्र में पाँच वर्षों तक रहकर भारत संबंधी संस्मरण लिखे थे। लेकिन यह आज प्राप्त नहीं होता लेकिन रोमन भाषा में लिखे उसके ग्रंथ 'टा इंडिका' में इसके कुछ अंश जरूर प्राप्त होते हैं। इसका जब अनुवाद किया गया तो मौर्यकाल पूर्व भारतीय इतिहास से जुड़ी कुछ ऐतिहासिक यादें सामने आईं। उसके बाद चौथी शती में चंद्रगुप्त विक्रमादित्य के समय में कहियान और सातवी शती में राजा हर्षवर्धन के समय में हवेनसांग इन चीन यात्रियों के वृत्तांत प्राप्त होते हैं। इन यात्रियों के वृत्तांत को जब अनुवादित किया गया तो भारत के व्यापार, संस्कृति और इतिहास के संबंधी यादों पर आधारित मार्मिक विवरण प्राप्त होते हैं, जिन्हें संस्मरण के बीज के रूप देखना होगा।

इसके बाद मध्यकाल में मुगलशासन काल में दरबारी कवियों और उनके परिवारवालों ने बहुत सी आत्मपरक घटनाओं पर जीवनियाँ लिखी। लेकिन इसमें भी स्मृति पर आधारित वृत्तांत लिखे हैं, जो संस्मरण के बहुत करीब थी। तर्की भाषा में लिखा 'तुजुक बाबरी', 'वाकेहयात हुमायूँनी' और 'तुजुक जहाँगिरी' इसके उत्कृष्ट उदाहरण हैं। हुमायूँ की सौतेली बहन गुलबदन ने 'अकबर का वृत्त' (1457) लिखा था। 'तुलुक जहाँगिरी' रचना का साहित्यिक महत्व इतना है कि उसकी तुलना राहुल सांकृत्यायन के 'मेरी जीवन यात्रा' से की जाती है। अकबर के सेवक मुल्ला बदाऊनी ने 'मुनरवाब उत् तखरीख' नाम से अकबर बादशाह के गुणों के साथ अवगुणों का वर्णन किया है।

संस्कृत साहित्य में व्यष्टि चेतना का प्रभाव कम होने के कारण संस्मरण विधा जैसी रचनाएँ बहुत कम मिलती हैं। हिंदू सनातन धर्म की समष्टि की भावना का समाज तथा साहित्य पर भी गहरा प्रभाव था। इस दृष्टि से देखे तो गुणाढ्य लिखित 'बृहत्कथा' को संस्मरणात्मक लोककथा कहना उचित होगा। सम्राट हर्षवर्धन (सातवी शती) के दरबारी कवि बाण ने 'श्री हरिचरितम्' रचना लिखी है जिसके पहले तीन अध्यायों की कथा संस्मरणात्मक है। महाकवि विल्हण का 'विक्रमादेवचरितम्' (1088 ई.) में यात्रा वृत्तांत में संस्मरण शैली का प्रयोग हुआ है। संस्कृत की भाँति अपभ्रंश भाषा के चरित्र ग्रंथों 'चरित ग्रंथ' भी संस्मरणात्मक विधा की पृष्ठभूमि में महत्वपूर्ण माने जाते हैं। स्वयंभू का 'पउम चरित', पुषदंत का 'जसहर चरित', 'णय कुमार चरित', पियुष श्रीधर का 'भट्टमाण चरित' उल्लेखनीय हैं। बौद्ध साहित्य की 'जातक कथाएँ' भी संस्मरण पर आधारित हैं।

यूनानी, संस्कृत, अपभ्रंश भाषा की तरह हिंदी में भी संस्मरण विधा के बीज देखने मिलते हैं इसकी शुरुआत 'बनारसी दास जैने के 'अर्द्ध कथानक' (1641 ई.) रचना से होती है। बनारसीदास मूलतः एक व्यापारी थे और उन्होंने अपने जीवन काल में किए व्यापार के सिलसिले में की यात्राओं का विवरण इसमें आता है। स्मृति पर आधारित वर्णन में यात्रा के पड़ाव, वहाँ के रीति-रिवाज, पारिवारिक संबंध आदि का यथार्थ वर्णन इसमें आया है जो संस्मरण की विशेषताओं के समीप है। साथ ही चारण कवियों के 'रासो ग्रंथों', संत कवियों की 'परचई साहित्य', वैष्णव भक्तों के 'वार्ता साहित्य', नाभादास के 'भक्तमाल' आदि में भी संस्मरणात्मक विधा के तत्त्व दृष्टिगत होते हैं।

3.3.2.4.2 हिंदी संस्मरण का उद्भव और विकास :

* भारतेंदु युग :

हिंदी साहित्य में संस्मरण का उद्भव बीसवीं शती के प्रारंभ से हुआ। भारतेंदु जी ने गद्य की अनेक विधाओं का सूत्रपात करके साहित्यिक पत्रिकाओं के माध्यम से इसका प्रचार-प्रसार किया था। कथेत्तर गद्यविधाओं के विकास में प्रेम एवं साहित्यिक पत्रिकाओं का बहुत बड़ा योगदान मिला। भारतेंदु जी की 'कवि वचन सुधा', पं. प्रतापनारायण मिश्र की 'हिंदी प्रदीप', महावीर प्रसाद द्विवेदी जी की 'सरस्वती' आदि पत्रिकाओं ने संस्मरण विधा को पनपने के लिए अवसर प्रदान किए। ईसाई मशनरियों के कारण भारतीय समाज में शिक्षा प्रचार एवं प्रसार होने लगा। अंग्रेजी भाषा के ज्ञान के कारण पश्चिमी भाषा के साहित्य से परिचय हुआ और उनकी साहित्यिक विधाओं का प्रभाव हिंदी पर भी पड़ा। सुशिक्षित पढ़ी-लिखी नई पीढ़ी के लेखकों ने भारतीय परंपरा के साथ विदेशी विधाओं की नवीनता को अपनाया। भारतेंदु युग (1850 से 1900 ई.) समय हिंदी में मूलतः यात्रापरक और जीवन परक संस्मरण प्राप्त होते हैं। इस संदर्भ में विठ्ठल जी लिखित 'वनयात्रा' नामक हस्तलिखित ग्रंथ प्राप्त होता है जो इस संदर्भ में प्राचीन माना जाता है। भारतेंदु युग में भगवानदास वर्मा कृत 'लंदन का यात्री' (1884 ई.), दामोदर शास्त्री लिखित 'मेरी पूर्वादियात्रा' (1885 ई.) और 'मेरी दक्षिण दिग्यात्रा' (1886 ई.), तोताराम कृत 'ब्रज विनोद' (1888 ई.), लाला कल्याण चंद्र (1890 ई.), अज्ञात की 'विलायत की यात्रा' (1892 ई.), देवी प्रसाद खत्री की 'रामेश्वर यात्रा' (1893 ई.), पं. विभूति मिश्र की 'ब्रज यात्रा' (1894) आदि उल्लेखनीय यात्रा परक संस्मरण हैं।

* द्विवेदी युग (1900 से 1920 ई.) :

हिंदी संस्मरण साहित्य के विकास का प्रारंभ द्विवेदी युग से माना जाता है। द्विवेदी युग में प्रारंभ में यात्रापरक संस्मरण मिलते हैं। जैसे बाबू देवी प्रसाद खत्री के 'बदरीकाश्रम यात्रा' (1902 ई.), डॉ. गदाधर शर्मा की 'हमारी एडवर्ड लिंक विलायत यात्रा' (1903 ई.), साधुचरण प्रसाद की 'भारत भ्रमण' (1903 ई.), पं. रामशंकर व्यास की 'पंजाब यात्रा' (1907 ई.), स्वामी सत्यदेव परिव्राजक की 'अमेरिका दिग्दर्शन' (1911 ई.), धनपतिलाल की 'द्वारिकानाथ यात्रा' (1912 ई.), शिवप्रसाद गुप्त की 'पृथिवी प्रदक्षिणा' (1914 ई.), स्वामी सत्यदेव परिव्राजक की 'मेरी कैलाश यात्रा' (1916 ई.) और गोपालराम गहमरी की 'लंका यात्रा का

विवरण' (1916 ई.) आदि यात्रापरक संस्मरण उल्लेखनीय है। भारतेंदु युग और द्विवेदी युग में वैसे तो जीवनीपरक संस्मरण की बाढ़ सी आई थी। लेकिन यात्रापरक और जीवनी परक संस्मरण हिंदी की संस्मरण साहित्य का प्रारंभ मात्र थे।

संस्मरण विधा की कलात्मक एवं भावात्मक शैली के अनुसार हिंदी संस्मरण का सूत्रपात करने का श्रेय पं. पद्मसिंह शर्मा जी को जाता है। पं. पद्मसिंह शर्मा ने संस्मरणों को संस्मरण के उद्देश्यों, संरचना और कलात्मक ढंग सर्वप्रथम लिखने का सूत्रपात किया। उनके संस्मरण तत्कालीन पत्रिकाओं में छपे उनमें से नौ संस्मरण 'पद्म पराग-भाग १ के ' शीर्षक से पारसनाथ सिंह ने संपादित किए हैं। पं. पद्मसिंह शर्मा के उल्लेखनीय संस्मरण हैं- 'मौलाना आजाद का स्वर्गवास', 'भारतोदय' (1909 ई.), 'भारतोदय-आषाढ-श्रावण की युग्म' (1912 ई.), 'पंडित गणपति शर्मा', 'हिंदी चित्रमय जगत्' (1912 ई.), 'श्री ऋषिकेश भट्टाचार्य शास्त्री', 'सरस्वती' (1914 ई.) आदि। साथ ही बाबू काशीप्रसाद जायसवाल का 'इंग्लैंड के देहांत में पं. महाराजा बनारस का कुर्ज', पं. मधुर प्रसाद शर्मा का 'अपूर्व धनुर्धारी अध्याराव जी', जगननाथ खन्ना के 'अमेरिका की चौथी जुलाई', डॉ. रामनारायण मिश्र के 'ब्रिटिश गायना के जंगलों में भ्रमण' तथा 'ब्रिटिश गायना के भारत वासी' और यादेश्वरीप्रसाद त्रिपाठी के 'राजाराम मोहन राय का गुण कीर्तन' विशेष उल्लेखनीय है।

संक्षेप में कह सकते हैं कि भारतेंदु और द्विवेदी कालीन इन हिंदी संस्मरण साहित्य का स्वरूप प्राथमिक चरण पर था इसमें कला और संरचना की दृष्टि का अभाव था। इन संस्मरणों में प्रशंसा, गुणगान और यथार्थपरक वर्णनात्मकता अधिक मिलती है। लेकिन पं. पद्मसिंह शर्मा ने हिंदी संस्मरण विधा के रूप एवं उद्देश्य को अपनी रचनाओं के माध्यम से भलीभाँति प्रस्तुत करके भविष्य के संस्मरणकारों को मार्ग प्रशस्त किया।

*** स्वातंत्र्यपूर्व युग (1921 से 1947 ई.) :**

हिंदी संस्मरण विधा का विकास द्विवेदी युग से निरंतर होने लगा था। लेकिन आगे उसकी विकास यात्रा को स्वतंत्रता पूर्व और स्वातंत्र्योत्तर कालखंड के रूप में देखना अध्ययन के लिए सुविधाजनक होगा। द्विवेदी कालखंड के बाद सन 1947 तक हिंदी में अनेक संस्मरण लिखे गए हैं। इसमें हिंदी की 'मर्यादा', 'विशाल', 'हंस' आदि साहित्यिक पत्रिकाओं का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इस कालखंड के उल्लेखनीय संस्मरण इसप्रकार हैं- पं. बनारसीदास चतुर्वेदी जी के 'कविरत्न सत्यनारायण जी की जीवनी' (1926 ई.), श्री रामदास गौड़ के 'पं. श्रीधर पाठक' और 'राय देवीप्रसाद पूर्ण के संबंध में' (1928 ई.), अवनींद्र विद्यालंकार का 'श्रद्धानंद नगरी के संस्मरण' (1928 ई.), बाबू बालमुकुंद गुप्त के 'श्री अमृतलाल चक्रवर्ती' और 'श्री यशोदानंदन अखौरी' (1929 ई.), पं. बनारसीदास चतुर्वेदी की 'मेरी तीर्थयात्रा' (1929 ई.) उल्लेखनीय है। 'मेरी तीर्थयात्रा' में कवि शंकर, पं. महावीरप्रसाद द्विवेदी और किशोरीदास वाजपेयी के संस्मरण श्रद्धापूर्वक लिखे गए हैं। श्रीनिवास शास्त्री के 'मेरी जीवन स्मृतियाँ' (1930 ई.), पं. बनारसीदास चतुर्वेदी की 'देशबंधु एण्ड्रूज' (1930 ई.) और सन 1931 में इनका ही एक संस्मरण 'कविवर पं. श्रीधर पाठक' नाम से प्रकाशित हुआ है।

'हंस' पत्रिका के सन् 1932 ई. में प्रकाशित 'हंस के आत्मकथांक' में लगभग 34 संस्मरणों का प्रकाशन

हुआ। इसमें पं. रामचंद्र शुक्ल की 'प्रेमधन की छाया स्मृति', रामनारायण मिश्र की 'आदमी की पहचान', गोपालराम गहमरी जी की 'सत्य संस्मरण', जैनेंद्र कुमार का 'कश्मीर प्रवास के दो अनुभव', शिवरानी देवी का 'मेरी गिरफ्तारी' और प्रेमचंद के 'जीवन सार' आदि उल्लेखनीय संस्मरण हैं। सन 1935 में पं. मोहनलाल महतो 'वियोगी' का 'सप्त-सुमन' इस संस्मरण को हिंदी का पहला विशुद्ध संस्मरण माना जाता है। इसमें सात महान चरित्रों का व्यक्तिपरक संस्मरण लिखा गया है जिसकी भूमिका में स्वयं इन्हें संस्मरण कहा है। इस कालखंड में हिंदी के महान कवि पं. सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' की 'कुल्ली भाट' (1937 ई.) और 'बिल्लेसुर बकरिहा' (1939 ई.) उल्लेखनीय संस्मरण प्राप्त होते हैं। 'कुल्लीभाट' में पं. पथवारी दीन भट्ट से निराला की मित्रता और 'बिल्लेसुर बकरिहा' में बिल्लेश्वर शुक्ल जो उनके ग्रामवासी थे इनकी यादों पर कथात्मक संस्मरण लिखा है। महादेवी वर्मा के 'अतीत के चलचित्र' भी एक उल्लेखनीय संस्मरण देखने मिलता है। इसमें महादेवी जी ने समाज से प्रताड़ित ११ चरित्रों पर लेखन किया है जिसमें आठ महिला चरित्र हैं। महादेवी के पूर्व हिंदी संस्मरण में पीड़ित एवं दमित नारी को किसी ने विषय नहीं बनाया था लेकिन महादेवी ने इसका सूत्रपात किया। प्रेमचंद की पत्नी शिवरानी देवी का 'प्रेमचंद घर में' (1944 ई.) संस्मरण चर्चा में रहा। हिंदी साहित्य जगत में यह पहला संस्मरण है जो किसी पत्नी ने अपने पति पर और घरेलू जीवन पर लिखा हो। पं. रामनरेश त्रिपाठी के 'तीस दिन मालवीय के साथ' (1942 ई.), महादेवी वर्मा का 'स्मृति की रेखाएँ' (1943 ई.) आदि उल्लेखनीय संस्मरण रहे। 'स्मृति की रेखाएँ' में दीलित, पीड़ित और उपेक्षित लोगों के संस्मरण हैं। संस्मरण, रेखाचित्र और कहानी का अद्भुत मिश्रण इसमें देखने मिलता है। रामवृक्ष बेनीपुरी का 'माटी की मुरतें' (1946 ई.) की काफी चर्चा रही जिसमें रामवृक्ष बेनीपुरी ने ग्रामीण जीवन के स्त्री-पुरुषों के जीवन को आधार बनाया है।

संक्षेप में कह सकते हैं कि हिंदी संस्मरण के विकास की गति द्विवेदी युग से शुरू हुई जो स्वतंत्रता पूर्व युग तक आते-आते पूर्ण विकसित हुई। इस कालखंड में संस्मरण को अपनी संरचना और कलात्मक अभिव्यक्ति का उद्देश्य भी प्राप्त हुआ था।

*** स्वातंत्र्योत्तर युग (1947 से 1960 ई.) :**

भारत देश को स्वतंत्रता मिलने के बाद आई चेतना ने साहित्य को प्रभावित किया। साहित्य ने भी मुक्ति का एहसास किया। स्वाधीनता के बाद स्वाधीनता पाने के लिए किए आंदोलनों और क्रांतिकार्यों, क्रांतिकारकों को शहादतों की याद में संस्मरण लिखने का सिलसिला शुरू हुआ। इस कालखंड की उल्लेखनीय संस्मरणकार और उनकी रचनाओं का विवरण इसप्रकार है- भवानीप्रसाद संन्यासी की 'प्रवासी की आत्मकथा' (1947 ई.), देवेंद्र सत्यार्थी की 'रेखाएँ बोल उठी' (1949 ई.) और 'साँवरी' (1950 ई.), विनोद शंकर व्यास की 'उलझी स्मृतियाँ', 'दिन-रात' (दोनों 1950 ई.), यशपाल की क्रांतिकारी जीवन पर आधारित संस्मरण 'देखा, सोचा, समझा' (1951 ई.), 'सिंहावलोकन' (तीन भाग-1951 ई. 1952 ई. और 1955 ई.), विष्णु प्रभाकर के 'मेरे समकालीन' (1951 ई.), महात्मा गांधी जी द्वारा लिखित 234 संस्मरणों का संपादन है), पं. बनारसीदास चतुर्वेदी की 'संस्मरण' और 'हमारे आराध्य' (1952 ई.), शांतिप्रिय द्विवेदी ने 'परिव्राजक की प्रजा' (1952 ई.), राहुल सांकृत्यायन की 'बचपन की स्मृतियाँ' (1953 ई.), मोहन राकेश का 'आखिरी चट्टान तक' (1953

ई.), कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर 'जिंदगी मुस्कुराई' (1953 ई.), 'भूले हुए चेहरे' (1954 ई.), जैनेंद्रकुमार का 'ये और वे' (1954 ई.), उपेंद्रनाथ अशक का 'मंटो मेरा दुश्मन' (1956 ई.), महादेवी वर्मा का 'पथ के साथी' (1956 ई.), राहुल सांकृत्यान का 'मेरे असहयोग के साथी' (1956 ई.) और 'जिनका मैं कृतज्ञ हूँ' (1957 ई.), रामवृक्ष बेनी पुरी का 'मील के पत्थर' और 'जंजीरे और दीवारे' (1957 ई.) उल्लेखनीय संस्मरण रहे।

* साठोत्तरी युग (1961 से 1980 ई.) :

भारत में साठोत्तरी कालखंड राजनीति एवं सामाजिक दृष्टि से मोहभंग का कालखंड रहा है। साहित्य पर भी इस मोहभंग प्रवृत्ति का असर देखने मिलता है। सन 1960 के बाद भी संस्मरण विधा में अनेक दिग्गजों के संस्मरण काल-परिवेश के अनुसार साकार होते रहे हैं। उनका विवरण इसप्रकार है- उपेंद्रनाथ अशक की पत्नी श्रीमती कौशल्या अशक ने 'अशक : एक रंगीन व्यक्तित्व' (1961 ई.) संस्मरण लिखा। इसमें उपेंद्रनाथ जी पर ३२ संस्मरण लिखे गए हैं। माखनलाल चतुर्वेदी का 'समय के पाँव', डॉ. हरिवंशराय बच्चन जी के 'नये पुराने झरोखे', घनश्यामदास बिड़ला का 'कुछ देखा कुछ सुना', पं. बनारसीदास चतुर्वेदी का 'राजेंद्र बाबू व्यक्तित्व दर्शन' (सभी 1963 ई.), आ. शिवपूजन सहाय का 'वे दिन, वे लोग', विष्णु प्रभाकर का 'कुछ शब्द कुछ रेखाएँ', शांतिप्रिय द्विवेदीकी 'स्मृतियाँ और कृतियाँ' (सभी 1966 ई.), डॉ. हरिवंशराय बच्चन के षष्ठिपूर्ति पर अजित कुमार और ओंकार नाथ का एक संस्मरण संकलन 'बच्चन : निकट से' (सभी 1968 ई.), आ. चतुरसेन शास्त्री के 'यादें' और 'सुबह होने तक' (1969 ई. और 1971 ई.) उल्लेखनीय है।

उसके बाद शैलेश मटियानी का 'लेखक की हैसियत से', लक्ष्मीशंकर व्यास के 'स्मृति की त्रिवेणिका', अक्षयकुमार जैन का 'याद रही बातें' (सभी 1974 ई.), अनिता राकेश का 'चंद साल और', सुधा चौहान का 'मिला तेज से तेज', प्रमोद शंकर भट्ट और सुशीला कुमार दोशी ने भारतीय क्रिकेट खिलाड़ियों पर 'भारतीय क्रिकेट जगत की भूली बिसरी यादें', सोहनलाल शास्त्री ने डॉ. अंबेडकर जी पर 'बाबा साहब डॉ. बी. आर. अंबेडकर के संपर्क में पच्चीस वर्ष', भगत सिंह का 'मेरी क्रांतिकारी साथी' (1977 ई.), कृष्णा सोबती का 'हमहशमत भाग-१, भगवतीचरण वर्मा का 'अतीत के गर्त में', रांगेय राघव का 'पुनः', मैथिलीशरण गुप्त का 'श्रद्धांजलि संस्मरण' (सभी 1979 ई.), भारतभूषण अग्रवाल का 'लीक-अलीक' (1980 ई.) आदि उल्लेखनीय संस्मरण हैं। संक्षेप में कह सकते हैं कि इस कालखंड में हिंदी संस्मरण साहित्य का पर्याप्त विकास हो चुका था। संस्मरण के विषय एवं शैली में भी पर्याप्त विकास देखने मिलता है।

* समकालीन युग (सन् 1980 ई. से अबतक) :

समकालीन युग में भी संस्मरण लिखने की प्रवृत्ति अधिकतर साहित्यकार, अपने स्नेही जनों, यात्रा के अनुभव और सामाजिक घटनाओं को आधार बनाकर लिखे गए। इस कालखंड में विष्णु प्रभाकर लिखित 'यादों की तीर्थयात्रा', राजेंद्र यादव का 'ओरों के बहाने', अमृतलाल नागर का 'जिनके साथ जिया', रामकुमार वर्मा का 'संस्मरणों के सुमन', अज्ञेय का 'स्मृति लेखा', विष्णु प्रभाकर का 'मेरे अग्रज मेरे मीत' (दोनों 1983 ई.), पद्मा सचदेव का 'दीवान खाना' (1984 ई.), भारत भूषण अग्रवाल - कुछ यादें, कुछ चर्चाएँ' (1989

ई.), विष्णु प्रभाकर का 'सृजन के सेतु' (1990 ई.), अमृत राय का 'जिनकी याद हमेशा रहेगी', काशिनाथ सिंह का 'याद हो कि न याद हो', गिरिराज किशोर का 'सप्तवर्णी' (1994 ई.), कृष्णा सोबती के 'हम हशमता भाग-२', बिंदु अग्रवाल का 'यादें और बातें' (दोनों 1998 ई.) आदि उल्लेखनीय है।

अगले दशक में देवेंद्र सत्यार्थी का 'यादों के काफिले' (सभी 2000 ई.), रामदरश मिश्र का 'अपने-अपने रास्ते', मनोहर श्याम जोशी 'लखनऊ मेरा लखनऊ', विवेकी राय का 'आंगन के चंदनवार', (2003 ई.) ममता कालिया का 'कल परसो बरसो', नंद चतुर्वेदी का 'अतीत राग', शेखर जोशी का 'स्मृति में रहेंगे वे' (सभी 2011 ई.) विश्वनाथ त्रिपाठी का 'गंगा स्नान करने चलो', कृष्णा सोबती का 'हम हशमत-भाग ३', नरेंद्र कोहली का 'स्मृतियों के गलियारे से' (दोनों 2012 ई.), विमलचंद्र पांडेय का 'ई इलाहाबाद है भइया' (सभी 2013 ई.), हृदयेश का 'स्मृतियों के साक्ष्य', 'कांतिकुमार जैन का 'महागुरु मुक्तिबोध जुम्मा टैंक की सीढ़ियाँ पर' (दोनों 2014 ई.), मधुरेश का 'मैं और वो' (सभी 2015 ई.), पंकज बिष्ट का 'शब्दों के लोग', रमेशचंद्र शाह का 'आवा हयामि', पद्मा सचदेव का 'बारह दरी', मैत्रेयी पुष्पा का 'वो सफर था कि मुकाम था : मेरी नज़र में राजेंद्र यादव', भगवानदास मोरवाल का 'पकी जेठ का गुलमोहर', (सभी 2016 ई.), डॉ. कृष्णबिहारी मिश्र का 'साँझ की जम्हाई और सर्जनशील उजास', संपा.गिरिश्वर मिश्र का 'बहुवचन का संस्मरण अंक' (सभी 2017 ई.), रामदरश मिश्र की 'सर्जना ही बड़ा सत्य है', डॉ. भगवान सिंह का 'गाँव मेरा देश', कृष्णा सोबती का 'मार्फत दिल्ली', असगर वजाहत का 'अतीत का दरवाजा', रूपसिंह चंदेल का 'यादों में सफर', ज्ञान प्रकाश विवेक का 'कम आवाजों का शहर' (सभी 2018 ई.), कृष्णा सोबती का 'हम हशमत भाग-४', मनोहर श्याम जोशी : एक याद', मृदुला सिन्हा का 'स्मृतियाँ जो संगिनी बन गयी', (सभी 2019 ई.) आदि संस्मरण उल्लेखनीय है।

संक्षेप में कह सकते हैं कि हिंदी संस्मरण साहित्य का भी बहुत बड़ा इतिहास रहा है। आदिकाल और मध्यकाल में जीवन वृत्तांत और यात्राओं के आधार पर कुछ रचनाएँ लिखी गईं जो नितांत प्रशंसापरक थीं। भारतेंदु युग में भी यात्रा वृत्तांत को ही संस्मरण का हिस्सा बनाया गया। द्विवेदी युग में संस्मरण शैली का विकास होने लगा पद्मसिंह शर्मा के 'पद्म पराग' (1920 ई.) से हिंदी संस्मरण की विशुद्ध शुरुआत मानी जाती है जो आगे अनेक पढ़ावों से गुजरती हुई विकसित हुई।

3.3 हिंदी रिपोर्टाज साहित्य : उद्भव और विकास :

हिंदी की आधुनिक गद्य साहित्य में 'रिपोर्टाज' एक लोकप्रिय विधा मानी गई है। 'रिपोर्टाज' का जन्म पत्रकारिता एवं समाचार लेखन से माना जाता है लेकिन यह विधा अपने साहित्यिक गुणों से पत्रकारिता से बिल्कुल भिन्न है। द्वितीय महायुद्ध के समय युद्ध की घटनाओं की रिपोर्टिंग करने से इस विधा का निर्माण हुआ है। अमेरिकी लेखक इलिया ग्रिगोरीविच एहरेनबर्ग द्वारा सन् 1936 ई. को द्वितीय विश्वयुद्ध की भयावहता का आँखों देखा साहित्यिक वर्णन किया था। यहीं से रिपोर्टाज विधा की शुरुआत मानी जाती है। हिंदी में भी 20 वीं शताब्दी के प्रारंभ में इसका आगमन हुआ और 'रूपांभ' पत्रिका के दिसंबर, सन् 1938 ई के अंक में शिवादान सिंह चौहान के 'लक्ष्मीपुरा' इस रचना के प्रकाशन से हिंदी रिपोर्टाज साहित्य की शुरुआत मानी जाती

है। 'रिपोर्ताज' मूलतः किसी रोमांचक घटना, भयावह घटना जैसे युद्ध, अकाल, बाढ़ प्रकोप, आतंकवादी हमला आदि विषयों पर आँखों-देखी घटनाओं को कलात्मक ढंग से लिखा जाता है। हिंदी रिपोर्ताज साहित्य के उद्भव और विकास के इतिहास को समझने से पहले 'रिपोर्ताज' का शाब्दिक अर्थ और उसकी परिभाषा को जानना जरूरी है।

3.3.1 'रिपोर्ताज' का शाब्दिक अर्थ :

'रिपोर्ताज' यह फ्रांसीसी भाषा का शब्द है जिसे अंग्रेजी में 'रिपोर्ट' कहा जाता है, जिसका अर्थ है किसी रोमांचकारी घटना, खबर, सूचना का यथातथ्य विश्लेषण या वर्णन करना है। हिंदी में 'सूचनांक', 'सूचनांकन' या 'सूचनिका' जैसे पर्यायवाची शब्दों का भी इस्तेमाल किया जाता है। लेकिन हिंदी में इसे 'रिपोर्ताज' नाम से ही मान्यता मिली है। मूलतः यह शब्द समाचार लेखन और पत्रकारिता के रिपोर्टिंग से जुड़ा है। लेकिन रिपोर्टिंग में औपचारिक लेखन होता है। 'रिपोर्ताज' में औपचारिक लेखन को साहित्यिक सौंदर्य के साथ लिखा जाने के कारण वह साहित्य के श्रेणी में आता है।

3.3.2 'रिपोर्ताज' की परिभाषाएँ:

'रिपोर्ताज' के स्वरूप एवं विशेषताओं को समझने के लिए शब्दकोश और विद्वानों की परिभाषाओं को जानना जरूरी है। वह इसप्रकार हैं-

* हिंदी साहित्य कोश भाग-१ -

“रिपोर्ट के कलात्मक और साहित्यिक रूप को रिपोर्ताज कहते हैं। वस्तुगत तथ्य को रेखाचित्र की शैली में प्रभावोत्पादक ढंग से अंकित करने में ही रिपोर्ताज की सफलता है।”

* प्रामाणिक हिंदी कोश -

“किसी घटना की सूचना, जो किसी को दी जाए या कार्य विवरण (संस्था आदि का)।”

* शिवदानसिंह चौहान -

“रिपोर्ताज एक रिपोर्ट है लेकिन इसके साथ उसमें घटना अपने परिवेश की संपूर्ण चित्रात्मकता के साथ भावों और संवेदना के ज्वार-भाटे की तरंगों से एक सजीव अनुभव भी बन जाती है और पाठकों को सवाकब चित्रपट की भाँति किंतु यथार्थ और विश्वस्त रूप से उनका अनुभव प्रदान करती है। आज के युग में रिपोर्ताज एक ऐसा रूप विधान है, जिसके द्वारा वर्तमान जीवन की संघर्षमयी वास्तविकता का अनुभव पाठकों तक पहुँचाया जा सकता है।”

* डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी -

“रिपोर्ताज एक तरह से यात्रा-वृत्त का डिटेल है और अधिकतर तात्कालिक उत्तेजन के रूप में लिखा जाता है।”

3.3.3 'रिपोर्ताज' की विशेषताएँ:

'रिपोर्ताज' के शाब्दिक अर्थ और उपरोक्त विद्वानों की परिभाषा से उसका स्वरूप स्पष्ट होता है। इन परिभाषाओं से रिपोर्ताज में निम्नलिखित विशेषता देखने मिलती है-

1. रिपोर्ताज में आँखों देखी और कानों सुनी रोमांचकारी घटनाओं का कलात्मक वर्णन किया जाता है।
2. रिपोर्ताज में घटनाओं का वर्णन कथावस्तुयुक्त होना जरूरी होता है।
3. रिपोर्ताज में साहित्यिक सौंदर्य और कलात्मकता का गुण विद्यमान होता है।
4. रिपोर्ताज में रचनाकार को पत्रकार और साहित्यकार का संतुलन रखना जरूरी होता है।
5. घटनाओं के सूक्ष्म निरीक्षण, सफल संयोजन और कलात्मक वर्णन पर रिपोर्ताज की सफलता निर्भर होती है।
6. रिपोर्ताज की भाषा एवं शैली सरल, सहज और विषयानुकूल होती है।
7. रिपोर्ताज में सत्य घटना की वास्तविकता, वस्तुनिष्ठता, प्रत्यक्ष अनुभव, कलात्मक लेखन, विविधता, विश्लेषणात्मकता, प्रभाव, सजीवता और रोचकता यह तत्त्व विद्यमान होते हैं।
8. रिपोर्ताज के घटना-प्रधान रिपोर्ताज, सामाजिक रिपोर्ताज, सांस्कृतिक रिपोर्ताज, व्यंग्यात्मक रिपोर्ताज, संस्मरणात्मक रिपोर्ताज, राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय रिपोर्ताज आदि प्रकार देखने मिलते हैं।

3.3.4 हिंदी रिपोर्ताज साहित्य का उद्भव और विकास:

'रिपोर्ताज' साहित्य की शुरुआत पाश्चात्य साहित्य की देन है। द्वितीय विश्व युद्ध (1939 ई.) के भयावहता और उसके परिणामों के आँखों देखी और कानों सुनी स्थिति का रिपोर्टिंग करने से 'रिपोर्ताज' विधा का प्रारंभ हुआ है। अमेरिका के लेखक इत्या ग्रीगोरीविच एहरेनबर्ग ने इन युद्धों के वर्णनों का साहित्यिक और कलात्मक वर्णन किया जो काफी लोकप्रिय हुआ और वहीं से 'रिपोर्ताज लेखन' की शुरुआत हुई। हिंदी साहित्य के परिप्रेक्ष्य में रिपोर्ताज लेखन के उद्भव विकास को स्वातंत्रता पूर्व, स्वातंत्र्योत्तर, साठोत्तरी और समकालीन कालखंड में देखना जरूरी है। उसका विवेचन इसप्रकार है-

3.3.4.1 स्वतंत्रता पूर्व कालखंड (१९३८ से १९४७ ई. तक):

भारतेंदु हरिश्चंद्र जी ने हिंदी की अनेक गद्य विधाओं का आविष्कार किया है। रिपोर्ताज के संदर्भ में भी उनकी 'हरिश्चंद्र चंद्रिका' (1877 ई.) यह कृति उल्लेखनीय है। क्योंकि इसमें रिपोर्ताज साहित्य की झलक मिलती है। इस रचना में उन्होंने दिल्ली दरबार का वर्णन किया है। हिंदी साहित्य में रिपोर्ताज लेखन की शुरुआत बीसवीं शताब्दी के चौथे दशक में हुई। हिंदी रिपोर्ताज को साहित्य विधा के रूप में स्थापित करने का श्रेय 'रूपांभ', 'हंस' और 'विशाल भारत' इन हिंदी साहित्यिक पत्रिकाओं को दिया जाता है। हिंदी रिपोर्ताज लेखन का श्रीगणेश करने का श्रेय शिवदान सिंह चौहान जी को दिया जाता है। कवि सुमित्रानंदन पंत संपादित 'रूपांभ'

पत्रिका के दिसंबर, 1938 ई के अंक में शिवादान सिंह चौहान के 'लक्ष्मीपुरा' इस रचना के प्रकाशन से हिंदी रिपोर्टाज साहित्य की शुरुआत मानी जाती है। उसके बाद सन 1941 में 'हंस' पत्रिका में 'समाचार और विचार' शीर्षक से उन्होंने जो साहित्य सामग्री का लेखन किया वह 'रिपोर्टाज' की श्रेणी में आती है। उसके बाद शिवदास सिंह चौहान ने 'मौत के खिलाफ जिंदगी की लड़ाई' नामक रिपोर्टाज 'हंस' पत्रिका में लिखा। नौ पृष्ठों के इस रिपोर्टाज में शिवदास सिंह चौहान ने स्वतंत्रता पूर्व देश की गतिविधि पर प्रकाश डाला है। इसमें बंगाल का आकाल, गांधी जी की रिहाई के संदर्भ में कलात्मक विवेचन किया गया है। डॉ. रांगेय राघव भी रिपोर्टाज लेखन में सर्वश्रेष्ठ लेखक माने जाते हैं। 'विशाल भारत' इस पत्रिका में उनका 'तूफानों के बीच' (1946 ई.) यह रिपोर्टाज उल्लेखनीय है जिसमें उन्होंने बंगाल के काल का बड़ा ही सजीव और मामिक वर्णन किया है।

3.3.4.2 स्वातंत्र्योत्तर कालखंड (1947 से 1960 ई. तक):

स्वातंत्र्योत्तर कालखंड में हिंदी रिपोर्टाज की विकासयात्रा को आगे बढ़ाने का श्रेय प्रकाशचंद्र गुप्त, उपेंद्रनाथ अश्क और रामनारायण उपाध्याय को दिया जाता है। प्रकाशचंद्र गुप्त ने अपनी किताब 'रेखाचित्र' में 'स्वराज्य भवन', 'बंगाल का अकाल', 'अल्मोड़ा का बाजार' इन नाम से बेहतरीन रिपोर्टाज लिखे। उपेंद्रनाथ अश्क जी ने 'पहाड़ों में प्रेममय संगीत', 'रेखाएँ और चित्र', रामनारायण उपाध्याय ने 'गरीब और अमीर' नामक महत्वपूर्ण रिपोर्टाज इस कालखंड में लिखे हैं। रामकुमार वर्मा के 'यूरोप के स्केच', भद्रंत आनंद कौसल्यायन का 'देश की मिट्टी बुलाती है', शमशेर बहादुर सिंह की 'प्लाट का मोर्चा' (1952 ई.), कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर जी का 'क्षण बोले कण मुस्काए' (1953 ई.), श्रीकांत वर्मा का 'अपोलो का रथ', लक्ष्मीचंद्र जैन का 'कागज की कश्तियाँ' और 'नये रंग नए ढंग' आदि उल्लेखनीय हैं।

3.3.4.3 साठोत्तरी कालखंड (1960 से 1975 ई. तक):

हिंदी रिपोर्टाज लेखन में साठोत्तरी कालखंड के बाद नया मोड़ आया। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद की मोहभंग की स्थितियों ने साठ के बाद देश में पूर्ण रूप से गहरा गई। सन् 1962 ई. में 'भारत-पाकिस्तान' युद्ध होने के बाद रिपोर्टाज लेखन में राष्ट्रभक्ति और विद्रोहवादी चेतना से युक्त रिपोर्टाज लिखे जाने लगे। इस कालखंड में जनता की आवाज बहुत तेज हुई। राजनीतिक पार्टियों और नेताओं के खिलाफ जनता की दबी हुई आवाज खुलने लगी। विषय एवं अभिव्यक्ति की नवीनता रिपोर्टाज लेखन में भी दिखने लगी। सन् 1960 ई. के बाद रिपोर्टाज लेखन नगर और महानगरों को केंद्र में रखकर लिखे जाने लगे। नगरों-महानगरों की यांत्रिकी जीवन ने ग्राम्य जीवन की खुशहालता को भी रिपोर्टाज में अंकित किया। राजनीति, धार्मिक एवं सामाजिक जीवन की विसंगति, सरकारी कार्यालयों के भ्रष्टाचार पर रिपोर्टाज लेखन हुआ। हिंदी रिपोर्टाज लेखन के विकास में डॉ. धर्मवीर भारती और उनकी 'धर्मयुग' पत्रिका का बहुत बड़ा योगदान रहा है। इनका 'युद्धयात्रा' (1971 ई.) नामक रिपोर्टाज महत्वपूर्ण है। डॉ. भारती युद्ध के मैदान में सैनिक और उनके अधिकारियों के साथ उपस्थित रहकर उन्होंने यह रिपोर्टाज अपने सत्य अनुभवों पर लिखा है। साथ ही कुबेरनाथ राय जी ने 'गंदमादन' (1972 ई.) किताब में 'दृष्टिजल', 'दृष्टि अभिषेक', 'कजरी वन में जीव हंस' शीर्षक से तीन महत्वपूर्ण रिपोर्टाज लिखे

हैं। इसकालखंड में शिवसागर मिश्र के 'वे लड़ेंगे हजारों साल' (1966 ई.), अज्ञेय का 'देश की मिट्टी बुलाती है' आदि महत्वपूर्ण रिपोतार्ज है।

3.3.4.3 समकालीन युग (1975 से अब तक):

समकालीन युग में रिपोतार्ज लेखन में फणीश्वरनाथ रेणु जी का भी बहुत बड़ा योगदान रहा है। उनका 'ऋणजल-धनजल' (1977 ई.) यह पहला रिपोतार्ज लिखा है। इस रिपोतार्ज में सन 1906 ई. में बिहार के भीषण अकाल और सन १९७५ में आई बाढ़-प्रकोप से उत्पन्न समस्याओं का मार्मिक एवं चित्रात्मक वर्णन रेणु जी ने किया है। उसके बाद 'नेपाल क्रांति कथा' (1978 ई.) यह दूसरा रिपोतार्ज संग्रह प्रकाशित हुआ। इसमें नेपाल की ऐहासिक क्रांति की घटना को वर्ण्य-विषय बनाया गया है। 'श्रुत-अश्रुत पर्व' (1984 ई.) और 'एकलव्य के नोट्स' भी रेणु के महत्वपूर्ण रिपोतार्ज है। विवेकी राय का 'जुलूस राक है' (1977 ई.), 'बाढ़-बाढ़-बाढ़', 'भगवत शरण उपाध्याय का 'खून के छीटें', रामकुमार वर्मा के 'पेरिस के नोट्स', कमलेश्वर का 'क्रांति करते हुए आदमी को देखना', श्रीकांत वर्मा के 'मुक्ति फौज', यशपाल जैन के 'रूस में छियालीस दिन', मणि मधुकर 'पिछला पहाड़', 'सूखे सरोवर का भूगोल', रामनारायण उपाध्याय का 'गरीब और अमीर', विद्यानिधि सिद्धांतालंकार का 'शिवालिक की घाटियों में', मुनि कांति सागर का 'खंडहरों का वैभव' आदि उल्लेखनीय रिपोतार्ज है।

विजय मनोहर तिवारी के 'हरसूद 30 जून' (2005 ई.) नामक रिपोतार्ज संग्रह प्रकाशित हुआ है। मैत्रेयी पुष्पा का 'फाइटर की डायरी' (2012 ई.) नामक रिपोतार्ज संग्रह है। इसमें लेखिका ने हरियाणा पुलिस अकादमी में प्रत्यक्ष उपस्थित रहकर पुलिस प्रशिक्षणार्थियों के जीवन संघर्षों और समस्याओं का वास्तविक वर्णन किया है।

3.4 हिंदी डायरी साहित्य : उद्भव और विकास :

हिंदी का डायरी साहित्य आधुनिक युग की देन है। भारतेंदु कालखंड से हिंदी में गद्य और गद्य की विभिन्न विधाओं का सूत्रपात हुआ। गद्य की विधाओं में कथेतर साहित्य के अंतर्गत आने वाले संस्मरण, रिपोतार्ज, रेखाचित्र, जीवनी, डायरी आदि विधाओं के निर्माण की नींव भारतेंदु कालखंड में डाली गई। हिंदी का डायरी साहित्य भी इसी आधुनिक युग की देन है। भारतेंदु कालखंड में इसके कुछ उदाहरण देखने मिलते हैं लेकिन इसका विकास छायावादोत्तर कालखंड में हुआ। हिंदी डायरी साहित्य के उद्भव और विकास के विवेचन के पूर्व 'डायरी' शब्द का अर्थ, परिभाषा, स्वरूप और उसकी विशेषताओं को समझना जरूरी है। उसका संक्षिप्त विवेचन इसप्रकार है-

3.4.1 'डायरी' शब्द का अर्थ :

'डायरी' यह शब्द मूलतः अंग्रेजी भाषा का शब्द है जो हिंदी साहित्य में भी रूढ़ हो चुका है। लेकिन यह शब्द लैटिन भाषा के 'डायरिम' शब्द से बना है, जो आगे 'डाइस' (दिन) से परिवर्तित होकर अंग्रेजी में डायरी बना है। हिंदी में इसके लिए 'दैनंदिनी', 'दिनचर्या' या 'रोजनामचा' नाम से भी जाना जाता है। लेकिन

डायरी शब्द की अर्थवत्ता एवं संरचना के आधार पर 'डायरी' शब्द ही रूढ़ हो चुका है। डायरी में व्यक्ति अपने दैनंदिन जीवन की घटनाओं, अनुभवों, विचारों और भावनाओं कलात्मक ढंग से हररोज तिथि के साथ लिखता है। यह व्यक्ति के रोज के जीवन के अनुभवों एवं गतिविधियों का लेखा-जोखा होता है। डायरी में व्यक्तिगत डायरी, राजनीतिक डायरी, साहित्यिक डायरी, कल्पनाप्रसूत वास्तविक डायरी आदि प्रकार देखने मिलते हैं।

3.4.3 'डायरी' की परिभाषाएँ :

डायरी शब्द के अर्थ से ज्ञात होता है कि दैनंदिनी जीवन के विविध घटनाओं और अनुभवों का हररोज लेखन डायरी विधा में किया जाता है। लेकिन डायरी के स्वरूप को समझने के लिए उसका शब्दकोशीय अर्थ और विद्वानों की परिभाषा देखना जरूरी है। वह इसप्रकार है-

* हिंदी साहित्य कोश :

“सीमित अर्थ में तो डायरी कापी, नोटबुक या पुस्तिका है, जिसमें हर रोज दैनिक घटनाओं या दिनभर में किए गए कार्यों का लेखा-जोखा रखा जाता है, परंतु प्रचलित अर्थ में 'डायरी' दैनिक व्यापारों, घटनाओं का ब्यौरा है। डायरी में लोग अपने थोड़े या सब अनुभवों तथा निरीक्षणों का दैनिक विवरण रचते हैं।”

* इनसाक्लोपीडिया ब्रिटानिका :

“डायरी आत्मकथनात्मक लेखन का एक रूप है जो लेखक की गतिविधियों और विचारों का नियमित रूप से रखा जाने वाला रिकार्ड है। मुख्य रूप से लेखक के उपयोग के लिए लिखी गयी डायरी में एक स्पष्टवादिता होती है। जो प्रकाशन के लिए लिखे गए लेखन से अलग होती है। इसकी प्राचीन वंशाली शब्द 'डायरिम' के अस्तित्व को संकेतित करता है, जो 'डाइस' (दिन) से निकाल है।”

* रामधारीसिंह दिनकर :

“डायरी वह चीज है जो रोज लिखी जाती है और जिसमें घोर रूप से व्यक्तिगत की बातें भी लिखी जाती हैं।”

* विश्वनाथ प्रसाद तिवारी :

“डायरियों की प्रकृति लेखकों की प्रकृति के अनुसार भिन्न हुआ करती है। डायरी कोई कल्पना प्रधान रचना नहीं बल्कि सत्य घटनाओं पर आधारित है।”

* अनिता राकेश :

“डायरी एक बहुत ही व्यक्तिगत चीज होती है। इसमें आदमी का वह सच्चा स्वरूप होता है जिसके द्वारा उसका अंदर-भीतर बिना किसी लाग लपेट के व्यक्त होता है। इसमें उसकी अपनी ही नहीं बल्कि अपने जीवन से जुड़े सभी व्यक्तियों की भी सच्चाई व्यक्त होती है।”

3.4.3 'डायरी' की विशेषताएँ :

डायरी के अर्थ और उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर डायरी की कुछ विशेषताएँ उभरकर सामने आती हैं, वह इसप्रकार हैं-

* डायरी पूर्ण रूप से व्यक्तिगत (निजी) अनुभव, विचारों पर आधारित होती है, अर्थात् उसमें आत्मतत्त्व की प्रधानता होती है।

* डायरी लेखन में कोई बंधन नहीं होता, वह स्वतंत्र होती है।

* डायरी में कल्पना से ज्यादा यथार्थता और सत्यता को महत्त्व होता है।

* डायरी व्यक्ति के भावनाओं से जुड़ी होने कारण भावनात्मक होती है।

* डायरी में रचनाकार तिथि के अनुसार अपने अनुभवों का लेखन करता है, जिसमें जीवन की अनुभूतियाँ अधिक मात्रा में होती है।

* डायरी में विषयों की विविधता होती है।

* डायरी खंड अनुभूतियों का संचित रूप होती है ।

* डायरी आत्मलेखांकन है किंतु आत्मकथा नहीं।

* डायरी में अकृत्रिमता, यथार्थता होती है लेकिन कुछ तथ्यों को गोपनीय भी रखा जाता है।

3.4.4 हिंदी डायरी साहित्य का उद्भव और विकास :

हिंदी साहित्य में भारतेंदु युग एक ऐसा कालखंड है, जिसमें हिंदी की अनेक गद्य विधाओं का विकास हुआ। इस युग में गद्य लेखन की विभिन्न विधाओं का लेखन करने का सूत्रपात हुआ। कथा साहित्य और कथेतर साहित्य की अनेक गद्य विधाओं के लेखन का प्राथमिक प्रयास इस कालखंड में हुआ। भारतेंदु युग की 'कविवचन सुधा', 'हिंदी प्रदीप', 'ब्राह्मण' जैसी हिंदी साहित्यिक पत्रिकाओं के कारण इन गद्य विधाओं के लेखन की प्रेरणा मिली। आगे चलकर द्विवेदी युग और छायावाद युग तक आते-आते इन गद्य विधाओं ने अंग्रेजी के प्रभाव और अनुभूति के बल पर अपनी संरचनाओं में पर्याप्त विकास किया। भारतेंदु युग से डायरी लेखन का सूत्रपात हुआ और छायावाद के बाद इसका विकास हुआ। हिंदी डायरी साहित्य के इस विकासयात्रा को निम्नांकित मुद्दों के आधार पर समझने की कोशिश करते हैं।

3.4.4.1 भारतेंदु युग (1850-1900 ई.):

हिंदी साहित्य में भारतेंदु कालखंड अनेक गद्य विधाओं का जनक माना जाता है। भारतेंदु हरिश्चंद्र जी ने साहित्य लेखन को पारंपरिक काव्य विधाओं से बाहर लाकर गद्य लेखन का सूत्रपात किया। कहानी, उपन्यास, नाटक, निबंध के साथ जीवनी, आत्मकथा, संस्मरण, डायरी जैसी विधाओं के लेखन के बीज भी भारतेंदु कालखंड में देखने मिलते हैं। डायरी लेखन का सूत्रपात भी इसी युग में हुआ है। भारतेंदु हरिश्चंद्र की डायरी के पन्ने उनकी 'कालचक्र' (1873 ई.) इस रचना में देखने मिलते हैं। लेकिन डायरी विधा के तत्त्वों के अनुसार वे सुसंगत नहीं है। रामस्वरूप चतुर्वेदी ने 'कालचक्र' इस रचना को डायरी और जर्नल के बीच की रचना माना है। उसके बाद बनारसीदास चतुर्वेदी संपादित 'बालमुकुंद गुप्त स्मारक ग्रंथ' में बालमुकुंद गुप्त जी ने अपनी

दिनचर्या और साहित्यिक प्रसंगों पर लेखन किया है। इस कालखंड में डायरी लेखन का अच्छा उदाहरण 'राधाचरण गोस्वामी के डायरी के पृष्ठ' में देखने मिलता है। उनकी सन 1872 से 1876 तक के कालखंड की हस्तलिखित डायरियाँ पटना के 'चैतन्य पुस्तकालय' में देखने मिलती हैं। इसके अलावा भारतेंदु युग में डायरी लेखन प्राप्त नहीं होता। डायरी लेखन की दृष्टि से यह कालखंड एक प्रयास का काल रहा है।

3.4.4.2 द्विवेदी युग (सन् 1900-1918 ई.):

आ. महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनकी 'सरस्वती' पत्रिका को हिंदी साहित्य लेखन के विकास और खड़ी बोली को साहित्य में प्रतिष्ठित करने का श्रेय दिया जाता है। लेकिन डायरी लेखन के संदर्भ में इस कालखंड में भी बहुत ही कम जानकारी प्राप्त होती है। इस कालखंड में सत्यदेव द्वारा 'मेरी डायरी' (1909 ई.) पुस्तक प्राप्त होती है। इसके अलावा हरवंश लाल शर्मा द्वारा संपादित 'हिंदी का साहित्य के बृहत इतिहास' इस ग्रंथ में आ. महावीर प्रसाद द्विवेदी की संशोधक टिप्पणियाँ, प्रेमचंद की डायरियाँ, बाबू बालमुकुंद गुप्त की टिप्पणी, 'आत्मारामी नोट' (1907 ई.) को डायरी लेखन की दृष्टि से महत्वपूर्ण माना है। संक्षेप में कह सकते हैं कि यह कालखंड डायरी लेखन के बीजारोपण का ही कालखंड रहा है।

3.4.4.3 छायावादी और छायावादोत्तर युग (सन् 1919-1947 ई.):

हिंदी साहित्य में छायावादी युग सबसे लोकप्रिय माना जाता है। इस कालखंड में गद्य की अनेक विधाओं ने अपनी संरचना में पर्याप्त विकास किया था। डायरी लेखन के संदर्भ में इस कालखंड में नारायण चतुर्वेदी का नाम शीर्षस्थ है जिन्होंने 20 वर्षों तक 'सरस्वती' पत्रिका के संपादन की जिम्मेदारी संभाली थी। उनकी 'अंतरंग' (1926 ई.) यह प्रसिद्ध डायरी है। इसमें नारायण चतुर्वेदी ने अपने निजी जीवन के अनुभवों के साथ इसमें सामाजिक सुधार का भी विवरण दिया है। इस कालखंड में यशपाल लिखित 'मेरी जेल डायरी' (1935 ई.) भी एक महत्वपूर्ण डायरी मानी जाती है। इसमें उन्होंने स्वाधीनता आंदोलन के दौरान गिरफ्तारी के बाद बरेली के केंद्रीय में जेल में रहते हुए वहाँ की दैनंदिन अनुभवों को लिखा है। उसके बाद सन् 1936 ई. को उनकी इस सजा को आजीवन कारावास में तब्दील करके इलाहाबाद के नैनी केंद्रीय कारागार में रखा गया। इसका भी उल्लेख इस डायरी में आया है। घनश्याम बिड़ला 'डायरी के पन्ने' (1940 ई.) महत्वपूर्ण डायरी है लेकिन इसमें साहित्यिक कला का अभाव है। सुंदरलाल त्रिपाठी लिखित 'दैनंदिनी' (1945 ई.) एक महत्वपूर्ण डायरी है, जिसमें उन्होंने 1938 से 1944 तक के अपने विचार एवं अनुभवों को लिखा है। श्रीराम शर्मा की 'सेवाग्राम की डायरी' (1946 ई.) के साहित्यिक गुणों को देखते हुए कुछ आलोचक इसे हिंदी की प्रथम डायरी मानते हैं। साथ ही सियारामशरण गुप्त की 'दैनिकी' (1947 ई.) भी महत्वपूर्ण है।

3.4.4.5 स्वातंत्र्योत्तर युग (सन् 1948 से 1960 ई. तक):

स्वातंत्र्योत्तर कालखंड में सबसे पहले डायरी लेखक के रूप में अजित कुमार का नाम आता है। उन्होंने 'अंकित होने दो' नामक डायरी में सन 1948 से 1954 ई. तक के समय के अपने निजी अनुभवों को लिखा है। धीरेंद्र वर्मा की 'मेरी कॉलेज डायरी' (1954 ई.) महत्वपूर्ण डायरी है। धीरेंद्र वर्मा की इस डायरी के आगे

चार भाग 'संदेह भाग-1', 'संसार भाग-2', 'देशदशा भाग-3' और 'मायाजाल भाग-4' प्रकाशित हुए हैं। इसमें वर्मा जी ने इलहाबाद विश्वद्यालय में इंटर की पढाई करने, हिंदू बोर्डिंग हाऊस में रहने आदि के अनुभव लिखे हैं। लेकिन डायरी लेखन में जिस नियमितता की आवश्यकता होती है, इसका इसमें अभाव है। साथ ही उपेंद्रनाथ अशक की 'ज्यादा अपनी कम पराई' (1959 ई.), अज्ञेय कृत 'बर्लिन की डायरी' (1960 ई.) आदि उल्लेखनीय है।

3.4.4.6 साठोत्तरी युग (1961- 2000 ई.):

हिंदी डायरी लेखन की दृष्टि से साठोत्तरी कालखंड बहुत विकासशील रहा है। इस कालखंड में बहुत सारा डायरी लेखन हुआ है। इसमें सबसे पहला नाम आता है गजानन माधव 'मुक्तिबोध' का जिनकी 'एक साहित्य की डायरी' (1964 ई.) खूब चर्चा में रही। यह कुल 13 भागों और 120 पृष्ठों की डायरी है, जिसका संपादन श्रीकांत वर्मा जी ने किया है। यह जबलपुर के 'वसुधा' इस साहित्यिक पत्रिका में भी धारावाहिक के रूप में प्रकाशित हुई थी। साथ ही प्रभाकर माचवे की 'पश्चिम में बैठकर पूर्व की डायरी' (1964 ई.), जमनालाल बजाज कृत 'जमनालाल बजाज की डायरी' (1966 ई.), डॉ. हरिवंश राय बच्चन लिखित 'प्रवासी की डायरी' (1971 ई.) में 12 अप्रैल, 1952 से 11 जनवरी 1953 ई. तक के अनुभवों को लिखा गया है। हिंदी साहित्य जगत में डायरी विधा के तत्त्व और विशेषताओं की दृष्टि से हरिवंश राय बच्चन जी की इस डायरी को सबसे ज्यादा प्रतिष्ठा मिली है। डॉ. हरिवंश राय बच्चन इंग्लैंड में पीएच्.डी के शोध-कार्य के लिए गए थे तब वहाँ के अनुभवों को उन्होंने इस डायरी में लिखा है। साथ ही सीताराम सेक्सरिया की 'एक कार्यकर्ता की डायरी भाग-एक और दो', त्रिलोचन शास्त्री की 'रोजनामचा', रामधारी सिंह दिनकर की 'दिनकर की डायरी', रघुवीर सहाय की 'दिल्ली मेरा परदेश', जयप्रकाश नारायण की 'मेरी जेल डायरी', चंद्रशेखर की 'मेरी जेल डायरी', फणीश्वरनाथ रेणु की 'बनतुलसी की गंध', मोहन राकेश की 'मोहन राकेश की डायरी', कमलेश्वर लिखित 'देश-देशांतर', नामवर सिंह संपादित 'मलयज की डायरी' (2000 ई.) में सन 1951 से सन 1960 ई. तक के अनुभवों और विचारों को मलयज ने बहुत ही सुंदर तरीके से लिखा है।

3.4.4.6 समकालीन युग (2001 ई.- अब तक):

समकालीन युग में भी हिंदी डायरी साहित्य प्रभावी रूप में लिखा हजा रहा है। इस युग में बिशन टंडन की 'आपातकाल की डायरी भाग 1 और 2, नरेंद्र मोहन की 'साथ-साथ मेरा साया' इन डायरी लेखन से प्रारंभ होता है। इसके बाद प्रवासी भारतीय साहित्यकार तेजिंदर शर्मा की 'डायरी सागा सागा', कृष्ण बलदेव वैद की 'ख्वाब दीवाने होते हैं' नामक डायरी मशहूर है। इसमें लेखक ने अपने विदेश जीवन की दैनंदिनी और वहाँ के अनुभवों को डायरीबद्ध किया है। इसके साथ ही विवेकी राय 'मनबोध मास्टर की डायरी', रामदरश मिश्र की 'आते जाते दिन', साधना अग्रवाल की 'बेतरतीब तिथियों में कहाँ मैं मिलूँ', रमेशचंद्र शाह की 'अकेला मेला', रामदरश मिश्र की 'आसपास', चंद्रकला त्रिपाठी की 'इस उस मोड पर', रमेशचंद्र शाह की 'इसी खिड़की से', देवेंद्र मेवाड़ी कृत 'मेरी विज्ञान डायरी', रमेशचंद्र शाह की 'आज और अभी', जाबिर हुसैन की 'जिंदा होने का सबूत', आग्नेय की 'शब्दातीत', सत्यनारायण की 'यायावरी की डायरी' और 'दुःख किस कंधे

पर', निदा नवाज की 'सिसकियाँ लेता स्वर्ग', दर्वेद्र सिंह की 'सहरसा की डायरी', द्रोणवीर कोहली की 'मनाली में गंगा उर्फ रोजनामचा', कृष्णा अग्रिहोत्री की 'अफसाने अपने कहानी अपनी', गरिमा श्रीवास्तव की 'देह ही देश', गोविंद प्रसाद की 'ख्वाब है दीवाने का' और 'आलाप और अंतरंग', कथाकार लीलाधर मंडलोई की 'दिन-दिन के फेर', प्रो. अवधेश प्रधान द्वारा संपादित 'त्रिलोचन की डायरी' आदि रचनाओं ने डायरी साहित्य को समृद्ध किया है।

4 स्वयंअध्ययन के लिए प्रश्न :

(अ) निम्नलिखित प्रश्नों के सही विकल्पों को चुनिए।

- हिंदी में 'जीवनी' का अर्थ क्या है?
अ. कहानी ब. कविता
क. नाटक ड. किसी व्यक्ति का जीवन वर्णन
- 'आवारा मसीहा' इस जीवन के लेखक कौन है?
अ. विष्णु प्रभाकर ब. शरतचंद्र चटोपाध्याय क. मुंशी प्रेमचंद ड. अमृतराय
- 'आवारा मसीहा' यह किस पर लिखी जीवनी है।
अ. विष्णु प्रभाकर ब. शरतचंद्र चटोपाध्याय क. मुंशी प्रेमचंद ड. अमृतराय
- जीवनी साहित्य में कौन-सा तत्व आवश्यक होता है?
अ. कल्पना ब. तथ्यात्मकता क. अलंकार ड. छंद
- 'प्रेमचंद घर में' जीवनी की लेखिका कौन हैं?
अ. महादेवी वर्मा ब. मन्नू भंडारी क. शिवरानी देवी ड. कृष्णा सोबती
- हिंदी में संस्मरण विधा का प्रारंभ करने का श्रेय किसे दिया जाता है?
अ. बनारसीदास चतुर्वेदी ब. बालमुकुंद गुप्त क. रामवृक्ष बेनीपुरी ड. महादेवी वर्मा
- 'पथ के साथी' संस्मरण में लेखिका ने किसके संस्मरण लिखे हैं।
अ. पारिवारिक सदस्य ब. क्रांतिकारी क. समकालीन साहित्यकार ड. ग्रामीण पात्रों के
- पद्मसिंह शर्मा की कौनसी रचना को हिंदी का प्रथम संस्मरण माना जाता है?
अ. पद्मपराग ब. पथ के साथी क. माटी की मूर्तें ड. चलचित्र
- राहुल सांकृत्यायन के संस्मरण का नाम क्या है?

- अ. मुझे याद है ब. ये और वे क. बचपन की स्मृतियाँ ड. स्मृति कण
10. 'रिपोतार्ज' लेखन का सूत्रपात कौनसे युद्ध के वर्णनों से माना जाता है?
- अ. भारत-पाक (1962) ब. प्रथम विश्वयुद्ध (1914)
- क. द्वितीय विश्वयुद्ध (1938) ड. भारत-चीन (1965 ई.)
11. हिंदी रिपोतार्ज लेखन का जनक किसे माना जाता है।
- अ. भारतेन्दु ब. शिवदानसिंह चौहान क. प्रेमचंद ड. निराला
12. 'बंगाल का आकाल' (1944 ई.) इस रिपोतार्ज के लेखक कोन है?
- अ. रांगेय राघव ब. शिवदानसिंह चौहान क. फणीश्वरनाथ रेणु ड. राजेंद्र यादव
13. रिपोतार्ज में कौनसा गुण अनिवार्य होता है?
- अ. हास्य-व्यंग्य ब. अलंकार क. प्रत्यक्षदर्शी विवरण ड. कल्पना
14. दुनिया में रिपोतार्ज लेखन के जनक किसे माना जाता है?
- अ. इलिया एहरेनवर्ग ब. टी.एस. इलियट क. शेक्सपियर ड. बर्नार्ड शॉ
15. 'डायरी' साहित्य किस विधा के अंतर्गत आता है?
- अ. उपन्यास ब. कहानी क. व्यक्तिगत विधा ड. कविता
16. डॉ. हरिवंश राय बच्चन ने इंग्लैण्ड में पीएचब.डी. शोधकार्य के दौरान कौनसी डायरी लिखी?
- अ. प्रवासी की डायरी ब. क्या भूलूँ क्या याद करूँ
- क. निशा निमंत्रण ड. मधुशाला
17. 'मलयज की डायरी' के संपादक कौन थे?
- अ. रामस्वरूप चतुर्वेदी ब. डॉ. नामवर सिंह क. डॉ. रामविलास शर्मा ड. डॉ. नगेंद्र

(आ) निम्नलिखित प्रश्नों के सही विकल्पों को चुनकर रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

1. 'जीवनी' को अंग्रेजी में कहा जाता है।
- अ. Novel ब. Biography क. Report ड. Diary
2. भारतेन्दु कृत को हिंदी की पहली जीवनी माना जाता है।
- अ. चरितावली ब. सुजान चरित्र क. भक्तमाल ड. पंचतंत्र

3. 'कलम का सिपाही' की जीवनी है।
अ. निराला ब. जयशंकर प्रसाद क. प्रेमचंद ड. यशपाल
4. 'कलम का सिपाही' जीवनी के लेखक है।
अ. अज्ञेय ब. अमृत राय क. रामविलास शर्मा ड. नामवर सिंह
5. 'माटी की मूर्तें' इस संस्मरण के लेखक है।
अ. महात्मा गांधी ब. काका कालेलकर क. रामवृक्ष बेनीपुरी ड. विष्णु प्रभाकर
6. 'पथ के साथी' इस संस्मरण की लेखिका है।
अ. संत मीराबाई ब. नासिकरा शर्मा क. कृष्णा सोबती ड. महादेवी वर्मा
7. 'संस्मरण' शब्द फ्रांसीसी शब्द से आया है।
अ. Memoir ब. Mind क. Memory ड. More
8. रामधारी सिंह दिनकर लिखित प्रसिद्ध संस्मरण है।
अ. गाँधी स्मृति ब. लोकदेव नेहरू क. जवाहर भाई ड. मेरे हृद देव
9. कृष्णा सोबती की संस्मरणात्मक रचना है।
अ. हम हशमत ब. यादें और बातें क. दीवानखाना ड. स्मृतियों के छंद
10. शिवदान सिंह कृत रचना को हिंदी का पहला रिपोतार्ज माना जाता है।
अ. बाजार हाठ ब. लक्ष्मीपुरा क. बंगाल का अकाल ड. तूफानों के बीच
11. रिपोतार्ज यह रचना से प्रेरित है।
अ. कहानी ब. उपन्यास क. पत्रकारिता ड. रेखाचित्र
12. 'एकलव्य के नोट्स' इस रिपोतार्ज के लेखक है।
अ. फणीश्वरनाथ रेणु ब. काका कालेलकर
क. रामवृक्ष बेनीपुरी ड. विष्णु प्रभाकर
13. रिपोतार्ज मूल रूप से भाषा का शब्द है।
अ. संस्कृत ब. हिंदी क. फ्रेंच ड. अंग्रेजी
14. भारतेन्दु हरिश्चंद्र की डायरी के पन्ने उनकी रचना में देखने मिलते हैं।

- अ. अंधेर नगरी ब. सतीप्रताप क. कालचक्र ड. कविवचन
15. 'मेरी जेल डायरी' इस डायरी के लेखक है।
- अ. मुक्तिबोध ब. यशपाल क. प्रेमचंद ड. निराला
16. 'डायरी' के लिए हिंदी में शब्द है।
- अ. रिपोर्टाज ब. स्मृतियाँ क. रोजनामचा ड. रोज लेखन

5 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ :

- * **भारतेंदु युग :** हिंदी साहित्य में सन् 1850-1900 ई. का कालखंड भारतेंदु युग नाम से जाना जाता है। इसे हिंदी साहित्य के आधुनिक काल का प्रथम चरण माना जाता है, जिसका नामकरण महान साहित्यकार भारतेंदु हरिश्चंद्र के नाम पर हुआ है।
- * **द्विवेदी युग :** हिंदी साहित्य में सन् 1900-1920 ई. का कालखंड द्विवेदी युग नाम से जाना जाता है। इसे 'जागरण सुधार काल' भी कहा जाता है, जिसका नामकरण महान साहित्यकार और 'सरस्वती' पत्रिका के संपादक आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी जी के नाम पर हुआ है।
- * **प्रगतिवादी युग :** हिंदी साहित्य में सन् 1936-1943 ई. तक का कालखंड मार्क्सवादी विचारधारा से प्रेरित साहित्य का रहा जो हिंदी में प्रगतिवादी युग से पहचाना जाता है। इसमें 'कला जीवन के लिए' का समर्थन किया गया और आम इंसान के जीवन और पूँजीवाद के विरोध में सामाजिक वास्तविकता को महत्त्व दिया गया।
- * **साठोत्तरी युग:** हिंदी साहित्य में सन् 1960 के बाद के मोहभंग, व्यवस्था-विरोध और नवीन प्रयोग के युग को साठोत्तरी युग कहा गया है। इस युग में नयी कविता, नयी कहानी आदि आंदोलन चले।
- * **भारतेंदु हरिश्चंद्र :** आधुनिक हिंदी साहित्य के जनक और प्रवर्तक के रूप में भारतेंदु हरिश्चंद्र (1850-1885 ई.) को पहचाना जाता है। उन्होंने हिंदी साहित्य में गद्य की शुरुआत और खड़ी बोली को प्रस्थापित करने की पहल की थी। उनके योगदान के कारण हिंदी साहित्य के पले चरण का नाम भारतेंदु युग रखा गया है।
- * **आ. महावीर प्रसाद द्विवेदी :** हिंदी साहित्य के एक युगप्रवर्तक, निबंधकार और संपादक थे। उन्होंने 'सरस्वती' पत्रिका के माध्यम से हिंदी भाषा को परिष्कृत करके खड़ी बोली को साहित्य में प्रतिष्ठित किया। उनके उल्लेखनीय योगदान के कारण हिंदी साहित्य में 1900-1920 के कालखंड को 'द्विवेदी युग' के नाम से जाना जाता है।
- * **चंपू :** गद्य और पद्य मिश्रित काव्य को चंपू कहा जाता है। इसमें कहानी या विवरण गद्य में होता है और बीच-बीच में भावों को व्यक्त करने के लिए कविताओं को शामिल किया जाता है।

- * **बहिर्जगत्** : बाहर की दुनिया, बाहर का दृश्यमान या संसार । समाज और बाहरी परिस्थितियों को दर्शाता है।
- * **संत परचई** : मध्यकाल में संतों के जीवन एवं रचनाओं की जानकारी देने हेतु लिखा लिखी जाने वाली रचना को 'संत परचई' अर्थात् संतों का परिचय कहा जाता था।
- * **नाभादास** : हिंदी भक्तिकालीन साहित्य के एक महान रामभक्त कवि, संत और दार्शनिक थे। इनका कालखंड 1537-1719 के बीच का माना जाता है। 'भक्तमाल' उनका प्रसिद्ध ग्रंथ है जिसमें सत्य युग से लेकर कलियुग के महान वैष्णव संतों और भक्तों के जीवन चरित्र का वर्ण है।
- * **संत कबीर** : 15 वीं सदी के एक महान रहस्यवादी कवि, समाज सुधारक और दार्शनिक संत थे। हिंदी साहित्य में निर्गुण शाखा के प्रमुख कवि थे।
- * **वैष्णवन** : भगवान विष्णु या उनके अवतारों (जैसे कृष्ण, राम) के भक्तों को वैष्णवन कहा जाता है।
- * **चारण काव्य** : राजस्थान और गुजरात में आदिकाल (700-1300 ई.) के दौरान चारण कवियों द्वारा लिखे गए वीर रस प्रधान काव्यों चारण काव्य कहा जाता है। जैसे- पृथ्वीराज रासो, खुमान रासो, परमाल रासो, बिसलदेव रासो आदि।
- * **शैशव स्मृति** : बचपन, शिशु होने की अवस्था की यादें।
- * **मेगास्थिनीज** : यह एक प्राचीन यूनानी इतिहासकार, राजनयिक और भूगोलवेत्ता था। इसका कालखंड (350 ईसा पूर्व- 290 ईसा पूर्व तक था। यूनानी शासक सेल्यूकस प्रथम निकेटर के राजदूत के रूप में मौर्य सम्राट चंद्रगुप्त मौर्य के दरबार में आया था।
- * **हुवेनसांग** : ये सातवी सदी के एक प्रसिद्ध चीनी बौद्ध भिक्षु, विद्वान और यात्री थे। वे ज्ञान की खोज में पैदल ही चीन से भारत में आए थे और यहाँ के लोग में 15 वर्षों तक रहे।
- * **फाह्यान** : एक चीनी बौद्ध भिक्षु और यात्री थे, जो पाँचवी शताब्दी के प्रारंभ में भारत आए। उनका मुख्य उद्देश्य बौद्ध धर्म के पवित्र ग्रंथों की खोज करना और उन्हें चीन ले जाना था।
- * **मार्को पोलो** : मार्को पोलो इटली के वेनिस शहर के एक प्रसिद्ध व्यापारी, खोजी यात्री और लेखक था। 13 वीं शती में सिल्क रोड के माध्यम से एशिया की यात्रा करने वाले और चीन पहुँचने वाले पहले यूरोपीयन थे।
- * **सूचनांकन** : किसी विशिष्ट विषय पर प्रासंगिक जानकारी या सामग्री को खोजने, उसे चुनने, व्यवस्थित करने और उसे दूसरों के साथ साक्ष करने की प्रक्रिया से है।

- * **सवाकब चित्रपट** : बोलती फिल्म या ध्वनि वाली फिल्म को सवाकब चित्रपट कहते हैं। भारत की पहली सवाकब फिल्म 'आलम आरा' (1931 ई.) थी।
- * **इलिया ग्रिगोरीविच एहरेनबर्ग** : सोवियत की एक प्रमुख लेखक, कवि, पत्रकार और युद्ध संवाददाता थे। उन्होंने दूसरे विश्वयुद्ध के दौरान (1938 ई.) सबसे प्रभावशाली सोवियत प्रचारकों में से एक माना जाता है।
- * **विद्रोहवादी चेतना** : अन्याय, शोषण, दमन या स्थापित गलत व्यवस्था के विरुद्ध आवाज उठाने वाली वैचारिक समझ को विद्रोहवादी चेतना कहा जाता है। समाज को बदलने के लिए वह क्रांति का रास्ता चुनती है।

6 स्वयंअध्ययन प्रश्नों के उत्तर :

(अ) के उत्तर

1. ड. किसी व्यक्ति का जीवन वर्णन 2. अ. विष्णु प्रभाकर 3. ब. शरतचंद्र चटोपाध्याय
4. ब. तथ्यात्मकता 5. क. शिवरानी देवी 6. ब. बालमुकुंद गुप्त
7. क. समकालीन साहित्यकार 8. पद्मपराग 9. क. बचपन की स्मृतियाँ
10. क. द्वितीय विश्वयुद्ध (1938) 11. ब. शिवदानसिंह चौहान
12. अ. रांगेय राघव 13. क. प्रत्यक्षदर्शी विवरण 14. अ. इलिया एहरेनबर्ग
15. क. व्यक्तिगत विधा 16. अ. प्रवासी की डायरी 17. ब. डॉ. नामवर सिंह

(आ) के उत्तर :

1. ब. Biography 2. अ. चरितावली 3. क. प्रेमचंद
4. ब. अमृत राय 5. क. रामवृक्ष बेनीपुरी 6. ड. महादेवी वर्मा
7. अ. Memoir 8. ब. लोकदेव नेहरू 9. अ. हम हशमत
10. ब. लक्ष्मीपुरा 11. क. पत्रकारिता 12. अ. फणीश्वरनाथ रेणु
13. क. फ्रेंच 14. क. कालचक्र 15. ब. यशपाल
16. क. रोजनामचा

3.7 सारांश :

1. किसी व्यक्ति के विशेष जीवन की सत्य घटनाओं, संघर्षों और उपलब्धियों पर साहित्यिक लेखन को जीवनी कहा जाता है।

2. हिंदी साहित्य में भारतेंदु युग में जीवन साहित्य का उद्भव हुआ और आगे निरंतर वह विकसित हुई। नाभादास कृत 'भक्तमाल' हिंदी का सबसे पुराना जीवनी साहित्य माना जाता है। कार्तिकप्रसाद खत्री ने हिंदी जीवनी का बीजारोपन किया। आधुनिक काल में रामविलास शर्मा कृत 'निराला की साहित्य साधना', शांति जोशी कृत 'सुमित्रानंदन पंत-जीवन और साहित्य', जगदीशचंद्र माथुर कृत 'जिन्होंने जीना जाना', शिवप्रसाद सिंह कृत 'उत्तर योगी-श्री अरविंद', महावीर प्रसाद द्विवेदी कृत 'प्राचीन पंडित और कवि' उल्लेखनीय जीवनियाँ हैं।
3. रचनाकार द्वारा स्मृति को आधार बनाकर किसी व्यक्ति, घटना या दृश्य का कलात्मक और तटस्थ चित्रण करनेवाली साहित्य विधा को संस्मरण कहा जाता है।
4. हिंदी संस्मरण साहित्य की शुरुआत द्विवेदी युग में हुई और छायावादी युग में इसका विकास हुआ। महादेवी वर्मा, बनारसीदास चतुर्वेदी, रामवृक्ष बेनीपुरी उल्लेखनीय संस्मरणकार माने जाते हैं। महादेवी वर्मा कृत 'पथ के साथी', 'मेरा परिवार', 'स्मृति की रेखाएँ', बनारसी चतुर्वेदी कृत 'हमारे आराध्य', रामवृक्ष बेनीपुरी लिखित 'माटी की मूर्तें', 'जंजीरे और दीवारें' आदि रचनाएँ हिंदी संस्मरण साहित्य में मील का पत्थर मानी जाती हैं।
5. हिंदी रिपोतार्ज आधुनिक गद्य की एक नवीन विधा है जिसमें पत्रकारिता और साहित्य का संगम होता है। इसमें किसी घटना का कलात्मक और तथ्यात्मक वर्णन होता है जैसे- युद्ध, आकाल, सूखा, बाढ़ आदि घटना। द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान युद्धों के भीषण वर्णनों से इस विधा का सूत्रपात हुआ था।
6. हिंदी रिपोतार्ज में शिवदानसिंह चौहान के 'लक्ष्मीपुरा' (1938 ई.) को पहला रिपोतार्ज माना जाता है। इसके साथ ही रांगेय राघव कृत 'तूफानों के बीच', फणीश्वरनाथ रेणु कृत 'ऋण जल धन जल', उपेंद्रनाथ अशक का 'पहाड़ों में प्रेममय संगीत', विवेकी राय का 'बाढ़, बाढ़, बाढ़', मैत्रेयी पुष्पा का 'फाइटर की डायरी' आदि उल्लेखनीय रिपोतार्ज माने जाते हैं।
7. डायरी एक आत्मपरक गद्य विधा है जिसमें रचनाकार अपने दैनिक अनुभवों, भावनाओं और विचारों को तिथि के अनुसार लिखता है। इसका विकास मुख्य रूप से छायावादोत्तर कालखंड में हुआ।
8. हिंदी डायरी साहित्य में श्रीराम शर्मा लिखित 'सेवाग्राम की डायरी' (1946 ई.) को हिंदी की पहली डायरी माना जाता है। इसके साथ ही डॉ. धीरेंद्र वर्मा की 'मेरी कॉलेज डायरी', घनश्याम बिड़ला की 'डायरी के पन्ने', डॉ. हरिवंशराय बच्चन की 'एक प्रवासी की डायरी', यशपाल की 'मेरी जेल डायरी', नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ की 'नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ की जेल डायरी', मोहन राकेश की 'मोहन राकेश की डायरी', अज्ञेय की 'कवि की डायरी', रामधारी सिंह दिनकर की 'दिनकर की डायरी' आदि कृतियाँ उल्लेखनीय हैं।

3.8 स्वाध्याय :

अ) निम्नलिखित प्रश्नों पर टिप्पणियाँ लिखिए ।

1. 'जीवनी' का अर्थ और परिभाषा स्पष्ट कीजिए।
2. जीवनी की विशेषता स्पष्ट कीजिए।
3. 'संस्मरण' का अर्थ और परिभाषा स्पष्ट कीजिए।
4. संस्मरण की विशेषता स्पष्ट कीजिए।
5. 'रिपोतार्ज' का अर्थ और परिभाषा स्पष्ट कीजिए।
6. रिपोतार्ज की विशेषता स्पष्ट कीजिए।
7. 'डायरी' का अर्थ और परिभाषा स्पष्ट कीजिए।
8. डायरी की विशेषता स्पष्ट कीजिए।

आ) दीर्घोत्तरी प्रश्न :

1. जीवनी का अर्थ स्पष्ट करके हिंदी जीवनी साहित्य का उद्भव और विकास को स्पष्ट कीजिए।
2. संस्मरण का अर्थ स्पष्ट करके हिंदी संस्मरण साहित्य का उद्भव और विकास को स्पष्ट कीजिए।
3. रिपोतार्ज का अर्थ स्पष्ट करके हिंदी रिपोतार्ज साहित्य का उद्भव और विकास को स्पष्ट कीजिए।
4. डायरी का अर्थ स्पष्ट करके हिंदी डायरी साहित्य का उद्भव और विकास को स्पष्ट कीजिए।

3.9 क्षेत्रीय कार्य :

1. मराठी साहित्य के प्रमुख जीवनी साहित्य का अध्ययन करके हिंदी जीवनी से उसकी तुलनात्मक समीक्षा कीजिए।
2. मराठी के प्रमुख संस्मरणों की सूची बनाकर कक्षा में उसपर चर्चा कीजिए।
3. आपने की किसी पर्यटन यात्रा के अनुभवों को आधार बनाकर उसपर रिपोतार्ज बनाए।
4. आगामी एक महीने की अपने जीवन के दैनंदिन कार्यों की डायरी लिखकर परियोजना बनाए।

3.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए :

1. खन्ना शांति (डॉ.), आधुनिक हिंदी का जीवनीपरक साहित्य, (प्र.सं. 1973 ई.), सन्मार्ग प्रकाशन, नई दिल्ली।
2. भारद्वाज भगवानशरण, हिंदी जीवन साहित्य : सिद्धांत और अध्ययन, (प्र.सं. 1978 ई.), परिमल प्रकाशन, इलहाबाद।

3. दुबे माधुरी (डॉ.) हिंदी गद्य का वैभव काल, (प्र.सं. 1966 ई.), आत्माराम एण्ड सन्स पब्लिकेशन, दिल्ली।
4. तिवारी रामचंद्र (डॉ.), संस्मरण और रेखाचित्र, (प्र.सं. 1977 ई.), आलेख प्रकाशन, नई दिल्ली।
5. वर्मा वीरपाल, हिंदी रिपोर्टाज, (प्र.सं. 1987 ई.), कुसुम प्रकाशन, मुजफ्फरनगर-बिहार।
6. छाबड़ा मनोज, हिंदी डायरी साहित्य स्वरूप और विकास, (प्र.सं. 2019 ई.) बोधी प्रकाशन, कानपुर।



आधुनिक साहित्य के अधुनातन आयाम

अनुक्रम

4.1 उद्देश्य

4.2 प्रस्तावना

4.3 विषय विवेचन

4.3.1 स्त्री-विमर्श का सामान्य परिचय

4.3.2 दलित विमर्श का सामान्य परिचय

4.3.3 किसान विमर्श का सामान्य परिचय

4.3.4 अल्पसंख्यक विमर्श का सामान्य परिचय

4.4 स्वयंअध्ययन के लिए प्रश्न

4.5 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ

4.6 स्वयंअध्ययन प्रश्नों के उत्तर

4.7 सारांश

4.8 स्वाध्याय

4.9 क्षेत्रीय कार्य

4.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए

4.1 उद्देश्य :

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद,

- ◆ छात्रों को हिंदी साहित्य की अधुनातन प्रवृत्तियों की जानकारी मिलेगी।
- ◆ छात्रों को विमर्शवादी साहित्य के स्वरूप की जानकारी मिलेगी।
- ◆ छात्रों को स्त्री विमर्श का सैद्धांतिक स्वरूप और हिंदी के स्त्री विमर्शवादी साहित्य की जानकारी मिलेगी।
- ◆ छात्र दलित विमर्श के सैद्धांतिक स्वरूप और हिंदी के दलित विमर्शवादी साहित्य को जान सकेंगे।
- ◆ छात्र किसान विमर्श के सैद्धांतिक स्वरूप और हिंदी के किसान विमर्शवादी साहित्य समझेंगे।
- ◆ छात्र अल्पसंख्यक विमर्श का सैद्धांतिक स्वरूप और हिंदी के अल्पसंख्यक विमर्शवादी साहित्य परिचित होंगे।

4.2 प्रस्तावना :

हिंदी साहित्य के इतिहास में आधुनिक काल की शुरुआत सन् 1843 से मानी जाती है। भारतीय समाज की दृष्टि से यह कालखंड नवजागरण का काल माना जाता है। भारत के सामाजिक एवं राजनीतिक परिवर्तन से हिंदी साहित्य भी प्रभावित हुआ। आधुनिक काल में हिंदी साहित्य रूढ़िग्रस्तता और सामंतवादी शिकंजे से मुक्त हुआ। साहित्य में आम जन जीवन का चित्रण होने लगा। भारतीय समाज में होने वाले विभिन्न संघर्षों, परिवर्तनों और नई चेतनाओं ने साहित्य को भी प्रभावित किया। इससे हिंदी साहित्य में विमर्शवादी साहित्य का प्रचलन बढ़ गया। 'विमर्श' यह शब्द अंग्रेजी के 'डिस्कोर्स' का पर्यायवाची रूपांतर है। अंग्रेजी साहित्य में सन् 1325-75 ई. की बीच इस शब्द का विकास हुआ। फादर कामिल बुल्के ने 'अंग्रेजी-हिंदी शब्दकोश' में 'Discourse' के हिंदी में भाषण, प्रवचन, प्रबंध, निबंध आदि अर्थ दिए हैं। बीसवीं सदी के अंतिम दशकों अर्थात् 1970-80 ई. से हिंदी में विमर्शवादी साहित्य लेखन की शुरुआत हुई। हिंदी में 'विमर्श' इस शब्द के प्रचार का श्रेय प्रो. सुधीश पचौरी को दिया जाता है। 'विमर्शवादी साहित्य' मूलतः किसी विषय, वर्ग या समस्या पर विशेष रूप से विवेचन करता है। विमर्शवादी साहित्य में समाज से सदियों से हाशिए पर रखे गए समाज की वेदना और उनके जीवनावश्यक सवालों का विवेचन होता है। इस दृष्टि से देखा जाए स्त्री, दलित, किसान, आदिवासी, किन्नर, वृद्ध और अल्पसंख्यक वर्ग भारतीय समाज व्यवस्था की जटिल संरचना के कारण सदियों से हाशिए पर रहे हैं। इन वर्गों के जीवन-संघर्ष, स्वाभिमान और उनके बुनियादी मानवीय अधिकारों से संबंधित साहित्य ही आगे 'विमर्शवादी साहित्य' के रूप में स्थापित हुआ है।

'स्त्री विमर्श' ने महिलाओं की सामाजिक स्थिति और उनके मानवीय अधिकारों पर लेखन किया। 'दलित विमर्श' में भारतीय समाज की जाति व्यवस्था के कारण दबे-कुचले वर्ग के नारकीय जीवन को प्रस्तुत करके

उनके मानवीय अधिकारों की प्रस्तुति दी गई है। 'किसान विमर्श' में भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ होने वाले किसानों की दुर्दशा पर विचार किया है। 'किन्नर विमर्श' में समाज में लिंगभेद के कारण हाशिए पर रहे किन्नरों के नारकीय जीवन को प्रस्तुत करके उन्हें समाज की मुख्यधारा में लेने हेतु लेखन हुआ है। 'आदिवासी विमर्श' में आदिवासियों के जबरदस्ती के विस्थापन और मानवीय अधिकारों पर विवेचन है। 'वृद्ध विमर्श' में भारतीय वृद्धों की समस्याओं पर विवेचन है तो 'अल्पसंख्यक विमर्श' में बहुसंख्यक समाज में भय एवं आतंक के माहौल में रहने वाले अल्पसंख्यकों के जीवन का विवेचन है। लेकिन प्रस्तुत इकाई में स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, किसान विमर्श और अल्पसंख्यक विमर्श का सैद्धांतिक स्वरूप और हिंदी साहित्य में उनके स्थान का सामान्य परिचय दिया है।

4.3 विषय विवेचन :

4.3.1 स्त्री-विमर्श का सामान्य परिचय :

हिंदी साहित्य में स्त्री को केंद्र में रखकर जो साहित्य लिखा गया है, उसे 'स्त्री विमर्श' साहित्य की संज्ञा दी गई है। स्त्री के घर-परिवार, समाज और देश-दुनिया में अस्तित्व, उसकी समस्या को लेकर स्त्री विमर्श में व्यापक स्तर पर चर्चा होती है। हिंदी स्त्री-विमर्शवादी साहित्य की जानकारी लेने से पूर्व 'स्त्री विमर्श' का अर्थ, परिभाषा, और उसकी विशेषताओं की संक्षिप्त जानकारी लेना जरूरी है।

4.3.1.1 'स्त्री विमर्श' का अर्थ :

'स्त्री विमर्श' यह शब्द स्त्री और विमर्श से बना है। 'स्त्री' का अर्थ है महिला या नारी और 'विमर्श' का अर्थ है, किसी विषय पर गहराई से विचार करके विवेचन करना। 'स्त्री विमर्श' को हिंदी में 'नारीवाद', 'नारी विमर्श', 'स्त्रीवाद' आदि नामों से भी संबोधित किया जाता है। अतः स्त्री या महिला को केंद्र में रखकर उसके जीवन से संबंधित समस्याओं, सामाजिक स्थिति, उसके मानवीय अधिकार, उसकी अस्मिता, सम्मान आदि पर गहराई से किया वैचारिक लेखन स्त्री विमर्श के अंतर्गत आता है। इस संदर्भ में कुछ विद्वानों की परिभाषाओं को देखना जरूरी है।

4.3.1.2 'स्त्री विमर्श' की परिभाषा :

स्त्री विमर्श के संदर्भ में विद्वानों की परिभाषा और अभिप्राय इसप्रकार है-

* सीमोन द बोउवार :

“स्त्री पैदा नहीं होती, बल्कि बना दी जाती है। समाज और पितृसत्तात्मक व्यवस्था स्त्री को 'अन्य' या पुरुष की तुलना में कमतर बनाकर रखती है।”

* फ्रेडरिक एंगल्स :

“निजी संपत्ति की अवधारणा ने ही मातृसत्ता का विनाश किया और नारी को पुरुष की वासना की दासी तथा संतान उत्पन्न करने का यंत्र मात्र बना दिया।”

*** विनयकुमार पाठक:**

“लिंग के आधार पर अनुभूति को अलगाने वाला विवेचन ही स्त्री-विमर्श है। स्त्रियों की दशा भी दलितों जैसी दयनीय है। यही कारण है कि दलित विमर्श के समानांतर स्त्री विमर्श भी आंदोलन की राह पर कदम से कदम मिलाकर बढ़ता रहा है।”

*** तसलिमा नसरीन :**

“अति विलास, अति वैभव, अति सफलता और उसके लिए चुकाए जाते मूल्य, किये जाते धिनौने समझौते अंततः नारी को कितना खोखला, कितना कंगाल, कितना दयनीय बना देते हैं, उसका मूर्तिमत्त उदाहरण है, स्त्री विमर्श।”

*** डॉ. कपिलदेव चौहान :**

“नारी जीवन और शरीर पर नारी के अधिकारों का ही दावा होना चाहिए। पुरुष समाज के विधान में परवश होकर एक गुलाम और शोषित का वह जीवन धर्म क्यों स्वीकार करें? स्त्री विमर्श में इसी विचारधारा का चित्रण होता है।”

*** प्रो. (डॉ.) प्रकाश कृष्णदेव :**

“नारी मुक्ति की अवधारणा के इर्द-गिर्द रचा गया साहित्य स्त्री-विमर्श माना गया है।”

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि ‘स्त्री विमर्श’ स्त्री जीवन को केंद्र में लिखा गया एक वैचारिक लेखन होता है। इसमें भारतीय पुरुषप्रधान व्यवस्था में लिंग भेद के आधार पर महिला को दुय्यम स्थान दिया है। उसके केवल भोग या संतान उत्पत्ति का यंत्र समझकर उसे स्वतंत्र मानव होने के अधिकार छिने गए। उसपर धर्म, परंपरा और संस्कृति के नाम पर अनेकों अत्याचार किए गए जिससे वह अपना अस्तित्व ही खो बैठी। स्त्री के इस खोए हुए अस्तित्व को वापस देना, उसे मानवीय अधिकार देना और उसके शोषण के खिलाफ आवाज उठाने वाला साहित्य ही स्त्री विमर्शवादी साहित्य कहलाता है।

4.3.1.3 ‘स्त्री विमर्श’ की विशेषताएँ :

‘स्त्री-विमर्श’ के अर्थ एवं परिभाषाओं के आधार पर स्त्री विमर्शवादी साहित्य की कुछ विशेषताएँ देखने मिलती है, वह इस प्रकार है-

1. स्त्री विमर्शवादी साहित्य में स्त्री के जीवन की समस्याओं, अधिकारों, स्वतंत्र अस्तित्व और सामाजिक स्थिति का विवेचन किया जाता है।
2. स्त्री के स्वाभिमान, आस्मिता, अस्तित्व एवं पहचान को स्थापित करना स्त्री विमर्श का उद्देश्य होता है।
3. स्त्री विमर्श में पितृसत्तात्मक व्यवस्था को विरोध करते हुए पुरुष ने अपनी भलाई के लिए बनाए

रूढ़ी, परंपरा और व्यवस्थाओं को तर्कनिष्ठ सवाल पूछकर उनके बंधनों का विरोध किया जाता है।

4. स्त्री विमर्शवादी साहित्य में प्रत्येक स्त्री के बुनियादी अधिकारों की माँग की जाती है। स्त्री के शिक्षा, रोजगार, संपत्ति, कानून आदि के क्षेत्र में समान अधिकार और सामाजिक सम्मान की वकालत की जाती है।
5. स्त्री विमर्शवादी साहित्य में भारतीय समाज व्यवस्था के जटिल बंधनों के कारण नारी की हुई दूर्दशा, उस पर होनेवाले मानसिक, शारीरिक आघात, अत्याचार, सामाजिक एवं पारिवारिक हिंसा, लिंगभेदभाव आदि समस्याओं का यथार्थ वर्णन किया जाता है, जिससे नारी जीवन की भयावहता सामने आए।
6. स्त्री विमर्शवादी साहित्य के माध्यम से स्त्री को अपने अधिकारों के प्रति सचेत करना, उन्हें अपने अधिकारों के लिए लड़ने की शक्ति प्रधान करना, उनमें जागरूकता लाकर संगठित करना और संघर्ष की प्रेरणा दी जाती है।
7. स्त्री विमर्शवादी साहित्य के माध्यम से महिला को आत्मनिर्भर और अपने फैसले लेने की स्वतंत्रता देना भी महत्वपूर्ण माना जाता है। जैसे कि वह शिक्षा, विवाह, व्यवसाय और अपना जीवन अपने विचारों से जीने के लिए प्रेरित हो।

4.3.1.4 हिंदी का 'स्त्री-विमर्शवादी' साहित्य का सामान्य परिचय :

हिंदी में प्राचीन काल से लिखे गए साहित्य में स्त्री का उल्लेख आया है। लेकिन स्त्री का वर्णन पुरुष की अनुगामिनी या पुरुष की विलासिता की पूर्ति या फिर पुरुष पथ की बाधा के रूप में आया है। वैदिक काल से लेकर रीतिकाल तक हिंदी साहित्य में स्त्री को शृंगार रस की परिपूर्ति के लिए या फिर संत साहित्य में माया या सिद्धि में बाधा के रूप में ही चित्रित किया गया है। यह मूलतः भारतीय समाज की पुरुष सत्तात्मक सोच का परिणाम था, जिसमें जान-बुझकर स्त्री को अबला कहकर उसे पुरुषों ने विविध बंधनों में जकड़ लिया था। वैदिक कालखंड में मैत्रेयी, गार्गी जैसी स्त्री विदुषियों ने भी लेखन किया लेकिन वह पुरुष प्रधान व्यवस्था में उतना प्रसिद्ध नहीं हुआ। छठी शती में पाली भाषा के बौद्ध ग्रंथ 'थेरीगाथा' में भिक्षुणियों के अनुभवों का वर्णन है जो स्त्री लेखन की परंपरा का प्रारंभिक प्रयास माना जाता है। मध्यकाल में संत मीराबाई ने इन बंधनों तोड़कर कृष्ण भक्ति के माध्यम से अपनी स्वतंत्र पहचान बनाई। यह विद्रोह हिंदी स्त्रीवादी साहित्य का बीज है। उन्नीसवीं शती में अंग्रेजी शिक्षा व्यवस्था के कारण समाज के नए पढ़े-लिखे बुद्धिजीवी वर्ग ने महिलाओं की सामाजिक समस्याओं को वाणी देना शुरू किया। म. ज्योतिबा फुले और सावित्रीबाई फुले ने स्त्री शिक्षा की नींव रखकर उनके लिए नई दुनिया के दरवाजे खुले किए। म. गांधीजी के नेतृत्व में खड़े किए गए स्वाधीनता आंदोलन में महिला भी पुरुष के साथ शामिल हुईं। राजाराम मोहन रॉय ने 'ब्रह्म समाज' (1928 ई.) के माध्यम से महिलाओं की सतीप्रथा, बालविवाह जैसी कुरीतियों पर व्यापक आंदोलन किए जिससे समाज महिलाओं की स्थिति को लेकर सजग होने लगा। गवर्नर जनरल लॉर्ड विलियम बेंटिक ने सन् 1829 को बंगाल सती नियमन कानून पारित करके सती प्रथा

विरोध की दिशा में पहल की और सन् 1987 ई. को सती निवारण अधिनियम से इसपर पूर्ण रोक लगाई गई। लेकिन कर्मठ समाज को अंग्रेजों एवं सुशिक्षित बुद्धिजीवियों के सामाजिक सुधार के कार्य अपने धर्म और संस्कृति में हस्तक्षेप लगने लगे। लेकिन स्त्री विमर्शवादी साहित्य की पृष्ठभूमि इन्हीं छोटे-छोटे प्रयासों से आकार ग्रहण करने लगी और साहित्यकार अपनी रचनाओं में स्त्री की दशा और दिशा के संदर्भ में लिखने लगे। हिंदी साहित्य के स्त्री विमर्शवादी साहित्य का विकास विभिन्न पड़ावों पर होता रहा, उसका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है-

4.3.1.4.1 भारतेन्दु और द्विवेदी युग का स्त्री विमर्शवादी लेखन :

हिंदी साहित्य में भारतेन्दु और द्विवेदी युग को नवजागरण कालखंड माना जाता है। समाज में विभिन्न स्तरों पर चेतना का विकास हुआ था। विभिन्न सामाजिक संगठनों के प्रयासों के कारण स्त्री की समस्याओं को पहली बार समाज के सामने लाने के प्रयास हुए। इससे प्रभावित इस कालखंड के साहित्यकारों ने विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से महिलाओं को केंद्र में रखकर लेखन करना शुरू किया था। लेकिन इस कालखंड के साहित्य में स्त्री को मातृत्व, त्याग, संयम आदि की प्रतिमूर्ति के रूप में पेश किया गया। 'बाला बोधिनी पत्रिका' (1874 ई.) यह विशेषकर महिलाओं के उत्थान और शिक्षा के मुद्दों को लेकर प्रबोधन करने के लिए साहित्यिक पत्रिका निकाली गई थी। भारतेन्दु जी ने 'स्त्री शिक्षा' निबंध लिखकर स्त्री की शिक्षा के महत्त्व को समझाने की कोशिश की। 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति', 'भारत दुर्दशा' और 'अंधेर नगरी' जैसे नाटक के द्वारा भारतेन्दु ने अंधविश्वास और सामाजिक कुप्रथाओं के कारण स्त्री की दुर्दशा को स्पष्ट किया। 'प्रेम जोगिनी' नाटक द्वारा वेश्यावृत्ति और समाज पर पनप रही कुरीतियों पर प्रहार किया।

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी जी ने स्त्री शिक्षा, उनके अधिकार, उसके आदर्श एवं सम्मान के संदर्भ में लेखन किया। अपने संपादकीय लेखों में आचार्य द्विवेदी जी ने बाल विवाह, अनमेल विवाह, पर्दा प्रथा आदि का खुलकर विरोध किया। आ. महावीर प्रसाद द्विवेदी जी ने 'सरस्वती' पत्रिका में सन् 1908 ई. को 'उर्मिला विषयक उदासनीता' नामक निबंध लिखकर उपेक्षित स्त्री पात्रों की ओर तत्कालीन साहित्यकारों का ध्यान खिंचा। इस युग के राष्ट्रकवि पं. मैथिलीशरण गुप्त ने 'साकेत' (1931 ई.) में उर्मिला जैसी रामायण की उपेक्षित पात्र की मानसिक वेदना को साकार करके स्त्री अस्मिता का परिचय दिया। उसके बाद 'यशोधरा' (1932 ई.) इस रचना के माध्यम से गौतम बुद्ध की पत्नी यशोधरा के स्वाभिमान और स्त्री पीड़ा का वर्णन किया। अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' जी ने 'प्रियप्रवास' (1914 ई.) में राधा को एक जन-कल्याण और समाजसेविका के रूप में दिखाकर स्त्री की पारंपरिक प्रेमिका की छवि को बदल दिया। इस कालखंड में राजेंद्र बाला घोष 'बंग महिला' ने अपने कथा साहित्य में स्त्री के अस्तित्व और उसके संघर्ष को व्यक्त करने की कोशिश की। उनकी 'दुलाईवाली' (1907 ई.), 'चंद्रदेव से मेरी बातें' (1904 ई.) आदि रचनाएँ उल्लेखनीय हैं। यशोदा देवी की 'सुबोध बालिका', 'सच्ची माता', 'वीर पत्नी', 'चित्तौड़ की चिता', 'भारत की नारी का इतिहास' आदि रचनाओं में स्त्री के स्वास्थ्य, वैवाहिक जीवन, आचारण संबंधी लेखन दिखाई देता है। स्त्री विमर्शवादी साहित्य की दृष्टि से स्त्री लेखन का पहला कदम था जिसमें स्त्री के स्वतंत्र अस्तित्व के बजाए उसे सम्मान एवं आदर्श की प्रतिमूर्ति में पेश किया गया।

4.3.1.4.2 छायावादी युग का स्त्री विमर्शवादी लेखन :

छायावादी कालखंड स्त्री विमर्शवादी लेखन के संदर्भ में नया सवेरा था। इसकालखंड के साहित्य में स्त्री श्रद्धा, सम्मान का पात्र बनकर उभरी। स्त्री के सात्विक एवं कोमल भावनाओं को आध्यात्मिक प्रेम के स्वरूप में व्यक्त किया जाने लगा। जयशंकर प्रसाद, महादेवी वर्मा, सुमित्रानंदन पंत जैसे कवियों ने नारी हृदय की वेदना को अपनी कविता और गीतों से व्यक्त करने की कोशिश की। उनके 'स्त्री के अर्थ का विस्तार' इस निबंध में भारतीय समाज में स्त्री के दोयम स्थान की मनोवैज्ञानिक चिकित्सा की गई है। सुभद्राकुमारी चौहान ने 'झाँसी की रानी' (1930 ई.) यह प्रसिद्ध कविता लिखकर स्वाधीनता संग्राम में महिलाओं के सहभाग के लिए चेतना निर्माण की। 'सरोज स्मृति' (1935 ई.) इस हिंदी साहित्य के सर्वश्रेष्ठ शोक-गीत के माध्यम से पिता-पुत्री के पवित्र रिश्ते, स्त्री के अधिकार, स्त्री शिक्षा और समाज में व्याप्त शोषण पर मार्मिक लेखन किया है। 'जागो फिर एक बार' (1930 ई.) और 'तुलसीदास' (1934 ई.) इन रचनाओं में भारत की पुरुषवादी व्यवस्था की जटिलता पर प्रहार करके नारी मुक्ति और उसके स्वतंत्र अस्तित्व के महत्व को विशद किया है। जयशंकर प्रसाद ने 'कामायनी' (1936 ई.) जैसे महाकाव्य में कवियों ने 'नारी तुम केवल श्रद्धा हो' कहकर नारी के सात्विक एवं श्रद्धापूर्ण छवि को स्थापित करने का कार्य किया। उन्होंने श्रद्धा को प्रेमिका के पारंपारिक साँचे से बाहर निकालकर मनुष्य को कर्म, ज्ञान और हृदय का संतुलन सिखाने वाली शिक्षिका के रूप में पेश किया है। मूलतः यह स्त्री चेतना का ही प्रतीक है। इस कालखंड के कथा-साहित्य में प्रेमचंद जी के 'निर्मला' (1927 ई.), 'सेवासदन' (1918 ई.), 'प्रतिज्ञा' (1929 ई.), 'वरदान' (1921 ई.), 'गबन' (1931 ई.), 'रंगभूमि' (1925 ई.), 'कर्मभूमि' (1932 ई.) आदि उपन्यासों के माध्यम से सामाजिक कुरीतियों में फँसी महिला, ग्रामीण और दलित स्त्री की चेतना आदि का सूक्ष्म वर्णन आया है। इस कालखंड के साहित्य में स्त्री की आंतरिक भावनाओं को ज्यादा प्रमुखता दी।

4.3.1.4.3 प्रगतिवादी युग का स्त्री विमर्शवादी लेखन :

प्रगतिवादी कालखंड ने वैश्विक स्तर पर उभरे आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक क्रांतियों के परिप्रेक्ष्य में स्त्रीवादी लेखन करने का प्रयास किया। यह कालखंड पूँजीवादी व्यवस्था के विरोध में उभरी सामाजिक चेतना का काल था। इसमें खासकर शोषक और शोषित इन दो वर्गों के परिप्रेक्ष्य में साहित्यकार लेखन कर रहे थे। इसकारण शोषितों की अगली कतार में स्त्री ही थी। वह पारिवारिक और सामाजिक स्तर पर पुरुषप्रधान पूँजीवादी व्यवस्था का शिकार हुई थी। घर में वह पति से प्रताड़ित थी और खेत-खलिहानों में जमींदार, कारखानों में मिल मालिकों के शोषण का शिकार हुई थी। यह शोषण शारीरिक, मानसिक और आर्थिक स्तर पर किया जा रहा था। सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' ने 'वह तोड़ती पत्थर' (1937 ई.) जैसी कविता के माध्यम से महिलाओं के शारीरिक श्रम को पहली बार सम्मान की नज़र से देखा। उनकी 'कुकुरमुत्ता' (1941 ई.) इस लंबी कविता में भी नारी का शोषण करने वाली सामंती संस्कृति पर व्यंग्य किया गया है। कवि सुमित्रानंदन पंत के 'युगवाणी' (1939 ई.) और 'ग्राम्या' (1940 ई.) में ग्रामीण भारत के महिलाओं के खासकर खेतिहर मजदूर महिलाओं के जीवन, सामाजिक समानता और शोषित महिलाओं का यथार्थ वर्णन आता है। रांगेय राघव ने 'पिघलते

पत्थर' (1940 ई.) और 'अजेय खंडहर' (1944 ई.) काव्यसंग्रहों में शोषित महिलाओं के प्रति गहरी संवेदना व्यक्त करते हुए उनकी विद्रोह भावना का भी वर्णन किया है। महादेवी वर्मा जी ने 'शृंखला की कड़िया' (1942 ई.) इस निबंध संग्रह में तत्कालीन नारी की स्थिति, नारी अशिक्षा, आर्थिक पराधीनता, पर्दा प्रथा आदि का विवेचन किया है। शिवदान सिंह चौहान ने 'प्रगतिवाद' (194२ ई.) इस आलोचनात्मक ग्रंथ में भारतीय समाज की आर्थिक स्थितियों पर चिकित्सा करते हुए शोषित वर्ग और महिलाओं की मुक्ति को जरूरी माना है। इसे हिंदी 'स्त्री विमर्श का पहला घोषणा-पत्र' माना जाता है। इस कालखंड में उपन्यासकार प्रेमचंद, यशपाल जैसे कथाकारों ने महिलाओं की स्थिति का सूक्ष्म वर्णन अपने उपन्यासों में किया है। यशपाल ने 'दादा कामरेड' (1941 ई.) और 'दिव्या' (1945 ई.) इन उपन्यासों में समाजवादी विचारधारा के परिप्रेक्ष्य में नारी की अस्मिता, यौन शोषण से मुक्ति का विवेचन किया है। प्रेमचंद जी के 'गोदान' (1936 ई.), इस उपन्यास में ग्रामीण भारत के किसान महिला की दयनीय स्थिति का वर्णन आया है।

4.3.1.4.4 आधुनिक और समकालीन स्त्री विमर्शवादी लेखन :

हिंदी साहित्य में स्त्रीवादी लेखन का सही परिचय सन 1970 के दशक के बाद से ही मिलना शुरू होता है। क्योंकि इस कालखंड में भारतीय परिवेश में स्त्रीवादी लेखन एक आंदोलन की रूप में उभर चुका था। 15 अगस्त, 1947 में भारत आजाद हुआ और 26 जनवरी, 1950 को भारत में संविधान लागू किया गया। दो ऐतिहासिक घटनाओं ने भारतीय महिलाओं के जीवन को पूरी तरह बदल दिया। आजादी के कारण भारत में व्यक्ति स्वातंत्र्य की चेतना उभरी थी और भारतीय संविधान ने हर व्यक्ति के अधिकारों को कानूनी अधिकार देने के कारण महिला अब अपने अस्तित्व एवं अधिकारों को लेकर सजग हो गई थी। उन्होंने पुरुष प्रधान व्यवस्था की दबू छवि को कब का पीछे छोड़ दिया था और वह अपने अधिकारों के लिए संगठित होकर आगे बढ़ने लगी। सन् 1960 ई. के बाद भारत ही नहीं बल्कि विश्व स्तर पर नारी उत्थान को लेकर हुई विभिन्न गतिविधियों के कारण नारी वर्ग में चेतना निर्माण हुई। भारत में स्वतंत्रतापूर्व काल में ही राजाराम मोहन राय, आ. केशवचंद्र सेन, महात्मा ज्योतिबा फुले दम्पति आदि समाजसुधारकों के प्रयासों से नारी चेतना की नींव रखी गई। आजादी के बाद भारत का संविधान बना और नारी अपने हक एवं अधिकारों को लेकर अधिक सजग हुई। सन् 1975 ई. को संयुक्त राष्ट्र ने विश्व महिला वर्ष घोषित किया। इससे प्रभावित भारत में कई महिला संगठन बने और उन्होंने 8 'मार्च विश्व महिला दिवस' के रूप में मनाना शुरू हुए। महिलाओं के लेकर विभिन्न कानून बनने के कारण उनके अधिकारों को मजबूती मिली।

आधुनिक और समकालीन कालखंड स्त्री विमर्शवादी लेखन के संदर्भ में समृद्ध कालखंड माना जाता है। क्योंकि इस कालखंड में स्त्री विमर्श लेखन स्वतंत्र विधा के रूप में उभर चुका था। हिंदी में कथा साहित्य के माध्यम से ही स्त्री विमर्शवाद को पहचान मिली है। स्त्री विमर्श लेखन को स्त्री की स्वानुभूति की यथार्थता को महत्वपूर्ण मानते हुए महिला द्वारा ही लिखे गए साहित्य को 'स्त्री विमर्श' के अंतर्गत रखने की पैरवी की जाने लगी। इसे लेकर विद्वानों में काफी मतभेद है। क्योंकि अनेक पुरुष लेखकों ने भी स्त्री विमर्शवादी लेखन के उद्देश्यों के अनुसार यथार्थवादी लेखन किया है। इस कालखंड में स्त्रीवादी लेखन में प्रमुख रूप से उषा प्रियंवदा, कृष्णा

सोबती, मन्नू भंडारी, मृदुला गर्ग, नासिरा शर्मा, प्रभा खेतान, चित्रा मुद्गल, गीतांजलि श्री, अनामिका, अलका सरावगी, कात्यायनी, ममता कालिया और सुधा आरोड़ा का स्थान विशेष उल्लेखनीय है।

स्वातंत्र्योत्तर कालखंड अर्थात् सन् 1947 से सन् 1960 ई. तक स्त्री के जीवन की समस्याओं, उसके सामाजिक एवं पारिवारिक संघर्ष का चित्रण इस कालखंड की के स्त्री लेखन में दिखाई देता है। इस दृष्टि से उषा प्रियंवदा का 'पचपन खंभे लाल दीवारें' उपन्यास विशेष प्रसिद्ध रहा है।

सन् 1960 से 1980 ई. तक का कालखंड स्त्री विमर्शवादी लेखन की दृष्टि से स्वतंत्र आंदोलन का दौर रहा है। इस कालखंड में स्त्री अपने स्वतंत्र अस्तित्व को लेकर बहुत ही सजग हुई। साहित्य में महिला के पारंपारिक छवि टूट गई और वह अपनी अस्मिता और अस्तित्व को लेकर पुरुष की आँखों में आँखे डालकर सवाल पूछने लगी। स्त्री चेतना का यह सशक्त दौर था। विवाह, प्रेम, देह, दाम्पत्य जीवन को लेकर स्त्री को जिन पारंपारिक बंधनों में उलझाकर रखा गया था उस बंधन को तोड़कर वह विद्रोह करने लगी। इस कालखंड में कृष्णा सोबती के 'मित्रो मरजानी', 'जिंदगीनामा', मन्नू भंडारी के 'आपका बंटी' और 'महाभोज', मृदुला गर्ग के 'चितकोबरा' और नासिरा शर्मा के मुस्लिम स्त्री जीवन पर आधारित उपन्यास और कथा-साहित्य स्त्री विमर्शवादी लेखन की दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय है।

सन् 1980 से लेकर 2000 ई. तक हिंदी स्त्री विमर्शवादी लेखन का व्यापक विस्तर हुआ। स्त्री विमर्श एक आंदोलन के रूप में सक्षम होने के कारण स्त्री के आर्थिक, राजनीतिक, लैंगिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक आदि अधिकारों और सूक्ष्म से सूक्ष्म पक्षों को लेकर गहराई से लेखन होने लगा। इस कालखंड में 'इदन्नमम्', 'अल्मा कबूतरी', प्रभा खेतान के 'छिन्नमस्ता, अन्या से अनन्या', चित्रा मुद्गल के 'आवाँ', 'पोस्ट बॉक्स नं. 203-नाला सोपारा', गीतांजलिश्री के आदि उपन्यासों में नारी मन की सूक्ष्म से सूक्ष्म परतों को खोलने का कार्य किया गया है।

समकालीन हिंदी स्त्रीवादी विमर्श लेखन अर्थात् 2000 ई. से लेकर अब तक के हुए स्त्रीवादी लेखन पर वैश्वीकरण का प्रभाव दिखाई देता है। इसकारण बाज़ारवाद, डिजिटल समाज, लैंगिक पहचान, दलित-अदिवासी स्त्री का परिवर्तित जीवन, अल्पसंख्य स्त्री जीवन के रूप और उनके सामाजिक प्रश्नों पर वर्तमान स्थितियों को परिप्रेक्ष्य में लेखन होने लगा है। अनामिका, अलका सरावगी, कात्यायनी, ममता कालिया, सुधा आरोड़ा आदि महिला लेखिकाओं ने महत्वपूर्ण लेखन किया है।

समकालीन दौर में कथा-साहित्य के साथ-साथ कविताओं के माध्यम से भी स्त्रीवादी लेखन होने लगा। इस संदर्भ में अनामिका का नाम विशेष उल्लेखनीय है। उन्होंने कविता और उपन्यास के माध्यम से स्त्री लेखन को वाणी दी है। उनके 'अवांतर कथा', 'दस द्वारे का पिंजरा' 'तिना तिनके के पास', 'आई का साज' आदि स्त्रीवादी उपन्यास हैं। तो 'कविता में औरत', 'खुरदरी हथेलियाँ', 'दूब-धान', 'अनुष्ठुप', 'बीजाक्षर', 'समय के शहर में' आदि काव्य-संग्रह स्त्रीवादी लेखन की दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय हैं। अलका सरावगी के 'कलिकथा वाया बाइपास', 'शेष कादंबरी', 'कोई बात नहीं', 'एक ब्रेक के बाद' आदि उल्लेखनीय उपन्यास हैं। कवयित्री

कात्यायनी सकालीन दौर की स्त्रीवादी और मार्क्सवादी विचारों की प्रमुख लेखिका मानी जाती है। उनके 'चेहरों पर आँच', 'सात भाइयों के बीच', 'इस पौरुषपूर्ण समय में', 'जादू नहीं कविता', 'फुटपाथ पर कुसी', 'राख-अंधेरे बारीश में' आदि काव्य-संग्रह समकालीन स्त्री विमर्शवादी लेखन में उल्लेखनीय स्थान रखते हैं। ममता कालिया के कथा-साहित्य में मध्यवर्गीय नारी के जीवन की समस्या, दाम्पत्य जीवन की जटिलता और स्त्री मन की मनोवैज्ञानिक चिकित्सा देखने मिलती है। उनके उपन्यास- 'बेघर', 'नरक दर नरक', 'दुखमब सुखम', कहानी-संग्रह 'छुटकारा', 'उसका यौवन', 'जाँच अभी जारी है', प्रतिदिन', 'मुखौटा और थिएटर रोड के कौए', कविता संग्रह- 'सुनाई पड़ता है और 'रात का सफर' विशेष उल्लेखनीय रचना है। सुधा आरोड़ा के कहानी-संग्रह 'बगैर तराशे हुए', 'युद्ध विराम', 'महानगर की मैथिली', 'काला शुक्रवार', 'काँसे का गिलास', 'और रहोगी तुम वही', उपन्यास- 'यहीं कहीं था घर', आलोचना ग्रंथ 'आम औरत : जिंदा सवाल', 'एक औरत की नोटबुक' प्रमुख रचनाएँ हैं।

संक्षेप में कह सकते हैं कि हिंदी साहित्य में वैदिक कालखंड से अब तक स्त्री केंद्रित साहित्य विकसित होता आया है। वैदिक काल में स्त्री को आदर्श स्वरूप को दर्शाते हुए उसे पुरुष प्रधान व्यवस्था के बंधनों में उलझाकर रखा गया। मध्यकाल में वह माया के रूप में सिद्धी के पथ की बाधा बनी। रीतिकाल में उसे भोग की वस्तु मानकर दासी बनाया गया और शृंगार रस की पुष्ठीकरण के लिए उसके बीभत्स वर्णन किए गए। आधुनिक काल में नवजागरण की बौदल सही मायनों में समाज स्त्री के अस्तित्व के प्रति सजग हुआ और सन् 1970 ई. से हिंदी में स्वतंत्र रूप से स्त्री विमर्शवादी लेखन शुरू हुआ और समकालीन युग में वह एक स्वतंत्र विधा के रूप में अपना स्थान स्थापित कर चुका है।

4.3.2 दलित विमर्श का सामान्य परिचय :

हिंदी साहित्य में दलित समाज जीवन को केंद्र में रखकर एक साहित्यिक आंदोलन चलाया गया, उसे ही 'दलित विमर्श' कहा जाता है। दलित विमर्श में सदियों से हाशिए पर रखे गए वर्गों की वेदना, दुःख, संघर्ष, शोषण का चित्रण करके उनके मानवीय अधिकारों को लेकर चेतना जागृत की जाती है। भारत के जाति और वर्णाश्रम व्यवस्था में सदियों से समाज के एक बहुत बड़े वर्ग को अस्पृश्य, निम्न जाति का मानकर मानवीय अधिकारों से वंचित किया गया। उन्हें हजारों वर्षों से सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक और शैक्षिक अधिकारों से वंचित रखकर जानवरों से भी बदतर जीवन जीने के लिए मजबूर किया गया। इस कारण दलित वर्ग वर्णाश्रम व्यवस्था के उच्च वर्ग द्वारा शोषित और पीड़ित रहा। लेकिन आधुनिक काल में शिक्षा के प्रचार-प्रसार, बीसवी शताब्दी के प्रारंभ में विभिन्न सामाजिक संगठनों के द्वारा किए गए समाज सुधार के प्रयास और भारतीय संविधान की निर्मिति के कारण दलित समाज अपने हक एवं अधिकारों के प्रति सचेत हुआ। दलित समाज की इस चेतना ने ही 'हिंदी दलित विमर्श' का आगाजा हुआ। हिंदी दलित विमर्शवादी साहित्य का परिचय लेने से पूर्व दलित विमर्श का अर्थ, परिभाषा, विशेषताओं को जानना जरूरी है। उसका सैद्धांतिक विवेचन इसप्रकार है-

4.3.2.1 'दलित विमर्श' का अर्थ :

'दलित विमर्श' यह शब्द 'दलित' और विमर्श इन दो शब्दों के योग से बना हुआ है। 'दलित' शब्द का अर्थ है दबाया हुआ, कुचला हुआ या शोषित पीड़ित समाज और 'विमर्श' का अर्थ है किसी विषय का गंभीर विवेचन, चिंतन या चर्चा करना। इस दृष्टि से समाज में हाशिए पर रखे या दबाए रखे शोषित समाज के जीवन पर गंभीर विवेचन करनेवाला साहित्य 'दलित विमर्श' कहलाता है। हिंदी में यह 'दलित साहित्य' के रूप में भी पहचाना जाता है। हिंदी साहित्य में 'दलित' शब्द के अर्थ को लेकर विद्वानों में काफी मतभेद है। कुछ लोग इस शब्द को जाति विशेष से प्रभावित मानते हैं तो, कुछ विद्वान इसके स्वाभाविक अर्थ को ग्रहण करते हैं। कालांतर में भारतीय समाज व्यवस्था में अस्पृश्य जातियों से ही 'दलित' शब्द चिपक गया है। लेकिन इसका व्यापक अर्थ दबाया गया समाज से है। कुछ विद्वान गरीब सवर्ण, सवर्ण स्त्री, किसान, मजदूरों को भी दलित की श्रेणी में लेते हैं, जो 'दलित' शब्द की व्यापकता को स्पष्ट करते हैं।

4.3.2.2 'दलित विमर्श' की परिभाषा:

'दलित विमर्श' को साहित्य के परिप्रेक्ष्य में समझने के लिए विद्वानों द्वारा दी गई 'दलित साहित्य' उनकी परिभाषाओं को देखना जरूरी है। वह इसप्रकार है-

* शरणकुमार लिंबाले :

“दलित साहित्य अपना केंद्र बिंदु मनुष्य को मानता है। बाबा साहब के विचारों से दलित को अपनी गुलामी का एहसास हुआ, उनकी वेदना को वाणी मिली, क्योंकि उस मूल समाज को बाबा साहब के रूप में अपना नायक मिला। दलितों की वह वेदना दलित साहित्य की जन्म-दात्री है। दलित साहित्य की वेदना 'मैं' की वेदना नहीं, वह बहिष्कृत समाज की वेदना है।”

* डॉ. कैवल भारती :

“हिंदी दलित साहित्य वह है, जो दलित मुक्ति के सवाल पर पूरी तरह अम्बेडकरवादी है। सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्रों में उसके सरोकार वे ही हैं, जो अम्बेडकर के थे। दलित साहित्य से अभिप्राय उस साहित्य से है, जिसमें दलितों ने स्वयं अपनी पीड़ा को रूपायित किया है। अपने जीवन-संघर्ष में दलितों ने जिस यथार्थ को भोगा है, दलित साहित्य उनकी उसकी अभिव्यक्ति का साहित्य है।”

* दलित चिंतक प्रो. तुलसीराम :

“आज की तारीख में डॉ. आम्बेडकर की व्यापकता ही दलित साहित्य की मुख्यधारा है।”

* डॉ. गंगाधर पानतावणे :

“दलित साहित्य आंदोलन, दलित मुक्ति संग्राम का एक अंग है। स्व की खोज अस्मिता की खोज का एक प्रभावी प्रयत्न है। दलित जीवन को चित्रित करने का प्रयत्न ही दलित साहित्य है।”

*** डॉ. नामवर सिंह :**

“दलित साहित्य दलितों द्वारा, दलितों के बारे में एवं दलितों के लिए है।”

*** डॉ. एन. सिंह :**

“दलित साहित्य दलित लेखकों द्वारा लिखित वह साहित्य है, जो सामाजिक, धार्मिक और मानसिक रूप से उत्पीड़ित लोगों की बेहतरी के लिए लिखा गया है।”

उपरोक्त विद्वानों की परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि दलित विमर्श मूलतः दलित वर्ग के जीवन की वेदना, शोषण और पीड़ा से जुड़ा साहित्य है, जो डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर की विचारधारा पर आधारित है। इस विचारधारा ने ही दलित विमर्श को एक साहित्यिक आंदोलन के रूप में प्रतिष्ठित किया है।

4.3.2.3 ‘दलित विमर्श’की विशेषताएँ :

‘दलित विमर्श’ मूलतः सदियों से हाशिए पर रहे दलित वर्ग के शोषित लोगों की जीवन-संघर्ष का विवेचन है। इसमें दलितों के शोषण के लिए जिम्मेदार सामाजिक व्यवस्था पर प्रहार करके दलितों की अस्मिता और अधिकारों के लिए जागरूक किया जाता है। इसकी प्रमुख विशेषताएँ इसप्रकार हैं-

1. दलित विमर्श में सदियों से समाज में हाशिए पर रखे उपेक्षित और पीड़ित समाज के संघर्ष की अभिव्यक्ति होती है।
2. दलित विमर्शवादी साहित्य का वैचारिक आधार डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर की प्रगतिशील विचारधारा है।
3. दलित विमर्श में भारतीय जाति एवं वर्णाश्रम व्यवस्था पर आधारित जातिभेद, छुआछूत और अस्पृश्यता का विरोध किया जाता है।
4. दलित विमर्श में दलित समाज में स्वाभिमान, अपने अस्तित्व के प्रति सजगता और आत्मगौरव की भावना को जागृत करता है।
5. दलित विमर्श में सौंदर्यवादी साहित्य के बजाए दलित समाज के कठोर जीवन की यथार्थ अभिव्यक्ति होती है। इसमें दलित समाज का वास्तविक अनुभव और स्वानुभूति की तीव्रता ज्यादा है। स्वानुभूति के कारण इसमें संवेदना और प्रामाणिकता ही दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र बना है।
6. दलित विमर्श में जाति, धर्म, वर्ण, वर्ग पर आधारित किए जाने वाले शोषण को विरोध किया जाता है। अन्याय के खिलाफ विद्रोह और संघर्ष की भावना की अभिव्यक्ति होती है।
7. दलित विमर्श में समस्त मानवों के लिए समता, बंधुता और समान अधिकारों की माँग करता है।
8. दलित विमर्श में केवल दलितों की कठोर जीवन की अभिव्यक्ति ही नहीं बल्कि सामाजिक परिवर्तन के लिए न्याय पर आधारित समाज निर्माण और सामाजिक परिवर्तन की माँग भी की जाती है।

9. दलित विमर्श साहित्य में मानवता को सर्वोपरि माना जाता है और मानवीय अधिकारों पर बल दिया जाता है।

10. दलित विमर्श की भाषा पारंपरिक साहित्य की सौंदर्यवादी और अलंकारवादी भाषा से भिन्न है। इसमें सरल, सुबोध जनभाषा का प्रयोग किया जाता है जो विद्रोहात्मक और प्रभावी होती है।

4.3.2.4 हिंदी 'दलित विमर्श' का सामान्य परिचय :

हिंदी के दलित विमर्शवादी साहित्य का अध्ययन करने से पूर्व दलित साहित्य सृजन की पृष्ठभूमि को जानना जरूरी है। हिंदी साहित्य में सन् 1970 ई. के बाद दलित साहित्य लिखा जाने लगा। लेकिन इसकी पृष्ठभूमि बनाने में विभिन्न संतों, महापुरुषों, समाजसुधारकों के प्रगतिवादी विचारों एवं आंदोलनों को महत्वपूर्ण माना जाता है। वरिष्ठ हिंदी साहित्यकार श्यौराज सिंह 'बेचैन' के अनुसार स्वामी अछूतानंद हरिहर ने सन् 1910 ई. में सर्वप्रथम 'दलित' शब्द का प्रयोग किया था। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी जी ने 'दलित' शब्द के प्रथम उच्चारक स्वामी विवेकानंद जी को माना है। लेकिन दलितों में जनचेतना निर्माण करके उनके आंदोलन को राष्ट्रव्यापी बनाने के लिए डॉ. बाबासाहेब अंबेडकर जी का कार्य महत्वपूर्ण माना जाता है। महर्षि चार्वाक, तथागत गौतम बुद्ध, महात्मा बसवेश्वर, संत कबीर, महात्मा ज्योतिबा फुले, राजर्षि शाहू महाराज आदि संतों-महापुरुषों के प्रगतिशील और मानवतावादी विचारों को ग्रहण करके डॉ. बाबासाहेब अंबेडकर जी ने भारत में दलितों के आंदोलन को राष्ट्रव्यापी बनाया। डॉ. अंबेडकर जी के विचार एवं कार्य को ही आगे 'आंबेडकरवादी विचारधारा' के रूप में पहचान मिली जो दलित विमर्श का प्रेरणा स्रोत बनी है। डॉ. अंबेडकर जी के 'लोक शिक्षा प्रसार मंडल' के 'दलित साहित्य सेवक संघ' से दलित साहित्य लेखन की नींव रखी गई। सन् 1960 ई. के बाद महाराष्ट्र में 'दलित पैथर्स' नामक राजनीतिक एवं सामाजिक संगठन ने 'दलित' शब्द का पूरजोर प्रचार-प्रसार किया। मराठी में ही सबसे पहले 'दलित विमर्श' साहित्य लिखा जाने लगा, जिसमें नामदेव ढसाळ, बाबूराव बागूल जैसे मराठी कवि और कहानीकारों को नाम विशेष उल्लेखनीय है। दलित विद्वानों ने महाराष्ट्र से नवजागरण और दलित मुक्ति के साहित्य का प्रारंभ होने की बात मानी है। मराठी में शुरू हुई दलित विमर्शवादी साहित्य से प्रेरणा ग्रहण करके सन् 1970 ई. से हिंदी में भी दलित विमर्श का साहित्य लिखा जाने लगा, जिसमें ओमप्रकाश वाल्मीकि, जयप्रकाश कर्दम, मोहनदास नैमिशराय आदि लेखकों का महत्वपूर्ण योगदान रहा। हिंदी दलित विमर्शवादी साहित्य का परिचय को इन मुद्दों के आधार पर समझते हैं-

4.3.2.4.1 हिंदी 'दलित विमर्श' का प्रारंभिक काल (1900-1970) :

हिंदी साहित्य में प्राचीन काल के धर्मग्रंथों 'रामायण', 'महाभारत' में दलित वर्ग पर अन्याय-अत्याचार होने की कहानियाँ भरी पड़ी है। उसमें 'शंबूक की हत्या', कर्ण को सूतपुत्र कहकर उपहास, द्रोणाचार्य द्वारा एकलव्य का अंगूठा माँगना आदि कहानियाँ दलितों के अत्याचार को बयां करती है। आदिकाल में सिद्धों और नाथों ने अपनी वाणियों में वर्ण व्यवस्था का विरोध किया जिसे मध्यकाल के संत कबीर जैसे कवियों ने ग्रहण किया। मध्यकाल में प्रगतिशील संतों ने अपनी वाणियों में समाज के सर्वहारा वर्ग, वंचित, निम्न जाति के लोगों

मानवतावादी दृष्टिकोण से देखा था। इन संतों ने ईश्वर की भक्ति पर इनका भी अधिकार होने की बात कही थी। लेकिन दलित विमर्श का यह साहित्य एकांगी था और इसमें दलितों के अत्याचार एवं वेदनादायी जीवन की झलक मात्र मिलती है। लेकिन जातिगत भेदभाव और वर्ण-व्यवस्था के अत्याचार के खिलाफ विद्रोह करके दलितों के मानवीय अधिकारों की माँग की शुरुआत सन् 1914 ई. में सरस्वती पत्रिका में प्रकाशित हीरा डोम की कविता 'अछूत की शिकायत' होती है। हिंदी के दलित आलोचकों के अनुसार यह कविता हिंदी दलित विमर्श की पहली रचना मानी जाती है। इस कालखंड में स्वामी अछूतानंद 'हरिहर' और संत राम जैसे समाज सुधारकों ने अपने सामाजिक आंदोलनों से दलित समाज में चेतना जगाई। सन् 1917 ई. में स्वामी अछूतानंद 'हरिहर' ने दिल्ली में एक विशाल अछूत सम्मेलन आयोजित किया था। उन्होंने अपनी कविता और नाटकों के द्वारा हिंदू धर्म के वर्णाश्रम व्यवस्था और जातिभेद का विरोध किया। उन्होंने 'आदिवंश का डंका' (1913-14 ई.) इस भजन एवं कविता संग्रह से हिंदू धर्म के जातिभेद पर प्रहार किया। उनकी 'मनुस्मृति से जलन' यह कविता बहुत लोकप्रिय हुई और इसे पहली दलित कविता माना जाता है। दलित नाटकों के सूत्रपात करने का श्रेय भी स्वामी अछूतानंद जी को जाता है। उनके 'मायानंद बलिदान' और 'रामराज्य न्याय' प्रमुख हैं। वे इन नाटकों में आर्य एवं ब्राह्मणों के वर्णाश्रम व्यवस्था के षड्यंत्र और दलितों से छल-कपट करने की साजिशों का पर्दापाश करते हैं। 'मायानंद बलिदान' में वेदविरोधी हिंदू साधु मायानंद के खिलाफ साजिश करके उन्हें नरमेध यज्ञ में बलि देने की कथा है तो 'रामराज्य' नाटक में शंबूक की हत्या का तार्किक विवेचन है। कुछ आलोचक स्वामी अछूतानंद जी को पहला दलित साहित्यकार मानते हैं। संतराम जी ने 'उषा', 'भारती', 'क्रांति', 'युगांतर' और 'विश्व ज्योति' पत्रिकाओं के माध्यम से दलित विमर्श को लेकर व्यापक प्रबोधन किया। उसके बाद हिंदी साहित्य में प्रेमचंद जी कहानी 'मंदिर', 'दूध का दाम', 'गुल्ली-डंडा', 'ठाकुर का कुआँ', 'सद्गति' और 'कर्मभूमि', 'रंगभूमि' और 'गोदान' इस उपन्यास में दलित जीवन की दूरदर्श को चित्रित किया गया है।

4.3.2.4.2 हिंदी 'दलित विमर्श' का विकास एवं उत्थान काल (1970-अब तक ई.) :

हिंदी दलित विमर्शवादी साहित्य को सन् 1970 ई. से स्वतंत्र पहचान मिलना शुरू हुई। मराठी दलित कविता, कहानियाँ और आत्मकथाओं के हिंदी अनुवादों से हिंदी में भी दलित विमर्शवादी साहित्य की जरूरत को महसूस किया जाने लगा। हिंदी में दलित विमर्श को स्थापित करने के लिए 'सारिका' इस साहित्यिक पत्रिका के अप्रैल, 1975 ई. और मई, 1975 में प्रकाशित 'दलित विशेषांक' का विशेष योगदान रहा है। कहानीकार सतीश की 'वचनबद्ध' (1975 ई.) को हिंदी की प्रथम दलित कहानी मानी जाती है। यह कहानी 'मुक्ति स्मारिका' में प्रकाशित हुई थी। हिंदी में दलित विमर्शवादी साहित्य में ओमप्रकाश वाल्मीकि, मोहनदास नैमिशराय, डॉ. धर्मवीर, जयप्रकाश कर्दम, श्यौराज सिंह 'बेचैन', शरणकुमार लिंबाले, कौशल्या बैसंत्री, 'सूरजपाल चौहान, डॉ. दयानंद बटोही, रत्नकुमार सांभरिया, डॉ. सुशीला टाकभौरे आदि का उल्लेखनीय योगदान रहा। इन रचनाकारों ने हिंदी प्रदेशों में दलित साहित्य को स्थापित करने और हिंदी के परंपरागत साहित्य में 'दलित विमर्श' का स्वतंत्र अस्तित्व निर्माण करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। हिंदी दलित विमर्शवादी साहित्य का अध्ययन मुख्य रूप से दलित साहित्यकार और दलित साहित्य के आलोचक के रूपों में किया जाता है। दलित

साहित्यकारों द्वारा लिखी गई आत्मकथाओं ने दलित विमर्श की यथार्थता को व्यापक स्तर पर स्थापित किया। वे महत्वपूर्ण दलित लेखक, उनकी रचनाओं और दलित आलोचकों की रचनाओं का सामान्य परिचय इस प्रकार है-

ओमप्रकाश वाल्मीकि हिंदी दलित विमर्श के विकास के महत्वपूर्ण कवि, कहानीकार और आत्मकथाकार के रूप में पहचाने जाते हैं। उनके काव्यसंग्रह 'सदियों का संताप' (1989 ई.), 'बस्स! बहुत हो चुका' (1997 ई.), 'अब और नहीं' (2009 ई.) 'शब्द झूठ नहीं बोलते' (2013 ई.), कहानीसंग्रह-'सलाम' (2000 ई.) और 'घुसपैठिये' (2003 ई.), आत्मकथा- 'जूठन' भाग - 1 (1997 ई.) और भाग -2 (2015 ई.), नाटक- 'दो चेहरे' (2011 ई.), आलोचना- दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र' (2001 ई.), 'मुख्यधारा और दलित साहित्य' (2010 ई.), 'दलित साहित्य: अनुभव, संघर्ष और यथार्थ' (2013 ई.) और 'सफाई देवता' (2014 ई.) आदि हिंदी दलित साहित्य की उल्लेखनीय रचनाएं हैं।

मोहनदास नैमिशराय हिंदी दलित साहित्य में एक वरिष्ठ कहानीकार और 'बयान' पत्रिका के संपादक के रूप में विशेष परिचित हैं। हिंदी दलित विमर्श की दृष्टि से उनके कविता संग्रह- 'सफदर एक बयान' (1989 ई.), 'आग और आंदोलन' (2000 ई.), नाटक - 'हॅलो कॉमरेड' (2001 ई.), 'अदालतनामा' (1989 ई.), कहानी-संग्रह- 'आवाजें' (1998 ई.), 'हमारा जवाब' (2005 ई.), उपन्यास- 'क्या मुझे खरिदोगे' (1990 ई.), 'मुक्तिपर्व' (1999 ई.), 'आज बाजार बंद है' (2004 ई.), आत्मकथा- 'अपने-अपने पिंजरे- भाग 1 (1995 ई.) और 'अपने-अपने पिंजरे-भाग 2' (2000 ई.) आदि उल्लेखनीय रचनाएं हैं।

जयप्रकाश कर्दम जी के उपन्यास - 'छप्पर' (1994 ई.), 'करूणा' (1986 ई.), कविता संग्रह- 'गूंगा नहीं था मैं' (1999 ई.), 'तिनका-तिनका आग' (2004 ई.), कहानी संग्रह- 'तलाश', आलोचना- 'वर्तमान दलित आंदोलन', 'अंबेडकरवादी आंदोलन-दशा और दिशा, डॉ. अम्बेडकर दलित और बौद्ध धर्म, हिंदुत्व और दलित: कुछ प्रश्न कुछ विचार, इक्कीसवीं सदी में दलित आंदोलन - साहित्य एवं समाज चिंतन, दलित विमर्श: साहित्य के आइने में, 'बौद्ध धर्म के आधार स्तंभ' आदि उल्लेखनीय रचनाएं हैं। साथ ही दलित विमर्श में कुछ महत्वपूर्ण दलित आत्मकथाओं का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है, जिसमें डॉ. तुलसीराम कृत 'मुर्दहिया' (2010 ई.) और 'मणिकर्णिका' (2013 ई.), डॉ. सुशीला टाकभैरे की आत्मकथा 'शिकंजे का दर्द' (2011 ई.), माताप्रसाद की आत्मकथा 'झोपड़ी से राजभवन तक' (2002 ई.), कौशल्या बैसंत्री की आत्मकथा 'दोहरा अभिशाप' (1999 ई.), सूरजपाल चौहान की आत्मकथा 'तिरस्कृत, संतप्त' (2002 ई.) आदि महत्वपूर्ण हैं।

दलित साहित्य के परिप्रेक्ष्य में आलोचनात्मक साहित्य बहुत लिखा गया। उसमें डॉ. अनामिका का 'दोहरी अभिशापता' (1999 ई.) श्यौराज सिंह 'बेचैन' के सामाजिक न्याय और दलित साहित्य (2014 ई.), डॉ. धर्मवीर के 'डॉ. आंबेडकर के प्रशासनिक विचार', दलित सिविल कानून, दूसारों की जूतियाँ, दलित चिंतन का विकास : अभिशाप चिंतन से इतिहास चिंतन की ओर', डॉ. सूर्यनारायण रणसुभे जी के 'डॉ. बाबासाहेब अंबेडकर, दलित चेतना की पहचान (2013 ई.), डॉ. यशवंत वीरोदेय के 'दलित शिखरों के साक्षात्कार' (2013 ई.), शरणकुमार लिंगबाले के दलित ब्राह्मण, दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र (2014 ई.), हिंदू, दलित

साहित्य : वेदना और विद्रोह, झुंड (2013 ई.), गेल ओमवेट के 'दलित दृष्टि', 'प्रज्ञा सूर्य बाबा साहब अंबेडकर' (2013 ई.), डॉ. एन सिंह के 'दलित चिंतन- अनुभव और विचार' (2014 ई.), संत शिरोमणि रैदास: वाणी और विचार (2013 ई.), दलित साहित्य के प्रतिमान (2012 ई.), रमणिका गुप्ता के 'दलित हस्तक्षेप' (2004 ई.), कृष्णदत्त पालिवाल के 'दलित साहित्य-बुनियादी सरोकार', 'उत्तर आधुनिकतावाद और दलित साहित्य', राम पुनियानी के 'सामाजिक न्याय: एक सचित्र परिचय', 'सांप्रदायिक राजनीति-तथ्य एवं मिथक', बद्री नारायण के उपेक्षितों का आत्म-इतिहास', रामाश्रय राय के सामुदायिकता का आधार-एक अनुशीलन', पी.एन. सिंह के अंबेडकर चिंतन और हिंदी दलित साहित्य, डॉ. सेवा सिंह के ब्राह्मणाद और जन विमर्श, तेज सिंह के 'दलित समाज और संस्कृति' (2007 ई.), अखिलेंद्र प्रताप सिंह के 'बहुजन उद्धारक कांशीराम और हिंदी दलित साहित्य' (2014 ई.) आदि उल्लेखनीय रचनाएं हैं।

संक्षेप में कह सकते हैं कि हिंदी में दलित विमर्शवादी साहित्य की नींव प्रगतीशील विचारधारा के संतों और समाज सुधारकों के आंदोलन से बनी। डॉ. बाबासाहेब अंबेडकर जी के नेतृत्व एवं कार्य से दलितों में नवचेतना निर्माण हुई। अंबेडकरवादी विचारधारा से प्रभावित होकर मराठी में 'दलित पैथर्स' (1972) में शामिल साहित्यकारों ने दलित साहित्य लेखन शुरू किया। उसके प्रभाव से हिंदी में सन् 1975 ई. से हिंदी दलित साहित्य लिखा जाने लगा जिसे दलित साहित्यकारों और दलित आलोचकों ने समृद्ध किया।

4.3.3 किसान विमर्श का सामान्य परिचय :

भारत कृषिप्रधान देश है। सदियों से भारत की अर्थव्यवस्था में कृषि और कृषक का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। वर्तमान समय में भी भारत के सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) में भारतीय कृषि उत्पादों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। रोजगार की दृष्टि से ही खेती क्षेत्र ही अग्रणी रहा है। भारतीय समाज व्यवस्था ही कृषिभिरुद्ध होने के कारण देश के सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक जीवन में किसानों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। लेकिन भारतीय समाज की विडंबना यह रही है कि जो किसान हाड़तोड़ मेहनत करके पूरे समाज के अन्न का प्रबंध करता है, वही किसान सदियों से उपेक्षा और शोषण का शिकार बना हुआ है। वह लंबे समय से प्राकृतिक समस्या, गरीबी, कर्ज, बाज़ार की अस्थिरता और सरकारी की कृषि एवं किसान विरोधी नीतियों का शिकार होता आया है। स्वतंत्रतापूर्व कालखंड से साहित्य एक बेबस और लाचार के रूप में किसान का जीवन चित्रित होते आया है। किसानों की दुर्दशा को दर्शाने वाला साहित्य विपुल मात्रा में हिंदी में देखने को मिलता है। लेकिन 'किसान विमर्श' के रूप में हिंदी साहित्य में लेखन सन् 1960 ई. के बाद हो रहा है। 'किसान विमर्श' के अंतर्गत किसान के जीवन संघर्ष, उसकी अस्मिता, अधिकार, सामाजिक न्याय, उसकी समस्या आदि को केंद्र में रखकर लेखन किया जाता है। हिंदी के किसान विमर्श साहित्य का अध्ययन करने से पूर्व किसान विमर्श का अर्थ, परिभाषा, विशेषताओं का सैद्धांतिक विवेचन जरूरी है।

4.3.3.1 'किसान विमर्श' का अर्थ:

'किसान विमर्श' को समझने के लिए किसान किसे कहते हैं? यह जानना जरूरी है। भारतीय समाज की

अधिकांश आबादी गाँव-देहातों में रहती है और उनके जीविका का प्रमुख आधार खेती करना है। खेती करने वाले को 'किसान' कहा जाता है। किसान का शाब्दिक अर्थ, खेतिहर या काश्तकार है। अंग्रेजी में उसके लिए Farmer शब्द है। खेती करना यह एक व्यापक प्रक्रिया है जिसमें जमीन की मशागत करना, पानी देना, बुआई करना, सिंचाई, खाद देना उसके बाद फसल की सालभर देखभाल करना, फसल की कटाई, सफाई करके बाज़ार तक पहुँचाना आदि काम शामिल होते हैं। अतः जिसकी जीविका का प्रमुख आधार खेती और खेती से जुड़े काम करना रहा है, उसे ही किसान कहना चाहिए। भारत में भूमि जोत के आधार पर बड़ा किसान, मध्यम किसान, छोटे किसान, सीमांत किसान, भूमिहीन किसान, पट्टेदार, बटाईदार, चरवाहा, स्त्री किसान आदि किसानों की श्रेणियाँ होती हैं। इसमें से बड़े क्षेत्र होने वाले किसान मूलतः जमींदार कहलाते हैं इसलिए किसान विमर्श की श्रेणी में वे नहीं आते हैं। किसान विमर्श के अंतर्गत सीमांत किसान और उसके नीचे आने वाले किसानों के जीवन का मार्मिक वर्णन किया जाता है। अतः इन काश्तकारों या किसानों के जीवन संघर्ष, उनकी पीड़ा, समस्याओं का गहराई से विवेचन करनेवाला साहित्य 'किसान विमर्श' की श्रेणी में आता है।

4.3.3.2 किसान विमर्श की परिभाषा:

साहित्य के परिप्रेक्ष्य में किसान विमर्श को परखने या जानने के लिए विद्वानों द्वारा दी गई परिभाषा या मतों को समझना जरूरी है। वह इसप्रकार है-

* प्रेमचंद :

“भूमि या तो ईश्वर की है जिसने उसकी सृष्टि की है या किसान की जो ईश्वरी इच्छा के अनुसार उसका उपयोग करता है। किसान के लिए उसकी जमीन सब कुछ है।”

* डॉ. रामविलास शर्मा :

“किसान भारतीय समाज की आधारभूत शक्ति है। किसान के जीवन-संघर्ष, उसकी आर्थिक स्थिति और सामाजिक भूमिका का साहित्यिक अध्ययन ही किसान विमर्श का मूल आधार है।”

* डॉ. नामवर सिंह :

“किसान विमर्श केवल कृषि या किसान की चर्चा नहीं है, बल्कि ग्रामीण जीवन, उत्पादन संबंधों और शोषण की संरचना का आलोचनात्मक विश्लेषण है।”

* डॉ. मैनेजर पांडेय :

“किसान विमर्श साहित्य में किसान समुदाय की अस्मिता, अधिकारों और उसके अस्तित्व के संकट को केंद्र में रखकर किया गया चिंतन है।”

* डॉ. पुरुषोत्तम अग्रवाल :

“किसान विमर्श उस सामाजिक चेतना का नाम है जो किसान के श्रम, संघर्ष और उसके मानवीय अधिकारों को साहित्य एवं समाज के केंद्र में स्थापित करती है।”

*** डॉ. अशोक कुमार :**

“कृषक समाजों के लिए कृषि कोई धंधा नहीं बल्कि उनकी जीवन शैली है। किसान अपनी जमीन से इतना जुड़ा होता है कि सब कुछ खोकर भी वह किसान बने रहना पसंद करता है। उस किसान के जीवन विषयक चिंतन का नाम ही ‘किसान विमर्श’ है।

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर कह सकते हैं कि ‘किसान विमर्श’ खेती करने वाले सीमांत किसान और उसके नीचे आने वाले अल्प भूधारक, खेती मजदूरों के जीवन की पीड़ा, संघर्ष, शोषण, अधिकार, अस्मिता और सामाजिक-आर्थिक समस्याओं का साहित्यिक दस्तावेज है।

4.3.3.3 किसान विमर्श की विशेषताएँ :

किसान विमर्श की उपरोक्त परिभाषाओं से किसान विमर्श की कुछ विशेषताएं सामने आती हैं, वह इसप्रकार है-

1. ‘किसान विमर्श’ में किसान के जीवन को केंद्र में रखा जाता है। इसमें अधिकांश सीमांत, अल्पभूधारक, बटाईदार, पट्टेदार, भूमिहीन वर्ग के किसानों के संघर्षशील जीवन को चित्रित किया जाता है।
2. ‘किसान विमर्श’ में किसानों के आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक शोषण का विरोध किया जाता है और उस शोषण के कारणों का तात्त्विक विवेचन किया जाता है।
3. ‘किसान विमर्श’ में किसानों के जीवन के साथ-साथ ग्रामीण जीवन का यथार्थ जीवन, विसंगतियाँ, कृषि-व्यवस्था, गरीबी, ऋणग्रस्तता, अभाव, जमींदार और साहूकारों के शोषण तंत्रों का यथार्थवादी चित्रण किया जाता है।
4. ‘किसान विमर्श’ में किसानों की प्राकृतिक आपदाओं के संकट, फसल को उचित बाज़ार मूल्य न मिलना, बेरोजगारी, ऋणग्रस्तता और उससे परेशान होकर खुदकुशी करना आदि समस्याओं की प्रमुख रूप से चर्चा होती है।
5. ‘किसान विमर्श’ के द्वारा किसानों के श्रम और उत्पादन में उसकी भूमिका को सम्मान देने का प्रयास होता है।
6. ‘किसान विमर्श’ के द्वारा किसानों को उनके हक एवं अधिकारों से परिचित किया जाता है। उन्हें किसान विरोधी नीतियों से अवगत कराकर उसका विरोध करने के लिए संगठित करके चेतना पैदा की जाती है।
7. ‘किसान विमर्श’ किसानों की गरिमा, सामाजिक न्याय और मानवतावादी मूल्यों की वकालत करता है।

8. 'किसान विमर्श' के जरिए भारतीय समाज को किसानों के महत्त्व, उनके प्रति न्याय और सम्मान की भावना बलवति करने का प्रयास किया जाता है।
9. 'किसान विमर्श' में किसानों के जीवन के बहाने लोक जीवन और लोक संस्कृति का चित्रण किया जाता है।
10. 'किसान विमर्श' में किसानों के सुख-दुःख और जीवन को संवेदना के साथ अभिव्यक्त किया जाता है।

4.3.3.4 किसान विमर्श का सामान्य परिचय :

साहित्य में समाज का प्रतिबिम्ब अंकित होता है। प्राचीन काल से खेती भारतीय जीवन का अभिन्न अंग रहा है इसकारण खेती और किसान के संदर्भ में वैदिक कालखंड से लिखा गया है। किसानों के जीवन को लेकर सबसे प्राचीन उल्लेख 'ऋग्वेद' में मिलता है। वेदों में कृषकों को 'किनाश', 'कार्षिवन' या 'सिरपति' कहा गया है। ऋग्वेद में कृषि कार्य करके सम्मानपूर्वक धन कमाने और कृषि को मानव जीवन का आधार बताया गया है। ऋग्वेद के चौथे मंडल में खेती की विधियाँ और उपकरणों का विस्तृत वर्णन है। उसके बाद अगर हम हिंदी साहित्य में किसान जीवन पर लेखन की बात करें तो भक्तिकाल के संत कबीर, संत तुलसीदास, सूरदास जैसे कवियों ने किसानों की दयनीय स्थिति पर लेखन किया है। रीतिकाल में चारण कवियों ने अपने आश्रयदाताओं की प्रशंसा और शृंगार को ही अधिक महत्त्व देने के कारण साहित्य में किसानों का चित्रण की प्रवृत्ति शिथिल हुई। 'किसान विमर्श' की दृष्टि से हिंदी साहित्य में आधुनिक काल से सार्थक प्रयास किए गए। हिंदी में किसान विमर्श की शुरुआत प्रेमचंद युग (1920-30 के दशक) से मानी जाती है। अतः हिंदी किसान विमर्श को निम्नांकित मुद्दों के आधार पर समझते हैं-

4.3.3.4.1 भक्तिकाल के संत साहित्य में किसान विमर्श :

हिंदी साहित्य के भक्तिकाल में संत कबीरदास, तुलसीदास और सूरदास की कविताओं में किसानों की दयनीय स्थिति का वर्णन आता है। आकाल, बाढ़, सूखे की प्राकृतिक समस्याओं से किसानों की फसलें तबाह होने का उल्लेख मिलता है या फिर मुस्लिम शासकों को द्वारा किसानों पर अन्यायकारी लगान लगाने का वर्णन मिलता है। संत कबीरदास के 'बीजक' इस रचना में खेती, बीज, खेत आदि के प्रतीकों के माध्यम से जीवन-दर्शन संबंधी अभिव्यक्ति दी गई है। संत तुलसीदास के 'रामचरितमानस' इस ग्रंथ में ग्रामीण जीवन और उसमें किसानों के महत्त्व को उजागर किया है। उनकी रामराज्य की कल्पना में किसानों के हितों की बात कही गई है। संत सूरदास के 'सूरसागर' ग्रंथ में ब्रज के ग्रामीण लोकजीवन में किसान, चरवाहे, पशुपालक और कृषि संस्कृति का उल्लेख मिलता है। संत रैदास की पदावली में मेहनतकश वर्ग के लोकजीवन की अभिव्यक्ति मिलती है। इस कालखंड के कवि घाघ और भड्डरी की कविताओं में किसान जीवन संबंधी दोहे प्राप्त होते हैं। इन दोहों में किसान की जीवन संबंधी, खेती-बागबानी आदि संबंधी महत्त्वपूर्ण जानकारी मिलती है।

4.3.3.4.2 स्वातंत्र्यपूर्व युग के साहित्य में किसान विमर्श:

हिंदी साहित्य में सन 1843 ई. से आधुनिक कालखंड माना जाता है। प्रेस एवं मुद्रण का आविष्कार, शिक्षा के प्रसार से नवबुद्धिजीवी वर्ग का उदय के कारण भारतीय समाज की चेतना जाग्रत हुई थी। इस कालखंड में अंग्रेज शासकों द्वारा भारतीय किसानों के शोषण पर इस कालखंड के साहित्यकारों ने व्यापक स्तर पर लेखन किया है। स्वातंत्र्यपूर्व कालखंड में भारतेन्दु युगीन, द्विवेदी युगीन, छायावादी और प्रगतिवादी युग के साहित्यकारों ने किसानों के जीवन को केंद्र में रखकर व्यापक साहित्य लिखा है। इस दृष्टि से देखा जाए तो भारतेन्दु हरिश्चंद्र, मैथिलीशरण गुप्त, सुमित्रानंदन पंत, सियाशरण गुप्त, गयाप्रसाद शुक्ल स्नेही, श्रीधर पाठक, रामधारी सिंह 'दिनकर' आदि की कविताओं में किसान जीवन झलकता है। इसमें मैथिलीशरण गुप्त की 'किसान' (1916 ई.), सुमित्रानंद पंत की 'वे आँखें' (1937 ई.), रामधारी सिंह 'दिनकर' की 'हूँकार', 'हमारे कृषक' (1940 ई.), बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' की 'किसान कंदन' (1943 ई.), गजानन माधव मुक्तिबोध की 'गाँव' (1940 ई.), निराला की 'तोड़ती पत्थर' (1935 ई.) आदि महत्वपूर्ण रचनाएं हैं।

स्वातंत्र्य पूर्व कालखंड में हिंदी कथा-साहित्य में भी किसानों की दुर्दशा का यथार्थ वर्णन किया गया है। हिंदी साहित्य में किसान विमर्श की शुरुआत प्रेमचंद युग से मानी जाती है। इसमें उपन्याससम्राट मुंशी प्रेमचंद का नाम विशेष उल्लेखनीय है। उनकी 'गोदान' (1936 ई.) इस उपन्यास में भारतीय किसानों के जीवन पीड़ा का वर्णन होरी इस कथानायक के जरिए किया गया है। इसलिए इसे भारतीय कृषक जीवन का प्रतिनिधि उपन्यास मानते हुए 'गोदान' उपन्यास को 'कृषक जीवन का महाकाव्य' कहा गया है। इसके साथ ही प्रेमचंद जी के 'प्रेमा' (1921 ई.), 'गबन' (1931 ई.), 'कर्मभूमि' (1932 ई.) आदि उपन्यासों में भी किसान के जीवन से जुड़े सभी बिंदुओं पर विचार-विनिमय किया गया है। साथ ही शिवपूजन सहाय के 'देहाती दुनिया' (1926 ई.) यह महत्वपूर्ण रचना है। इस कालखंड में प्रेमचंद और सियाशरण गुप्त ने अपनी अनेक कहानियों में किसानों के जीवन को उद्घाटित किया है। सियाशरण गुप्त की 'बैल की ब्रिकी' यह कहानी किसान विमर्श की दृष्टि से कालजयी मानी जाती है।

4.3.3.4.3 स्वातंत्र्योत्तर युग के साहित्य में किसान विमर्श:

हिंदी साहित्य में स्वातंत्र्योत्तर कालखंड में मुंशी प्रेमचंद की किसान विमर्शवादी साहित्य की परंपरा को जनकवि नागार्जुन और आँचलिक कथाकार फणीश्वरनाथ रेणु ने आगे बढ़ाया। इस कालखंड में नागार्जुन के 'रतिनाथ की चाची' (1948 ई.), 'इमली' (1950 ई.), 'बलचनमा' (1952 ई.), 'बाबा बटेसरनाथ' (1954 ई.), 'वरूण के बेटे' (1957 ई.) इन उपन्यासों में किसानों के दयनीय जीवन और जमींदारों के अमानवीय शोषण के चक्र में फँसे किसानों का यथार्थवादी चित्रण आया है। फणीश्वरनाथ रेणु के कालजयी उपन्यास 'मैला आँचल' (1954 ई.), 'परती परिकथा' (1957 ई.) आदि उपन्यास में कृषक जीवन का चित्रण है। 'मैलाआँचल' उपन्यास में बिहार के मेरीगंज के किसानों के जीवन का मार्मिक चित्रण आया है। रांगेय राघव के 'उदय' (1952 ई.) इस उपन्यास में किसानों का चित्रण आया है। इस कालखंड में रामधारी सिंह दिनकर की 'रसवंती' (1947 ई.), 'उर्वशी' (1961 ई.), नागार्जुन की 'युगधारा' (1959 ई.), 'सतरंगे पंखों'

वाली' (1959 ई.), केदारनाथ अग्रवाल के 'फूल नहीं रंग बोलते हैं' (1965 ई.) आदि कविता-संग्रहों की कविताओं में किसान जीवन पर मार्मिक विवेचन है। केदारनाथ अग्रवाल की कविताओं को 'किसान और खेत का काव्य' माना जाता है। साथ ही मार्कण्डेय, महेश कटारे, जयनंदन, सुरेश कांटक और पुत्रीसिंह जैसे कहानीकारों ने भी किसानों के जीवन को केंद्र में रखकर कहानियाँ लिखी हैं।

4.3.3.4.4 साठोत्तरी युग के साहित्य में किसान विमर्श:

हिंदी साहित्य में साठोत्तरी युग मोहभंग का कालखंड माना जाता है। इस कालखंड में सुराज्य के सपने का मोहभंग हुआ था। इस कालखंड में सन 1960 से 2000 ई. तक का साहित्य आता है। इस कालखंड में किसान राजनेताओं के कृषि और किसान विरोधी नीतियों का शिकार हुआ। प्राकृतिक आपदाओं के साथ-साथ देश की किसान विरोधी नीतियों ने उसके जीवन को बर्बाद कर दिया। अपनी फसलों को उचित बाजार मूल्य न मिलने के कारण किसान ऋणग्रस्त होकर दयनीय जीवन जीने के लिए अभिशप्त बना। इसका वर्णन इस समय के साहित्य में आता है। इस कालखंड में राही मासूम रजा का 'आधागाँव' (1966 ई.), गिरिराज किशोर के 'इंद्र सुने' (1978 ई.), कृष्णा सोबती के 'मित्रो मरजानी' (1967 ई.), 'जिंदगी नामा' (1979 ई.), जगदीशचंद्र के 'मुट्ठी भर काँकर' (1976 ई.), 'घास गोदाम' (1985 ई.), 'वीरेंद्र जैन के 'डूब' (1991 ई.), 'पार' (1994 ई.), कमलाकांत त्रिपाठी के 'पाहीघर' (1991 ई.), 'बेदखल' (1997 ई.) आदि महत्वपूर्ण कथा-साहित्य लिखा गया। राही मासूम रजा के 'आधा गाँव' उपन्यास में उत्तर प्रदेश के पूर्वांचल के जमींदारों के शोषण से तंग किसानों के दयनीय जीवन का वर्णन है। कृष्णा सोबती के 'जिंदगीनामा' उपन्यास में पंजाब के किसानों का चित्रण आया है। जगदीश चंद्र के 'घास गोदाम' उपन्यास में दिल्ली के आसपास के विस्थापित किसानों का वर्णन आया है। वीरेंद्र जैन ने 'डूब' और 'पार' उपन्यास में सरकारी बाँध परियोजनाओं के कारण पहाड़ी क्षेत्रों से विस्थापित होने वाले किसानों का जमींदार और ठेकेदारों से होने वाले शोषण को उजागर किया है। कमलाकांत त्रिपाठी के उपन्यास 'पाहीघर' और 'बेदखल' में 1857 ई. से लेकर 1920 तक अंग्रेजों के साथ मिलकर जमींदार, तालुकेदार गरीब किसानों को लूटने की और इसके विरोध में किसानों के आंदोलन का मार्मिक चित्रण आया है।

4.3.3.4.5 समकालीन युग के साहित्य में किसान विमर्श :

हिंदी साहित्य में 'किसान विमर्श' की जोरदार चर्चा समकालीन युग के साहित्य से होने लगी है। वर्ष 2000 के बाद हिंदी साहित्य में किसान विमर्श एक नए मुकाम तक पहुँचा है। भूमंडलीकरण के कारण बाजार का बदलता रूप, मार्केटिंग के नए तंत्र, पूँजीवादी कंपनियों का बोलबाला, सरकार की कृषि विरोधी नीतियाँ, प्राकृतिक संकट, ऋणग्रस्तता, किसान आत्महत्या आदि ने साहित्य को गहराई से प्रभावित किया। इस कालखंड में सुरेंद्र स्निग्ध का 'छाड़न' (2002 ई.), संजीव का 'बारोमास' (2004 ई.), पंकज सुबीर का 'गोबरधन गप्पा' (2006 ई.), राजू शर्मा के 'हलफनामों' (2006 ई.), भीमसेन त्यागी का 'जमीन' (2006 ई.), काशीनाथ सिंह का 'रेहन पर रघू' (2008 ई.), महुआ माजी का 'कस्तूरी' (2008 ई.) शिवमूर्ति का 'आखिरी छलांग' (2008 ई.), जयनंदन का 'श्रम एवं जयते' (2009 ई.), रणेंद्र का 'ग्लोबल गाँव का देवता' (2009 ई.) और

‘गायब होता देश’ (2011 ई.), कुणाल सिंह का ‘आदिग्राम उपख्यान’ (2010 ई.), राजू शर्मा का ‘हलफनामें’ (2014 ई.), संजीव का ‘फाँस’ (2015 ई.), सुनील चतुर्वेदी का ‘कालीचाट’ (2015 ई.), राजकुमार राकेश का ‘कंदील’ (2015 ई.), पंकज सुबीर का ‘अकाल में उत्सव’ (2016 ई.), अंकिता जैन का ‘ओह रे! किसान’ (2021 ई.) आदि उपन्यास किसान विमर्श की दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। संजीव के फाँस उपन्यास में महाराष्ट्र के विदर्भ और आंध्र प्रदेश के ऋणग्रस्त किसानों की आत्महत्याओं की मार्मिक कहानी को दर्शाया गया है। पंकज सुबीर के उपन्यास ‘अकाल में उत्सव’ में किसान विरोधी सरकारी नीतियों पर प्रहार करते हुए उनकी पोल खोली गई है।

संक्षेप में कह सकते हैं कि भारतीय साहित्य में किसानों को केंद्र में रखकर साहित्य लेखन की परंपरा बहुत पुरानी रही है। हिंदी साहित्य में वैदिक काल से कृषि से संबंधित लेखन हुआ है जिसका उल्लेख ऋग्वेद में मिलता है। मध्यकाल में संत तुलसीदास, संत कबीर, संत सूरदास, कवि घाघ आदि की कविताओं में किसान जीवन एवं उसकी वेदना का चित्रण आया है। आधुनिक काल में भारतेंदु युग से हिंदी साहित्य में किसान की दुर्दशा और अंग्रेज और जमींदारों की शोषक वृत्ति पर विपुल लेखन हुआ है। हिंदी में प्रेमचंद के कथा-साहित्य किसान जीवन का दस्तावेज है। उनके ‘गोदान’ उपन्यास को हिंदी किसान विमर्श में मील का पत्थर समझा जाता है। हिंदी कथा साहित्य से ही किसान विमर्श को पहचान मिली है। समकालीन काल में संजीव के उपन्यास, ‘फाँस’, ‘बारोमास’, पंकज सुबीर से ‘अकाल में उत्सव’, रणेंद्र का ‘ग्लोबल गाँव का देवता’, काशीनाथ सिंह का ‘रेहन पर रघू’ आदि उपन्यासों से हिंदी किसान विमर्श को नई पहचान मिली है।

4.3.4 अल्पसंख्यक विमर्श का सामान्य परिचय :

आधुनिक हिंदी साहित्य की विभिन्न धाराओं में विमर्शवादी साहित्य की प्रचलन बढ़ रहा है। अल्पसंख्यक विमर्श इसी आधुनिक हिंदी साहित्य की एक महत्वपूर्ण वैचारिक धार है। अल्पसंख्यक विमर्श उस विमर्श को कहते हैं जिसमें समाज में संख्या की दृष्टि से कम होने वाले वर्ग के जीवन का सर्वांग विवेचन किया जाता है। बहुसंख्यक समाज में अल्पसंख्यक समुदाय हमेशा आतंक और भय की छाया में रहता है। संख्या की दृष्टि से कम होने के कारण यह समाज अपनी संस्कृति, अस्मिता और अधिकारों को लेकर उपेक्षा, भेदभाव और असुरक्षा की भावना से ग्रस्त रहता है। भारत जैसे बहु भाषिक एवं बहु धार्मिक देश में धर्म, भाषा और संस्कृति के आधार मुस्लिम, सिख, ईसाई, बौद्ध, जैन, पारसी आदि समुदायों को अल्पसंख्यक माना जाता है। हिंदी अल्पसंख्यक विमर्श अल्पसंख्यक समुदायों की समस्याओं की प्रस्तुति के साथ उनकी सामाजिक स्थिति, उनके सांस्कृतिक योगदान और लोकतांत्रिक अधिकारों की साहित्य के माध्यम से अभिव्यक्ति की जाती है। स्वातंत्र्योत्तर कालखंड से हिंदी अल्पसंख्यक विमर्श को विशेष गति मिली है। हिंदी अल्पसंख्यक विमर्श की जानकारी लेने से पूर्व अल्पसंख्यक विमर्श का अर्थ, परिभाषा, उसकी विशेषता आदि का विवेचन करना जरूरी है।

4.3.4.1 अल्पसंख्यक विमर्श का अर्थ :

आधुनिक साहित्य में विमर्शवादी साहित्य में जन-समुदायों को केंद्रित करके साहित्य लेखन का प्रचलन

बढ़ गया है। अल्पसंख्यक विमर्श भी समाज के उन जन-समुदायों का वर्णन होता है, जो संख्या की दृष्टि से अल्प या कम है। ‘अल्पसंख्यक’ का शाब्दिक अर्थ है संख्या से कम होना, संख्या से अल्प होना। ‘अल्पसंख्यक विमर्श’ में जन-समुदाय की ‘संख्या’ पर विशेष बल दिया जाता है। भारतीय संविधान में अल्पसंख्यक के संदर्भ में अनुच्छेद 29 और 30 में विशेष प्रावधान किए गए हैं। इनके अनुसार ‘अल्पसंख्यक’ की संकल्पना का आधार भाषा और धर्म को रखा गया है। अतः भारतीय संविधान के अनुसार बहुसंख्यक जन-समुदाय की तुलना में धर्म और भाषा के स्तर पर कम या अल्प होने वाले जन-समुदाय को ‘अल्पसंख्यक’ कहा जाता है। भारत में भाषा पर आधारित अनेक अल्पसंख्यक समूह हैं लेकिन धर्म के आधार पर देखा जाए तो मुस्लिम, ईसाई, सिख, बौद्ध, पारसी और जैन जन-समुदाय को अल्पसंख्यक की श्रेणी में रखा गया है। साहित्य की दृष्टि से देखा जाए तो धर्म से अल्पसंख्यक होने वाले जन-समुदायों के सामाजिक एवं सांस्कृतिक प्रश्नों का विवेचन किया जाता है, उसे ही ‘अल्पसंख्यक विमर्श’ कहा जाता है।

4.3.4.2 अल्पसंख्यक विमर्श की परिभाषा:

‘अल्पसंख्यक विमर्श’ की संकल्पना को गहराई से समझने के लिए इस क्षेत्र के विद्वानों के अभिप्राय या परिभाषाओं को देखना जरूरी है। वह इसप्रकार है-

✱ डॉ. नामवर सिंह :

“साहित्य में अल्पसंख्यक और हाशिए का विमर्श केवल संख्याबल का प्रश्न नहीं है, बल्कि यह सत्ता के वर्चस्व के खिलाफ उन उपेक्षित आवाजों की अभिव्यक्ति है जिन्हें सदियों से मुख्यधारा से बाहर रखा गया है।”

✱ प्रो. मैनेजर पांडेय :

“अल्पसंख्यक विमर्श शोषक व्यवस्था के विरुद्ध शोषितों और बहिष्कृतों का सांस्कृतिक प्रतिरोध है। यह साहित्य समाज के बहुसंख्यकवादी दमन को उजागर करता है।”

✱ अनवर सुहैल :

“अल्पसंख्यक एक अपूर्ण या भ्रमित करने वाला शब्द है: समग्र में कुछ की संख्या को अल्पसंख्यक मानना मेरे हिसाब में गलत है। जिस प्रदेश में या जिस नगर में आप बहुतायत में हो और समग्रता के आधार पर की गयी गणना के अनुसार खुद को अल्पसंख्यक मानें तो ये गलत प्रतीत होता है। जैसे-कश्मीर के मुसलमान खुद को अल्पसंख्यक कहें या फिर पुराने हैदराबाद के मुसलमान या पुरानी दिल्ली के मुसलमान खुद को अल्पसंख्यक कहें तो मुझे ये स्वीकार नहीं। ये मुसलमान तो अपनी परिवेशगत आबादी के पचास प्रतिशत से ज्यादा के लोग हैं इन्हें अल्पसंख्यक का दर्जा कैसे दिया जा सकता है?”

संक्षेप में कह सकते हैं कि हिंदी साहित्य में अल्पसंख्यक विमर्श का आधार धार्मिक अल्पसंख्यक समुदायों से है। कुछ विद्वान अल्पसंख्यक की अवधारणा को राष्ट्र की नहीं बल्कि राज्य के परिवेश के अनुसार ग्रहण करने

की बात करते हैं। फिर भी अल्पसंख्यक विमर्श बहुसंख्यक समाज में रहने वाले धार्मिक अल्पसंख्यकों के सामाजिक और सांस्कृतिक प्रश्नों का गहराई से विवेचन करता है। हिंदी अल्पसंख्यक विमर्श विशेष कर मुस्लिम समाज को केंद्रित रखकर आकार ग्रहण कर रहा है।

4.3.4.3 अल्पसंख्यक विमर्श की विशेषताएँ :

‘अल्पसंख्यक विमर्श’ के अर्थ एवं परिभाषा के संदर्भ में विद्वानों के अभिप्राय से उसकी कुछ विशेषताएँ सामने आती हैं, वह इसप्रकार है-

1. ‘अल्पसंख्यक विमर्श’ के अंतर्गत बहुसंख्यक समाज की तुलना में जिस समाज की जनसंख्या कम है, उन समुदाय के मानवीय अधिकारों, सामाजिक और सांस्कृतिक प्रश्नों, राजनीतिक संघर्ष, असुरक्षा की भावना, पहचान का संकट, संस्कृति के विलय का भय, राष्ट्रीयता पर संदेह, आतंकवाद की समस्या आदि का विवेचन किया जाता है।
2. ‘अल्पसंख्यक विमर्श’ साहित्य लेखन का मूल उद्देश्य अल्पसंख्यक समाज की सांस्कृतिक बहुलता, सामाजिक न्याय और अस्मिता की रक्षा करना होता है।
3. ‘अल्पसंख्यक विमर्श’ में हाशिए पर रहे अल्पसंख्यक समाज को राजनीतिक, प्रशासन और शिक्षा के क्षेत्र में उचित भागीदारी और प्रतिनिधित्व देने के संदर्भ में प्रबोधन करता है।
4. बहुसंख्यक समुदायों द्वारा समाज की मुख्यधारा से बाहर किए जाने, जाति-धर्मगत भेदभाव करने और असमानता की प्रवृत्ति के विरोध में संघर्ष करना इसकी मुख्य विशेषता है।
5. अल्पसंख्यक समुदायों के आर्थिक, शैक्षिक स्थिति में सुधार करके उनके सामाजिक एवं आर्थिक सबलीकरण का प्रयास करता है।
6. साहित्य, कला आदि क्षेत्रों में कार्यरत अल्पसंख्यक समुदाय के लेखक एवं कलाकारों द्वारा अपने समुदाय की समस्या, पीड़ा को स्वानुभूति के आधार पर यथार्थता के साथ सामने लाने पर जोर देता है। इसलिए अल्पसंख्यक लेखकों की भागीदारी को महत्वपूर्ण मानता है।

4.3.4.4 हिंदी अल्पसंख्यक विमर्श का परिचय:

अल्पसंख्यक विमर्श की शुरुआत मूलतः अमेरिकन साहित्य से हुई है जहाँ निग्रो आदि जन-समुदायों के सामाजिक प्रश्नों पर लेखन करने की परिपाटी रही है। भारत में अल्पसंख्यक की अवधारणा को मुख्य रूप से भाषा और धर्म के आधार पर ग्रहण किया जाता है। लेकिन हिंदी साहित्य में अल्पसंख्यक विमर्श को भाषा से भी ज्यादा धर्म के आधार पर ग्रहण किया गया है। इस दृष्टि से हिंदी अल्पसंख्यक विमर्शवादी साहित्य में बहुसंख्यक हिंदु जन-समुदायों के बीच मुस्लिम समाज के जन-समुदाय के सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन की समस्याओं पर विवेचन हो रहा है। मूलतः हिंदी के मध्यकालीन कालखंड से हिंदी साहित्य में मुस्लिम धर्म एवं उनके समुदायों संबंध में उल्लेख आता है। लेकिन भारतीय परिवेश में तत्कालीन समय में सांप्रदायिकता से

भी ज्यादा साम्राज्यवाद की मानसिकता से हिंदू-मुस्लिम प्रजा का शोषण होता रहा है। स्वतंत्रतापूर्व कालखंड में प्रेमचंद के 'रंगभूमि', 'प्रेमाश्रम', 'ईदगाह' आदि उपन्यास और कहानियों में हिंदू-मुस्लिम संबंधों पर प्रकाश डाला गया है। लेकिन वहाँ अल्पसंख्यक विमर्श का संदर्भ नहीं था।

हिंदी में अल्पसंख्यक विमर्श की शुरुआत स्वातंत्र्योत्तर कालखंड में हुई है। सन 1947 में भारत की आजादी के बाद 'भारत-पाकिस्तान विभाजन' की घटना अल्पसंख्यक विमर्श का मुख्य स्रोत बनी है। अखंड भारत की मानसिकता के कारण स्वाधीनतापूर्व कुछ संगठनों ने भारत के सभी मुस्लिमों को पाकिस्तान भेजने की इच्छा व्यक्त की। लेकिन तत्कालीन सरकार ने लोगों की इच्छा को महत्व देते हुए जिन लोगों को पाकिस्तान जाना है उन्हें जाने दिया और जिन्हें भारत में रहना है उन्हें भारत में ही रहने दिया। लेकिन इस बँटवारे के समय अमानुष नरसंहार हुआ जिसने मानवता सिहर उठी। बहुसंख्यक जनसमुदायों के इलाकों में अल्पसंख्यकों के ऊपर अमानवीय अत्याचार किए जिससे यह घटना 'हिंदी अल्पसंख्यक विमर्श' साहित्य की नींव बनी। वहाँ से हिंदू बहुल प्रांतों में मुस्लिम और मुस्लिम बहुल प्रांतों में हिंदू को अल्पसंख्यक माना गया। सन् 1947-48 ई., सन् 1965, 1971 और 1999 को भारत-पाकिस्तान के बीच हुए युद्धों के कारण दोनों मजहबों के बीच वैमनस्य की जो दरारें पड़ी जो आज तक बरकरार है। कश्मीर की समस्या, आतंकवादी हमले, धारा 370 जैसे मुद्दों ने दोनों मजहबों के जनसमुदायों में एक-दूसरे के प्रति हमेशा संशय बनाए रखा जिससे उनका सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन खासा प्रभावित हुआ। बहुसंख्यक हिंदुओं के देश में मुस्लिमों के जन-जीवन को आगे अनेक मुस्लिम रचनाकारों ने अल्पसंख्यक विमर्श के रूप में मुखर किया। सन् 1960 ई. के बाद हिंदी साहित्य में अल्पसंख्यक विमर्श का प्रारंभ हुआ और 21 वीं सदी में वह एक स्वतंत्र साहित्यधारा बन चुकी है।

हिंदी अल्पसंख्यक विमर्श में राही मासूम रजा, बदिउज्जमाँ, मंजूर एहतेशाम, अब्दुल बिस्मिल्लाह, गुलशेर खाँ शानी, असगर वजाहत, मेहरुन्निसा परवेज, नासिरा शर्मा, अनवर सुहैल आदि का नाम विशेष उल्लेखनीय है। कहानी एवं उपन्यासकार राही मासूम रजा ने 'आधा गाँव' (1966 ई.), 'टोपी शुक्ला' (1969 ई.), 'सीन 75' (1975 ई.) 'कटरा बी आर्जू' (1978 ई.), 'दिल एक सादा कागज' (1980 ई.) आदि उपन्यास अल्पसंख्यक विमर्श की दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय है। 'आधा गाँव' इस उपन्यास ने हिंदी अल्पसंख्यक विमर्श की नींव रखी। शिया मुसलमानों के जीवन का यथार्थवादी चित्रण करनेवाला यह उपन्यास हिंदी अल्पसंख्यक विमर्श में मिल का पत्थर माना जाता है। 'टोपी शुक्ला' इस उपन्यास कहानी टोपी (हिंदू) और इफ्फन (मुसलमान) इन दोनों की दोस्ती पर आधारित है। 'सीन 75' उपन्यास में मुंबई में अल्पसंख्यक समुदाय के लेखक और कलाकारों के अपनी पहचान बनाने के संघर्ष की कहानी है। 'कटरा बी आर्जू' में दिल्ली में सांप्रदायिक दंगों के बाद अल्पसंख्यक मोहल्ले के भय एवं आतंक की कहानी है। 'दिल एक सादा कागज' इस उपन्यास में भारत के अल्पसंख्यक मुस्लिम समुदाय की मानसिक द्वंद्व की स्थिति और हिंदुओं के साथ उनके संबंधों की जटिलता का वर्णन आता है।

बदिउज्जमाँ जी के 'छाको की वापसी' (1975 ई.), 'अपुष' (1976 ई.), 'छठा तंत्र' (1977 ई.) और 'सभापर्व' (1994 ई.) उपन्यास और 'एक चूहे की मौत' (1971 ई.) इस कहानी में अल्पसंख्यक की

विमर्श का विवेचन हुआ है। 'छाको की वापसी' इस उपन्यास में विभाजन के बाद पाकिस्तान गए एक भारतीय मुसलमान छाको के अपने वतन भारत लौटने की मार्मिक कहानी है। अपुष उपन्यास में मध्यवर्गीय नौकरीपेशा अल्पसंख्यक समुदाय के शिक्षित वर्ग की व्यवस्था में घुटनपूर्ण जीवन का वर्णन है। 'छठा तंत्र' उपन्यास में अल्पसंख्यक मुस्लिम समुदाय की राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक विवशता का विवेचन है।

मंजूर एहतेशाम की अल्पसंख्यक विमर्श की दृष्टि से 'सूखा बरगद' (1986 ई.), 'दास्तान-ए-लापता' (1995 ई.), 'बशारत मंजिल' (2004 ई.), 'पहाड़ ढलते' (2007 ई.) आदि उपन्यास और 'तसबीह' (1998 ई.), 'तमाशा तथा अन्य कहानियाँ' (2000 ई.) कहानी-संग्रह विशेष उल्लेखनीय हैं। उनकी 'सूखा बरगद' यह अल्पसंख्यक विमर्श की दृष्टि से कालजयी रचना है, जिसमें अल्पसंख्यक समुदाय के डर, सांप्रदायिकता, अंतर्विरोध और असुरक्षा की भावना का प्रामाणिक चित्रण आया है। 'दास्तान-ए-लापता' में आधुनिक युग के मध्यवर्गीय मुस्लिम समुदाय के मानसिक द्वंद्व का वर्णन है और उनकी अन्य कहानियों में आधुनिक युग के यथार्थ और मुस्लिम वर्ग के पहचान के संकट का मार्मिक चित्रण है।

हिंदी साहित्य के अल्पसंख्यक विमर्श को गहराई और यथार्थ के साथ अपनी लेखनी में उतारने वाले अब्दुल बिस्मिल्लाह प्रमुख लेखक हैं। उनके 'झीनी झीनी बीनी चदरिया' (1986 ई.), 'कुठौव' (1987 ई.), 'मुखड़ा क्या देखे' (1996 ई.), 'अपवित्र आख्यान' (2007 ई.), 'रावी लिखता है' (2012 ई.), 'समर शेष है' (2016) और 'रैन बसेरा' (1988 ई.), 'अतिथि देवो भवः' (1993 ई.), 'कितने कितने सवाल' (2003 ई.) आदि कहानी-संग्रहों में अल्पसंख्यक विमर्श का गहराई से विवेचन किया है। उनका 'झीनी झीनी बीनी चदरिया' यह उपन्यास अल्पसंख्यक विमर्श के रूप में मील का पत्थर माना जाता है, इसमें बनारस के बुनकर मुस्लिम समाज के शोषण और उत्पीड़न का वर्णन किया है।

कथाकार गुलशेर खाँ शानी के 'काला जल' (1965 ई.), 'एक लड़की की डायरी' (1971 ई.), 'नदी और सीपियाँ' (1973 ई.), 'कस्तूरी' (1981 ई.), 'साँप और सीढ़ी' (1969 ई.) आदि उपन्यास और 'बबूल की छाँव' (1959 ई.), 'एक सौ मकानों का नगर' (1975 ई.) आदि कहानी संग्रहों में अल्पसंख्यक विमर्श की दृष्टि से मुस्लिमों के सांस्कृतिक एवं सामाजिक जीवन की समस्याओं का चित्रण आया है। उनके 'काला' उपन्यास को कालजयी उपन्यास माना जाता है, जिसमें मुस्लिम समाज के अंतर्विरोध, कट्टरता और उत्पीड़न का वर्णन है। 'एक लड़की की डायरी' उपन्यास में दो मुस्लिम स्त्रियों की अपनी अस्मिता के लिए किए संघर्ष का वर्णन है।

अल्पसंख्यक विमर्शकार असगर वजाहत के 'सात आसमान' (1996 ई.), 'बाकरगंज के सैयद' (2015 ई.) उपन्यास, 'मैं हिंदू हूँ' (2007 ई.), 'शाह आलम कैम्प की रूहें' (2002 ई.) कहानी-संग्रह और 'जिस लाहौर नई वेख्या वो जम्या ई नई' (1990 ई.) इस नाटक में अल्पसंख्यक विमर्श का विवेचन किया है। उनके नाटक में विभाजन के बाद की त्रासदी और अल्पसंख्यक की मानवीय संवेदनाओं को स्पष्ट किया है। 'शाह आलम कैम्प की रूहें' कहानी-संग्रह में सन 2002 में हुए भीषण सांप्रदायिक दंगों के दर्द का चित्रण है।

अल्पसंख्यक विमर्श और मुस्लिम स्त्री विमर्श के क्षेत्र में लेखिका मेहरुन्निसा परवेज का नाम विशेष उल्लेखनीय है। उनके 'आँखों की दहलीज' (1969 ई.), 'उसका घर' (1972 ई.), 'कोरजा' (1977 ई.), 'अकेला पलाश' (1981 ई.) आदि उपन्यासों और 'आदम और हव्वा' (1974 ई.), 'टहनियों पर धूप' (1977 ई.), 'गलत पुरुष' (1978 ई.), 'अम्मा और समर' (2012 ई.) आदि कहानी-संग्रह विशेष उल्लेखनीय हैं। 'आँखों की दहलीज' मुस्लिम पृष्ठभूमि पर आधारित उनका पहला उपन्यास है और 'कोरजा' उपन्यास में मध्य प्रदेश के बस्तर क्षेत्र की मुस्लिम महिलाओं के गरीबी, पुरुषवादी शोषण के दर्दभरे जीवन का मार्मिक वर्णन किया है।

अल्पसंख्यक विमर्श की स्त्री लेखिकाओं में नासिरा शर्मा जी का नाम महत्वपूर्ण है। 'ठीकरे की मँगनी' (1989 ई.), 'जिंदा मुहावरे' (2001 ई.), 'दूसरा ताजमहल' (2001 ई.) आदि उपन्यास और 'शामी कागज' (2005 ई.), 'इब्ने मरियम' (2006 ई.), 'पत्थर गली' (1986 ई.), 'संगार' (1993 ई.) आदि कहानी-संग्रहों में मुस्लिम समाज और खासकर मुस्लिम महिला के जीवन एवं समस्याओं का यथार्थ चित्रण किया गया है। मुस्लिम समाज की अंतर्गत रूढ़ियों, उनके सामाजिक-सांस्कृतिक संघर्ष का यथार्थवादी वर्णन उनकी रचनाओं में आता है। 'ठीकरे की मँगनी' उपन्यास में उन्होंने रूढ़ीवादी मुस्लिम परिवार में स्त्री की घुटन और पितृसत्तात्मक जकड़न से बाहर निकलने के संघर्ष कहानी बयां की है।

हिंदी अल्पसंख्यक विमर्श के समकालीन लेखकों में अनवर सुहैल का नाम विशेष उल्लेखनीय है। उन्होंने अपने साहित्य के माध्यम से भारतीय मुस्लिमों के जन-जीवन में व्याप्त समस्याओं को बहुत ही गहराई से अंकित की है। उनके कविता संग्रह- 'और थोड़ी सी शर्म दे मौला' (2007 ई.), 'संतों काहे की बेचैनी' (2009 ई.), कहानी संग्रह- 'ग्यारह सितंबर के बाद' (2006 ई.), 'चहल्लूम' (2009 ई.), 'गहरी जड़ें' (2014 ई.), उपन्यास- 'पहचान' (2009 ई.), 'सलीमा' (2014 ई.) आदि विशेष उल्लेखनीय हैं।

हिंदी में उपरोक्त साहित्यकारों के साथ-साथ ही अल्पसंख्यक विमर्श को लेकर कुछ आलोचनात्मक ग्रंथ भी लिखे गए हैं, वह इसप्रकार है- मुकुट बिहारी लाल की 'इस्लाम और आधुनिक भारत' (2009 ई.), पद्मश्री मुजफ्फर 'खतरे अल्पसंख्यकवाद के' (2010 ई.), हुसैन के 'इस्लाम और शाकाहार' (2015 ई.), अरूण भोले के 'धर्मों की कतार में इस्लाम' (2017 ई.), तारिक फतह के 'इस्लामिक राज्य का भ्रम (तीन खंड- 2018 ई.) आदि महत्वपूर्ण हैं।

संक्षेप में कह सकते हैं कि भारत में भाषा और धर्म इन दो बिंदुओं को अल्पसंख्यक विमर्श का आधार माना गया है। लेकिन हिंदी साहित्य में धर्म के आधार पर मुस्लिम समाज को अल्पसंख्यक की श्रेणी में रखकर उनके जीवन का विवेचन इस विमर्श में किया गया है। हिंदी में 'अल्पसंख्यक विमर्श' की शुरुआत सन 1960 से मानी जाती है। भारत-पाकिस्तान का विभाजन और उसकी विभीषिका इस विमर्श का प्रमुख स्रोत रहा है। राही मासुम रजा के 'आधा गाँव' (1960 ई.) इस उपन्यास को अल्पसंख्यक विमर्श में मील का पत्थर माना जाता है। बदिउज्जमाँ, मंजूर एहतेशाम, अब्दुल बिस्मिल्लाह, गुलशेर खाँ शानी, असगर वजाहत, मेहरुन्निसा परवेज, नासिरा शर्मा, अनवर सुहैल आदि प्रमुख हिंदी अल्पसंख्यक विमर्शवादी साहित्यकार माने जाते हैं।

4.4 स्वयंअध्ययन के लिए प्रश्न :

(अ) निम्नलिखित प्रश्नों के सही विकल्पों को चुनिए ।

1. 'अंग्रेजी-हिंदी शब्दकोश' में "Discourse" के हिंदी में भाषण, प्रवचन, प्रबंध, निबंध आदि अर्थ किसने दिए हैं?
अ. फादर कामिल बुल्के ब. जाक देरिदा
क. जेमन हाफमन ड. जोकोच
2. किस विमर्श में महिलाओं की सामाजिक स्थिति और उनके मानवीय अधिकारों पर लेखन किया जाता है?
अ. आदिवासी विमर्श ब. दलित विमर्श
क. स्त्री विमर्श ड. वृद्ध विमर्श
3. हिंदी साहित्य में किसान विमर्श की शुरुआत कौन से युग से मानी जाती है?
अ. प्रेमचंद युग (1920-30 ई.) ब. वैदिक युग (7 वीं सदी)
क. भारतेन्दु युग (1843 ई.) ड. समकालीन युग
4. 'स्त्री विमर्श' को हिंदी में इस नाम से भी संबोधित किया जाता है?
अ. नारी अस्मिता ब. नारी विमर्श
क. नारी अधिकार ड. नारी सम्मान
5. 'स्त्री पैदा नहीं होती, बल्कि बना दी जाती है। समाज और पितृसत्तात्मक व्यवस्था स्त्री को 'अन्य' या पुरुष की तुलना में कमतर बनाकर रखती है।' यह किस विद्वान की परिभाषा है?
अ. फादर कामिल बुल्के ब. जाक देरिदा
क. सीमोन द बोउवार ड. जोकोच
6. मध्यकाल में किस महिला संत ने पुरुषवादी व्यवस्था के बंधनों तोड़कर कृष्ण भक्ति के माध्यम से अपनी स्वतंत्र पहचान बनाई?
अ. संत जनाबाई ब. संत मीराबाई
क. संत अंडाल ड. संत बहिणाबाई
7. भारतेन्दु जी ने कौनसा निबंध लिखकर स्त्री की शिक्षा के महत्त्व को समझाने की कोशिश की?

- अ. स्त्री उदासीनता ब. सरस्वती
- क. स्त्री शिक्षा ड. स्त्री अस्मिता
8. अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' की कौनसी रचना में राधा को एक समाजसेविका के रूप में चित्रित किया है?
- अ. प्रियप्रवास ब. साकेत
- क. युगवाणी ड. यामा
9. राजेंद्र बाला घोष 'बंग महिला' ने कौनसी रचना में स्त्री के अस्तित्व और उसके संघर्ष को व्यक्त किया है?
- अ. परीक्षागुरू ब. दुलाईवाली
- क. भाग्यवती ड. सरोज
10. 'शृंखला की कड़िया' यह निबंध संग्रह किसका है? जिसमें तत्कालीन नारी की स्थिति, नारी अशिक्षा, आर्थिक पराधीनता, पर्दा प्रथा आदि का विवेचन किया है?
- अ. सुभद्राकुमारी चौहान ब. नासिरा शर्मा
- क. महादेवी वर्मा ड. मृदुला गर्ग
11. "दलित साहित्य दलितों द्वारा, दलितों के बारे में एवं दलितों के लिए है।" यह परिभाषा किसकी है?
- अ. डॉ. नामवर सिंह ब. राजेंद्र यादव
- क. ओमप्रकाश वाल्मीकि ड. डॉ. एन. सिंह
12. "दलित साहित्य दलित लेखकों द्वारा लिखित वह साहित्य है, जो सामाजिक, धार्मिक और मानसिक रूप से उत्पीड़ित लोगों की बेहतरी के लिए लिखा गया है।" यह परिभाषा किसकी है?
- अ. डॉ. नामवर सिंह ब. राजेंद्र यादव
- क. ओमप्रकाश वाल्मीकि ड. डॉ. एन. सिंह
13. 'दलित विमर्श' का वैचारिक आधार किस महापुरुष के विचारों को माना जाता है?
- अ. डॉ. बाबासाहेब अंबेडकर ब. म. गांधी
- क. राजर्षि शाहूजी ड. पं. नेहरू

14. स्वामी अछूतानंद के कौनसे नाटक में वेदविरोधी हिंदू साधु मायानंद के खिलाफ साजिश करके उन्हें नरमेध यज्ञ में बलि देने की कथा है ?

अ. रामराज्य ब. शंबूक हत्या
क. मायानंद बलिदान ड. भारतभारती

15. किस वेद के चौथे मंडल में खेती की विधियाँ और उपकरणों का विस्तृत वर्णन है।

अ. ऋग्वेद ब. सामवेद
क. यजुर्वेद ड. अथर्व वेद

16. भारतीय संविधान में अल्पसंख्यक के संदर्भ में कौनसे अनुच्छेदों में विशेष प्रावधान किए गए हैं ?

अ. अनुच्छेद 29 और 30 ब. अनुच्छेद 20 और 21
क. अनुच्छेद 39 और 40 ड. अनुच्छेद 25 और 26

17. “साहित्य में अल्पसंख्यक और हाशिए का विमर्श केवल संख्याबल का प्रश्न नहीं है, बल्कि यह सत्ता के वर्चस्व के खिलाफ उन उपेक्षित आवाजों की अभिव्यक्ति है जिन्हें सदियों से मुख्यधारा से बाहर रखा गया है।” यह परिभाषा किसकी है?

अ. राही मासूम रजा ब. डॉ. नामवर सिंह
क. अनवर सुहैल ड. तसलीमा नसरीन

18. राही मासूम रजा के कौनसे उपन्यास में टोपी (हिंदू) और इप्फन (मुसलमान) इन दोनों की दोस्ती का चित्रण है।

अ. कोरजा ब. आधा गाँव
क. टोपी शुक्ला ड. इदन्नमम

19. अब्दुल बिस्मिल्लाह किस उपन्यास में बनारस के बुनकर मुस्लिम समाज के शोषण की कथा है, जो अल्पसंख्यक विमर्श के रूप में मील का पत्थर माना जाता है?

अ. झीनी झीनी बीनी चदरिया ब. कोरजा
क. आधा गाँव ड. टोपी शुक्ला

20. गुलशेर खाँ शानी के कौनसे उपन्यास में दो मुस्लिम स्त्रियों की अपनी अस्मिता के लिए किए संघर्ष का वर्णन है ?

अ. कोरजा ब. आधा गाँव

क. एक लड़की की डायरी

ड. इदन्नमम

(आ) निम्नलिखित प्रश्नों के सही विकल्पों को चुनकर रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

1. सन 1970-80 के दशक में हिंदी में 'विमर्श' इस शब्द के प्रचार का श्रेय को दिया जाता है।
अ. डॉ. नामवर सिंह ब. प्रो. सुधीश पचौरी
क. डॉ. विनय पाठक ड. डॉ. भोलानाथ तिवारी
2. भारतीय समाज की जाति व्यवस्था के कारण दबे-कुचले वर्ग के जीवन और उनके मानवीय अधिकारों की प्रस्तुति विमर्श में दी जाती है।
अ. किन्नर ब. स्त्री
क. अल्पसंख्यक ड. दलित
3. बहुसंख्यक समाज में भय एवं आतंक के माहौल में रहने वाले जन-समुदाय के जीवन का विवेचन विमर्श में होता है।
अ. किन्नर ब. स्त्री
क. अल्पसंख्यक ड. दलित
4. वैदिक कालखंड में जैसी स्त्री विदुषियों ने शास्त्रार्थ करने का उल्लेख मिलता है?
अ. मैत्रेयी, गार्गी ब. मीराबाई, जनाबाई
क. पार्वती, सरस्वती ड. सीता, अहिल्या
5. छठी शती में पाली भाषा के बौद्ध ग्रंथ में भिक्षुणियों के अनुभवों का वर्णन है जो स्त्री लेखन की परंपरा का प्रारंभिक प्रयास माना जाता है।
अ. विनय पिटक ब. थेरीगाथा
क. त्रिपिटक ड. महागाथा
6. भारतेंदु काल में पत्रिका ने विशेषकर महिलाओं के उत्थान और शिक्षा के मुद्दों को लेकर प्रबोधन किया।
अ. बाला बोधिनी पत्रिका ब. कवि वचन सुधा
क. हिंदी प्रदीप ड. ब्राह्मण

7. मैथिलीशरण गुप्त ने रचना में गौतम बुद्ध की पत्नी के स्वाभिमान और स्त्री पीड़ा का वर्णन किया है।
अ. उर्मिला ब. कनुप्रिया
क. यशोधरा ड. अहिल्या कथा
8. संयुक्त राष्ट्र ने सन् को विश्व महिला वर्ष घोषित किया।
अ. 1975 ई. ब. 1970 ई.
क. 1985 ई. ड. 1980 ई.
9. वरिष्ठ हिंदी साहित्यकार श्यौराज सिंह 'बेचैन' के अनुसार ने सर्वप्रथम 'दलित' शब्द का प्रयोग किया था।
अ. स्वामी दयानंद ब. स्वामी अछूतानंद
क. राजा राममोहन राय ड. म. गांधी
10. राष्ट्रपिता महात्मा गांधी जी ने 'दलित' शब्द के प्रथम उच्चारक जी को माना है।
अ. स्वामी विवेकानंद ब. स्वामी अछूतानंद
क. स्वामी दयानंद ड. संतराम
11. हीरा डोम की कविता को हिंदी दलित विमर्श की पहली रचना माना जाता है।
अ. दलित कथा ब. अछूत की व्यथा
क. अछूत की शिकायत ड. अछूत की कथा
12. दलित नाटकों के सूत्रपात करने का श्रेय को जाता है।
अ. स्वामी अछूतानंद ब. प्रेमचंद
क. भारतेन्दू ड. जयशंकर प्रसाद
13. कहानीकार सतीश की इस रचना को हिंदी की प्रथम दलित कहानी मानी जाती है।
अ. दलित रूदन ब. वचनबद्ध
क. दुलाईवाली ड. प्रेमाश्रय
14. किसान विमर्श में प्रेमचंद के उपन्यास को कृषक जीवन का महाकाव्य कहा जाता है।

अ. गोदान
क. रंगभूमि

ब. सेवासदन
ड. गबन

15. संजीव के उपन्यास में महाराष्ट्र के विदर्भ और आंध्रप्रदेश के ऋणग्रस्त किसानों की आत्महत्याओं की मार्मिक कहानी को दर्शाया गया है।

अ. बारोमास
क. अकाल में उत्सव

ब. फाँस
ड. डूब

16. की कविताओं को 'किसान और खेत का काव्य' माना जाता है।

अ. सुमित्रानंद पंत
क. केदानाथ अग्रवाल

ब. मैथिलीशरण गुप्त
ड. रामधारी सिंह 'दिनकर'

17. हिंदी अल्पसंख्यक विमर्श का मुख्य स्रोत को माना जाता है।

अ. भारत-पाक बँटवारा
क. कश्मीर समस्या

ब. भारत-पाक युद्ध
ड. धारा 370

18. हिंदी अल्पसंख्यक विमर्श में राही मासुम रजा के उपन्यास को मिल का पत्थर माना जाता है

अ. टोपी शुक्ला
क. आधा गाँव

ब. मुखड़ा क्या देखे
ड. डूब

19. 'सीन 75' उपन्यास में मुंबई में अल्पसंख्यक समुदाय के के अपनी पहचान बनाने के संघर्ष की कहानी है।

अ. लेखक और कलाकारों
क. शिक्षकों

ब. डॉक्टरों
ड. वैज्ञानिकों

20. मंजूर एहतेशाम का उपन्यास अल्पसंख्यक विमर्श की दृष्टि से कालजयी रचना है।

अ. सूखा इंसान
क. सूखा धर्म

ब. सूखा बरगद
ड. सूखा मजहब

21. 'जिस लाहौर नई वेख्या वो जम्या ई नई' इस अल्पसंख्यक विमर्शवादी नाटक के लेखक है।

अ. असगर वजाहत

ब. मंजूर एहतेशाम

- क. अनवर सुहैल ड. राही मासुम रजा
22. मेहरुन्निसा परवेज के उपन्यास में मध्य प्रदेश के बस्तर क्षेत्र की मुस्लिम महिलाओं के पुरुषवादी शोषण के दर्दभरे जीवन का मार्मिक वर्णन किया है।
- अ. सूखा बरगद ब. टोपी शुक्ला
- क. कोरजा ड. मुखड़ा क्या देखे
23. नासिरा शर्मा के उपन्यास में रूढ़ीवादी मुस्लिम परिवार में स्त्री की घुटन और पितृसत्तात्मक जकड़न से बाहर निकलने के संघर्ष की कहानी है।
- अ. ठीकरे की मंगनी ब. कोरजा
- क. सूखा बरगद ड. आधा गाँव
24. असगर वजाहत के कहानी-संग्रह में सन 2002 में हुए भीषण सांप्रदायिक दंगों के दर्द का चित्रण है।
- अ. एक लड़की की डायरी ब. शाह आलम कैम्प की रूहें
- क. ठीकीरे की मंगनी ड. कोरजा
25. मेहरुन्निसा परवेज द्वारा लिखित यह उपन्यास मुस्लिम पृष्ठभूमि पर आधारित उनका पहला उपन्यास है।
- अ. आँखों की दहलीज ब. सूखा बरगद
- क. आधा गाँव ड. कोरजा

4.5 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ :

- * **फादर कामिल बुल्के :** फादर कामिल बुल्के एक बेल्जियम के ईसाई मिशनरी थे। उनका कालखंड 1909-1982 है। उन्होंने अपना पूरा जीवन हिंदी भाषा, रामकथा और भारतीय संस्कृति को समर्पित कर दिया था। वे रांची के सेंट जेवियर कॉलेज में हिंदी और संस्कृत विभाग के अध्यक्ष रहे। वे आजीवन हिंदी, संत तुलसीदास और वाल्मीकि के अनन्य भक्त बने रहे। उनके 'रामकथा-उत्पत्ति और विकास', 'अंग्रेजी हिंदी शब्द कोश' रचनाएं प्रसिद्ध हैं। सन् 1974 को इन्हें भारत सरकार ने 'पद्म भूषण' पुरस्कार से सम्मानित किया।
- * **अवधारणा :** किसी वस्तु, घटना, विचार या प्रक्रिया के बारे में मन में बनाई गई स्पष्ट छवि या मूल विचार है। यह अमूर्त होती है और हमें किसी चीज को पहचानने, वर्गीकृत करने और समझने में मदद करती है।

- * **थेरीगाथा :** भगवान बुद्ध के समय में ज्ञान प्राप्त कर चुकी वरिष्ठ बौद्ध भिक्षुणियों जिन्हें थेरी कहा जाता है उनके जीवन अनुभवों पर आधारित कविताओं और भजनों का संग्रह है। यह पाली भाषा में लिखा गया ग्रंथ है, जिसकी रचना ईसा पूर्व पाँचवी या छठी शताब्दी के वचन बुद्ध के जीवनकाल में हुई थी, ऐसा माना जाता है।
- * **संत मीरा बाई :** सोलहवीं सदी की महान कृष्ण भक्त कवयित्री थी। उन्होंने सांसारिक मोह-माया त्यागकर अपना जीवन श्रीकृष्ण की भक्ति में समर्पित किया था। 'नरसी जी रो मायरो', 'गीत गोविंद की टीका', 'राग गोविंद', 'मीराबाई की मल्हार' आदि रचनाएं विख्यात हैं। उनकी भक्ति माधुर्य भाव (कृष्ण को अपना पति मानना) की थी जो तत्कालीन समय में पुरुषवादी व्यवस्था के प्रति विद्रोह था।
- * **गार्गी और मैत्रेयी :** ये दोनों वैदिक काल की विदुषी, दार्शनिक और ब्रह्मवादिनी (ईश्वर को जाननेवाली) महिलाएं थीं। गार्गी महर्षि वाचकनु की पुत्री थीं। मिथिला के राजा जनक द्वारा आयोजित एक प्रसिद्ध शास्त्रार्थ में उन्होंने महर्षि याज्ञवल्क्य को आत्मा और ब्रह्मांड के गूढ़ प्रश्नों पर चुनौती दी थी। बृहदारण्यक उपनिषद् में इस ज्ञानवर्धक संवाद का विस्तृत वर्णन है। मैत्रेयी महर्षि याज्ञवल्क्य की दूसरी पत्नी थीं। उन्होंने महर्षि याज्ञवल्क्य से अमरत्व और ब्रह्म ज्ञान का विस्तृत संवाद किया था, जिसे 'मैत्रेयी-याज्ञवल्क्य संवाद' कहा जाता है। भारत के प्राचीन ज्ञान, शास्त्रार्थ और दर्शन में महिलाओं की सर्वोच्च स्थिति को दर्शाती है।
- * **सती प्रथा :** प्राचीन भारत की एक अमानवीय और सामाजिक कुरीति थी, जिसमें किसी पुरुष की मृत्यु के बाद उसकी पत्नी (विधवा) को उसके पति के अंतिम संस्कार के दौरान उसी की चिता पर बैठकर आत्मदाह करना पड़ता था। राज राममोहन राय के प्रयासों से और लॉर्ड विलियम बेंटिक ने सन् 1829 ई. में बंगाल सती रेगुलेशन कानून पारित करके इस प्रथा को बंद किया।
- * **तसलीमा नसरिन:** बांग्लादेशी मूल की एक प्रसिद्ध नारीवादी लेखिका और चिकित्सक हैं। वे अपने बेबाक लेखन, मानवाधिकारों की वकालत और कट्टरपंथी धर्म व पितृसत्तात्मक व्यवस्था की तीखी आलोचना के लिए दुनियाभर में जानी जाती हैं। उनके 'लज्जा', 'फेरा', 'बेशरम' आदि उपन्यास और 'मेरे बचपन के दिन' और 'द्विखंडित' यह आत्मकथा विशेष उल्लेखनीय हैं। कट्टरपंथियों से लगातार मिलती धमकियों के कारण वे 1994 ई. से बांग्लादेश छोड़कर स्वीडन, फ्रांस, अमेरिका और भारत सहित कई देशों में निर्वासित जीवन बिता रही हैं।
- * **विश्व महिला दिन:** सन् 1975 ई. में संयुक्त राष्ट्र संघ (यूनो) ने आधिकारिक तौर पर 8 मार्च को अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस के रूप में मान्यता दी है। महिलाओं के अधिकारों, समान वेतन, शिक्षा और उनके खिलाफ होने वाले भेदभाव व हिंसा के मुद्दों पर ध्यान केंद्रित करने के लिए यह दिन प्रेरणा देता है।

- * **दलित पैंथर्स** : भारत के महाराष्ट्र में सन् 1970 ई. के दशक की शुरुआत में उभरा एक उग्र सामाजिक और राजनीतिक संगठन था। इसकी स्थापना सन् 1972 ई. में नामदेव ढसाल, राजा ढाले, और जे. वी. पवार ने की थी। यह संगठन अमेरिका के नस्लवाद विरोधी 'ब्लैक पैंथर्स' आंदोलन और डॉ. बाबासाहेब अंबेडकर जी के विचारधारा से प्रेरित था।
- * **सकल घरेलू उत्पाद**: किसी देश की आर्थिक सेहत को मापने का सबसे प्रमुख पैमाना है, इसे जीडीपी के नाम से भी जाना जाता है। यह एक निश्चित अवधि में देश की भौगोलिक सीमा के भीतर उत्पादित सभी अंतिम वस्तुओं और सेवाओं के कुल बाज़ार का मूल्य दर्शाता है। भारत का वर्तमान जीडीपी 4.2 ट्रिलियन डॉलर है जो दुनिया की पाँचवी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था मानी जाती है।
- * **भूमि जोत** : कृषि भूमि के भूखंड (क्षेत्र) को भूमि जोत कहा जाता है, जिस पर किसी व्यक्ति, परिवार, या समूह द्वारा खेती की जाती है। यह भूमि किसानों के अपने स्वामित्व वाली या पट्टे (किराए) पर ली गई हो सकती है।
- * **बटाई, बटाईदार** : कृषि की एक प्रथा है जिसमें भूमि का मालिक किसी दूसरे किसान को अपनी जमीन पर खेती करने के लिए देता है और फसल तैयार होने पर उपज या लाभ को आपस में बाँट लेते हैं। इस व्यवस्था में खेती करने वाले को बटाईदार कहा जाता है।
- * **अनुच्छेद 29 और 30** : भारतीय संविधान के अनुच्छेद 29 और 29 में सांस्कृतिक और शैक्षिक अधिकारों के रूप में मौलिक अधिकारों का प्रावधान किया गया है। ये मुख्य रूप से अल्पसंख्यकों के हितों की रक्षा करने के लिए बनाए गए हैं। अनुच्छेद 29 भारत में रहने वाले किसी भी नागरिक वर्ग को अपनी विशिष्ट संस्कृति और भाषा बचाने का अधिकार देता है। अनुच्छेद 30 अल्पसंख्यकों को अपनी पसंद के शिक्षण संस्थान खोलने और उनका प्रबंधन करने का अधिकार प्रदान करता है।

4.6 स्वयंअध्ययन प्रश्नों के उत्तर :

(अ) के उत्तर

- | | |
|---------------------------------|-----------------------|
| 1. अ. फादर कामिल बुल्के | 2. क. स्त्री |
| 3. अ. प्रेमचंद युग (१९२०-३० ई.) | 4. ब. नारी विमर्श |
| 5. क. सिमोन द बोउवार | 6. ब. संत मीरा बाई |
| 7. क. स्त्री शिक्षा | 8. अ. प्रियप्रवास |
| 9. ब. दुलाईवाली | 10. क. महादेवी वर्मा |
| 11. अ. डॉ. नामवर सिंह | 12. ड. डॉ. एन. सिंह |
| 13. अ. डॉ. बाबासाहेब अंबेडकर | 14. क. मायानंद बलिदान |

- | | |
|------------------------------|--------------------------|
| 15. अ. ऋग्वेद | 16. अ. अनुच्छेद २९ और ३० |
| 17. ब. डॉ. नामवर सिंह | 18. क. टोपी शुक्ला |
| 19. अ. झीनी झीनी बीनी चदरिया | 20. क. एक लड़की की डायरी |

प्र. (आ) के उत्तर :

- | | |
|-------------------------|-------------------------------|
| 1. ब. प्रो. सुधीश पचौरी | 2. ड. दलित |
| 3. क. अल्पसंख्यक | 4. अ. मैत्रेयी, गार्गी |
| 5. ब. थेरीगाथा | 6. अ. बाला बोधिनी पत्रिका |
| 7. क. यशोधरा | 8. अ. १९७५ ई. |
| 9. ब. स्वामी अछूता नंद | 10. अ. स्वामी विवेकानंद |
| 11. क. अछूत की शिकायत | 12. अ. स्वामी अछूतानंद |
| 13. ब. वचनबद्ध | 14. अ. गोदान |
| 15. ब. फाँस | 16. क. केदानाथ अग्रवाल |
| 17. अ. भारत-पाक बँटवारा | 18. क. आधा गाँव |
| 19. अ. लेखक और कलाकारों | 20. ब. सूखा बरगद |
| 21. अ. असगर वजाहत | 22. क. कोरजा |
| 23. अ. ठीकरे की मंगनी | 24. ब. शाह आलम कैम्प की रूहें |
| 25. अ. आँखों की दहलीज | |

4.7 सारांश :

1. हिंदी में 'विमर्श' यह शब्द अंग्रेजी के "Discourse" का रूपांतर है, जिसका अर्थ भाषण, प्रवचन, प्रबंध, विवेचन आदि अर्थ दिए हैं। हिंदी में बीसवीं सदी के अंतिम दशकों अर्थात् 1970-80 ई. से विमर्शवादी साहित्य लेखन की शुरुआत हुई। हिंदी में 'विमर्श' इस शब्द के प्रचार का श्रेय प्रो. सुधीश पचौरी को दिया जाता है। हिंदी में स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, किसान विमर्श, आदिवासी विमर्श, अल्पसंख्यक विमर्श, वृद्ध विमर्श, किन्नर विमर्श आदि पर लेखन हो रहा है।
2. हिंदी साहित्य में वैदिक कालखंड से अबतक स्त्री केंद्रित साहित्य विकसित होता आया है। वैदिक काल में स्त्री को आदर्श स्वरूप को दर्शाते हुए उसे पुरुष प्रधान व्यवस्था के बंधनों में उलझाकर रखा गया। मध्यकाल में वह माया के रूप में सिद्धी के पथ की बाधा बनी। रीतिकाल में उसे भोग की वस्तु

मानकर दासी बनाया गया और शृंगार रस की पुष्टीकरण के लिए उसके बीभत्स वर्णन किए गए।

3. आधुनिक काल में नवजागरण की बौदलत सही मायनों में समाज स्त्री के अस्तित्व के प्रति सजग हुआ और सन् 1970 ई. से हिंदी में स्वतंत्र रूप से स्त्री विमर्शवादी लेखन शुरू हुआ और समकालीन युग में वह एक स्वतंत्र विधा के रूप में अपना स्थान स्थापित कर चुका है। छठी शती में पाली भाषा में 'थेरीगाथा', मध्यकाल में संत मीराबाई का साहित्य, भारतेंदु काल में बालबोधिनी पत्रिका में लेखन, मैथिलीशरण गुप्त की 'साकेत', 'यशोधरा', हरिऔध की 'प्रियप्रवास', राजेंद्रबाला घोष की 'दुलाईवाली', मैत्रेयी पुष्पा की 'शृंखला की कड़ियाँ' आदि रचनाएं स्त्रीवादी लेखन की प्रारंभिक शुरुआत मानी जा रही हैं।
4. सन् 1975 ई. को संयुक्त राष्ट्र ने विश्व महिला वर्ष घोषित किया। इससे प्रभावित भारत में कई महिला संगठन बने और उन्होंने 8 मार्च विश्व महिला दिवस के रूप में मनाना शुरू हुआ। सन 1970 के बाद सही मायनों में हिंदी स्त्री विमर्शवादी लेखन एक साहित्यिक आंदोलन के रूप में शुरू हुआ। इसमें उषा प्रियंवदा, मृदुला गर्ग, अनामिका, मैत्रेयी पुष्पा, अलका सरावगी आदि स्त्रीवादी लेखिकाओं का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।
5. हिंदी में दलित विमर्शवादी साहित्य की नींव प्रगतीशील विचारधारा के संतों और समाज सुधारकों के आंदोलन से बनी। डॉ. बाबासाहेब अंबेडकर जी के नेतृत्व एवं कार्य से दलितों में नवचेतना निर्माण हुई। अंबेडकरवादी विचारधारा से प्रभावित होकर मराठी में 'दलित पैथर्स' (1972) में शामिल साहित्यकारों ने दलित साहित्य लेखन शुरू किया। उसके प्रभाव से हिंदी में सन् 1975 ई. से हिंदी दलित साहित्य लिखा जाने लगा जिसे दलित साहित्यकारों और दलित आलोचकों ने समृद्ध किया। इसमें ओमप्रकाश वाल्मीकि, मोहनदास नैमिशराय, जयप्रकाश कर्दम, श्यामराजसिंह 'बेचैन', रजनी तिलक, डॉ. सुशीला टाकभौर, कौशल्या बैसंत्री आदि लेखकों का उल्लेखनीय योगदान रहा है।
6. भारतीय साहित्य में किसानों को केंद्र में रखकर साहित्य लेखन की परंपरा बहुत पुरानी रही है। हिंदी साहित्य में वैदिक काल से कृषि से संबंधित लेखन हुआ है जिसका उल्लेख ऋग्वेद में मिलता है। मध्यकाल में संत तुलसीदास, संत कबीर, संत सूरदास, कवि घाघ आदि की कविताओं में किसान जीवन एवं उसकी वेदना का चित्रण आया है।
7. आधुनिक काल में भारतेंदु युग से हिंदी साहित्य में किसान की दुर्दशा और अंग्रेज और जमींदारों की शोषक वृत्ति पर विपुल लेखन हुआ है। हिंदी में प्रेमचंद के कथा-साहित्य किसान जीवन का दस्तावेज है। उनके 'गोदान' उपन्यास को हिंदी किसान विमर्श में मील का पत्थर समझा जाता है। हिंदी कथा साहित्य से ही किसान विमर्श को पहचान मिली है। समकालीन काल में संजीव के उपन्यास, 'फाँस', 'बारोमास', पंकज सुबीर से 'अकाल में उत्सव', रणेंद्र का 'ग्लोबल गाँव का

देवता', काशीनाथ सिंह का 'रेहन पर रघू' आदि उपन्यासों से हिंदी किसान विमर्श को नई पहचान मिली है।

8. भारत में भाषा और धर्म इन दो बिंदुओं को अल्पसंख्यक विमर्श का आधार माना गया है। लेकिन हिंदी साहित्य में धर्म के आधार पर मुस्लिम समाज को अल्पसंख्यक की श्रेणी में रखकर उनके जीवन का विवेचन इस विमर्श में किया गया है। हिंदी में 'अल्पसंख्यक विमर्श' की शुरुआत सन 1960 से मानी जाती है। भारत-पाकिस्तान का विभाजन और उसकी विभीषिका इस विमर्श का प्रमुख स्रोत रहा है। राही मासुम रजा के 'आधा गाँव' (1960 ई.) इस उपन्यास को अल्पसंख्यक विमर्श में मील का पत्थर माना जाता है। बदिउज्जमाँ, मंजूर एहतेशाम, अब्दुल बिस्मिल्लाह, गुलशेर खाँ शानी, असगर वजाहत, मेहरून्निसा परवेज, नासिरा शर्मा, अनवर सुहैल आदि प्रमुख हिंदी अल्पसंख्यक विमर्शवादी साहित्यकार माने जाते हैं।

4.8 स्वाध्याय :

अ) टिप्पणियाँ प्रश्न :

1. स्त्री विमर्श का अर्थ और विशेषताएं ।
2. दलित विमर्श का अर्थ और विशेषताएं ।
3. किसान विमर्श का अर्थ और विशेषताएं ।
4. अल्पसंख्यक विमर्श का अर्थ और विशेषताएं ।

आ) दीर्घोत्तरी प्रश्न :

1. स्त्री विमर्श का अर्थ, परिभाषा स्पष्ट करके हिंदी स्त्री विमर्श साहित्य का सविस्तर विवेचन कीजिए।
2. दलित विमर्श का अर्थ, परिभाषा स्पष्ट करके हिंदी दलित विमर्श साहित्य का सविस्तर विवेचन कीजिए।
3. किसान विमर्श का अर्थ, परिभाषा स्पष्ट करके हिंदी किसान विमर्श साहित्य का सविस्तर विवेचन कीजिए।
4. अल्पसंख्यक विमर्श का अर्थ, परिभाषा स्पष्ट करके हिंदी अल्पसंख्यक विमर्श साहित्य का सविस्तर विवेचन कीजिए।

4.9 क्षेत्रीय कार्य :

1. मराठी के विमर्शवादी साहित्य की जानकारी लेकर कक्षा में चर्चा कीजिए।
2. मराठी के स्त्री विमर्शवादी लेखिका और उनके साहित्य पर परियोजना बनाए ।

3. मराठी और हिंदी के किसी भी एक-एक दलित कवि के कविताओं का तुलनात्मक अध्ययन पर आधारित परियोजना बनाएं।
4. मराठी की किसी किसान विमर्श पर आधारित कहानी का हिंदी में अनुवाद कीजिए।
5. मराठी की किसी अल्पसंख्यक विमर्श पर आधारित कविता का हिंदी में अनुवाद कीजिए।
6. किसान विमर्श पर आधारित किसी महत्वपूर्ण रचना पर नाटक बनाकर उसे कक्षा में पेश कीजिए।

4.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए :

1. सिंह सुमन (डॉ.), हिंदी साहित्य में स्त्री विमर्श (आत्मकथाओं के संदर्भ में), प्र.सं. 2016 ई., मनीष प्रकाशन, वाराणसी, उ.प्र.देश ।
2. खान (संपा.) एम. फिरोज, इकरार अहमद, 'दलित विमर्श और हम' प्र.सं. 2010 ई., प्रकाशन: साहित्य संस्थान ई- 10/660, गाजियाबाद- 02, उत्तर प्रदेश।
3. पालीवाल कृष्णदत्त, 'दलित साहित्य के बुनियादी सरोकार', प्र.सं. 2012 ई., प्रकाशन: वाणी प्रकाशन, 4695, 21ए, दरियागंज, नयी दिल्ली- 02
4. पटेल उत्तम भाई, स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यासों में कृषक जीवन, प्र.सं. 2002 ई., भारत-भारती प्रकाशन, नई दिल्ली ।
5. पटनायक किशन, किसान आंदोलन दशा और दिशा, सं.2009, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।

